(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

परमात्मप्रकाश प्रवचन
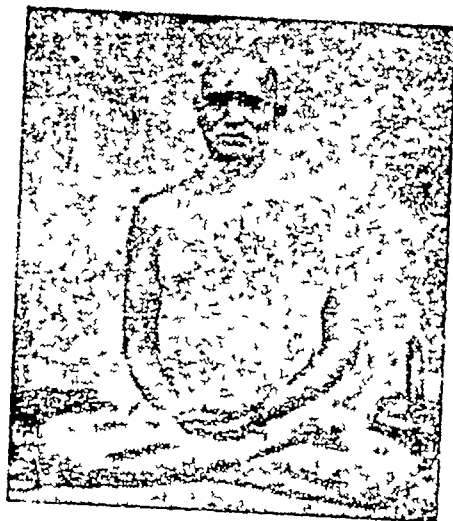
पंचम भाग

लेखकः—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—

महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

प्रकाशक —

खेमचन्द जैन, सर्राफ

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

(उ० प्र०)

प्रथम संस्करण 1000]

१९६५

[न्योछावर १)७५

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

परमात्मप्रकाश प्रवचन

पंचम भाग

लेखकः—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—

महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

प्रकाशक —

खेमचन्द जैन, सर्राफ

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

(उ० प्र०)

[प्रथम संस्करण १,०००] १९६५ [न्यौछावर १)७५

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के संरक्षक

(१) श्रीमान् लाला महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ

(२) श्रीमती फूलमाला जी, धर्मपत्नी श्री लाला महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावो की नामावली —

(१) श्री भवरीलाल जी जैन पाण्ड्या, झूमरीतिलैया
(२) ,, ला० कृष्णचन्द जी जैन रईस, देहरादून
(३) ,, सेठ जगन्नाथजी जैन पाण्डया, झूमरीतिलैया
(४) ,, श्रीमती सोवती देवी जी जैन, गिरिडीह
(५) ,, ला० मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन, मुजफ्फरनगर
(६) ,, ला० प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी, मेरठ
(७) ,, ला० सलेखचन्द लालचन्द जी जैन, मुजफ्फरनगर
(८) ,, ला० दीपचन्द जी जैन रईस, देहरादून
(९) ,, ला० बारूमल प्रेमचन्द जी जैन, मसूरी
(१०) ,, ला० बाबूराम मुरारीलाल जी जैन, ज्वालापुर
(११) ,, ला० केवलराम उग्रसैन जी जैन, जगाधरी
(१२) ,, सेठ गैदामल दगडू शाह जी जैन, सनावद
(१३) ,, ला० मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी, मुजफ्फरनगर
(१४) ,, श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन, देहरादून
(१५) ,, श्रीमान् ला० जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर मेरठ
(१६) ,, मन्त्री जैन समाज, खण्डवा
(१७) ,, ला० बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन, तिस्सा
(१८) ,, बा० विशालचन्द जी जैन, आ० मजि०, सहारनपुर
(१९) ,, बा० हरीचन्द जी ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर, इटावा
(२०) श्रीमती प्रेम देवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जैन संघी, जयपुर
(२१) श्रीमती धर्मपत्नी सेठ कन्हैयालाल जी जैन, जियागंज
(२२) ,, मन्त्राणी, जैन महिला समाज, गया
(२३) श्रीमान् सेठ सागरमल जी पाण्ड्या, गिरिडीह
(२४) ,, बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी, गिरिडीह
(२५) ,, बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी, गिरिडीह

(२६) श्री सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर
(२७) ,, सेठ छदामीलाल जी जैन, फिरोजाबाद
(२८) ,, ला० सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ, बडौत
(२९) ,, सेठ गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, गया
(३०) ,, बा० जीतमल शान्तिकुमार जी छाबड़ा, झूमरीतिलैया
(३१) श्रीमती धनवंती देवी ध. प. स्व. ज्ञानचन्द जी जैन, इटावा
(३२) श्री दीपचदजी ए० इर्जीनियर, कानपुर
(३३) गोकुलचंद हरकचद जी गोधा, लालगोला
* (३४) ,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर मेरठ
* (३५) ,, सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या, जयपुर
* (३६) ,, बा० दयाराम जी जैन आर. एस डी. ओ., सदर मेरठ
* (३७) ,, ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन, सदर मेरठ
× (३८) ,, ला० जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन, सहारनपुर
* (३९) ,, ला० नेमिचन्द जी जैन, रुडकी प्रेस, रुडकी
× (४०) ,, ला० जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन, शिमला
× (४१) ,, ला० बनवारीलाल निरजनलाल जी जैन, शिमला
* (४२) श्रीमती शैलकुमारी जी, धर्मपत्नी, बाबू इन्द्रजीत जी वकील,
बिरहन रोड, कानपुर।

नोट —जिन नामोके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यता के कुछ रुपये आ गये हैं बाकी आने हैं तथा जिनके नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनके रुपये अभी नही आये, आने हैं। श्रीमती बख्तोबाई जी ध० प० सि० रतनचन्द जी जैन जबलपुरने सरक्षक-सदस्यता स्वीकार की है।

—:o * o:—

आत्म-कीर्तन

शान्ततमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

[१]

मैं वह हू जो हैं भगवान् , जो मैं हू वह हैं भगवान् ।
अन्तर यही ऊपरी जान , वे विराग यहं राग वितान ॥

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान , अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान , बना भिखारी निपट अजान ॥

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन , मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान , फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम , विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम , आकुलताका फिर क्या काम ॥

[५]

होता स्वयं जगत् परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥

अहिंसा धर्मकी जय !

परमात्मप्रकाश प्रवचन

पंचम भाग

इससे पहिले प्रथम महाधिकार आ चुका था, जिसमे बहिरात्मा, अतरात्मा और परमात्मा इन तीनों प्रकारके आत्मतत्त्वका वर्णन किया था। और उन तीनो आत्मावोंके नित्य उपादानभूत शुद्ध आत्मतत्त्वका उपदेश दिया गया है। अब उसके बाद यह द्वितीय महाधिकार प्रारम्भ किया जा रहा है, जिसमें तीन बातोंकी प्रतिपादकता है—मोक्ष, मोक्षका फल और मोक्षका मार्ग। इन तीनो बातोंमें प्रथम मोक्षकी मुख्यतासे कुछ बातोंका वर्णन किया जा रहा है।

सिरिगुरु अक्खहि मोक्खु महु मोक्खहँ कारणु तत्थु।
मोक्खह केरउ अण्णु फलु जे जाणउँ परमत्थु ॥१॥

यहां प्रभाकरभट्ट योगीन्दुदेवसे उपदेश चाह रहे हैं। हे श्री गुरो, योगेन्दु देव! मेरेको मोक्ष, मोक्षका कारण और मोक्षका सम्बन्धी सर्वफल कहियेगा, जिससे मै परमार्थ हितको जानूँ। इस दोहेमें शिष्य प्रभाकर भट्ट श्रीयोगेन्दुदेवसे प्रार्थना कर रहे हैं अर्थात् मोक्ष, मोक्षकाफल और मोक्षका कारण इन तीनों बातोंको पूछ रहे हैं। यह दोहा द्वितीय महाधिकारकी भूमिकारूप है। कोईसा भी सकट आया हो किसी जीव पर तो उसे तीन बातोंकी जिज्ञासा रहा करती है। इन सकटोसे छूटनेकी स्थिति क्या है और संकटोंसे छूटनेका उपाय क्या है और सकटोसे छूटने पर वातावरण या फल क्या मिलेगा—ये तीन बाते उसकी जानकारी लिये रहती हैं। यह ससारका महा सकट जीव पर छाया है। जो भव्य जीव है, जो संकटोंसे छूटनेकी लालसा रखना है वह तीन बातोंको अवश्य जानना चाहता है। जो अभिलाषी है सकटोंसे छूटनेका, उसको ये तीन बातें जाननी चाहिये। उन्हीं तीन बातोंका प्रश्न योगीन्दुदेवसे प्रभाकर भट्टने किया है।

इन तीनोंके मुकाबलेमें उलटा तीन बाते तो यह जीव जान ही रहा है। मोक्षका उलटा क्या है? ससार। ससारका स्वरूप, ससारका कारण और ससारका फल। यह भी इन्हें विदित है कि यह संसारका स्वरूप है। विकल्पोंसे लगे रहना, सकट बना बनाकर दुःखी रहना, जन्म-मरणके दुःख भोगना यह सब ससारका स्वरूप है। ससारका कारण है मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। यही है ससारका फल, यही है दुःखोंका

भोगना। रोगी पुरुषकी ६ बातें ज्ञातव्य हैं। यह रोग कैसा है? यह किस कारणसे हुआ है और रोगके फलमें क्या पा रहे हैं। तीन तो ये बातें हैं और तीन बातें ये हैं—रोगसे छूटनेका स्वरूप क्या है, रोगसे छूटनेका कारण क्या है, और रोगसे छूटने पर परिणमन क्या होगा, फल क्या मिलेगा? यां ६ बातें ज्ञातव्य हैं। और तीन बातें तो भोग ही रहे हैं, उनको तो पूछना ही था? सो शेष तीन बातें मोक्ष, मोक्षका कारण और मोक्षका फल। यहां पूछा जा रहा है इन्हीं तीन बातोंको। भगवान् योगीन्दु देव क्रमसे कह रहे हैं।

जोइय मोक्खु वि मोक्खफलु पुच्छिउ मोक्खहं हेउ।
सो जिणभासिउ णिसुणि तुहुं जेण वियाणहि भेउ ॥३॥

हे योगेन्दुदेव! तूने मोक्ष, मोक्षका फल और मोक्षका कारण पूछा। उसको जैसा कि जिनेश्वर देवने बताया है उस माफिक तू निश्चय करके सुन, जिससे सर्व रहस्य तू अच्छी तरहसे जान लेगा। ये प्रश्नोत्तररूप दो गाथाएँ हैं।

श्री योगेन्दुदेव कहते हैं कि हे प्रभाकर भट्ट! तुमने प्रश्न उत्तम किया है। ये तीनों बातें तुम्हें जान लेनी चाहियें। इन तीनोंका स्वरूप आगेके दोहोंमें आयेगा। पर कितना है? उत्तर तो थोडे से उत्तरकी भूमिकामें ही आ जाया करता है। तू शुद्ध आत्माकी उपलब्धिरूप मोक्षको जान। मोक्षके मायने क्या है? छूट जाना। छूट जानेमें होता क्या है? जो जैसा है वैसा अकेला रह जाता है। अकेला रह जानेका नाम है मोक्ष। दो रस्सी आपसमें बधी हैं, उन दोनों रस्सियाके मोक्षका नाम क्या है? अकेले अकेले रह जाना, इसका नाम है मोक्ष रस्सीका। इस प्रकार जीव और कर्मका अकेले अकेले रह जाना इसका नाम है मोक्ष। अकेलेका रह जाना अच्छा है या दुकेले, चौकेले, अठकेले रहना अच्छा है? दिलसे बतावो, झूठ नहीं कहना अकेले कोई नहीं रहना चाहता। चाहते हैं कि स्त्री हो, पुत्र हो, मकान हो, मित्र हो। अकेले रहनेमें बडे घबड़ाहट पैदा करते हैं, अपने को अशरण समझते हैं, किन्तु लाभ है अकेले रहने में।

जो बिल्कुल अकेला रह गया है उसका ही तो हम और आप सुबह ही आकर पूजन वदन करते हैं। अकेले रह जाना बुरा होता तो यहां सुवह ही आकर मदिरमें माथा क्यों रगडते? जिसके आगे आप माथा रगडते हो वह अकेला रह गया है। कितना अकेला? घर छोड़ दिया, कुटुम्ब छोड़ दिया। और अब तो सिद्ध हैं ना। शरीरसे भी छूट गए। कर्म भी छूट गये। खालिस आत्मा, आत्म। रह गया। तो ऐसा अकेला रह जानेका नाम मोक्ष है। मोक्ष

चाहिए इसका अर्थ है कि मैं अकेले रहना चाहता हूं। शरीर भी साथ न हो, कर्म भी साथ न हो, केवल ज्ञानमात्र यह मैं आत्मतत्त्व होऊँ--ऐसा अकेला रहना चाहते हो, रहो। ऐसे ही अकेलेपन की भावना करो, यह तो है मोक्ष का स्वरूप और मोक्षका फल क्या है कि केवलज्ञान केवलदर्शन और अनन्त आनन्द और अनन्तशक्ति इसमे व्यक्त हो जायेगे उसका नाम है मोक्ष का फल। पुण्योदयसे पाई हुई यह लाखों और करोड़ोंकी सम्पदामे जो लीन हो जाता है उसे अनन्तनिधिसे वंचित रहना पडता है। जैसे कोई बड़ी चीज चाह रहा है बालक और किसी मामूली चीजमें उसका चित्त लगा दिया जाये, उसमें ही वह मग्न हो जाये तो उसे बडे लाभसे वंचित रहना पड़ता है। यों ही कोई जीव पुण्यके उदयसे पाई हुई सम्पदामें मग्न हो जाता है तो उसे बड़े मूलके लाभसे वंचित रह जाना पड़ता है।

मोक्षका फल है समस्त विश्वको जानना और समस्त विश्वको जानते हुए उस आत्माका स्पर्श होना और अनन्तशक्ति होना यह मोक्षका फल है। ज्ञान और आनन्दकी सभी चाह करते हैं। वह अनन्तज्ञान कहां मिलेगा ? केवलज्ञानमें मिलेगा। वह अनन्त आनन्द कहां मिलेगा ? केवल आनन्दमें मिलेगा। आनन्दकी आशासे हम बाह्यपदार्थोंमें अपना आकर्षण रखते हैं तो जैसे यहां बाह्यपदार्थोंमें आसक्ति रखी, समझो कि हमारा आनन्द वहां समाप्त हो जाता है। मोक्षका मार्ग क्या है ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है। सो हे प्रभाकर भट्ट ! इन तीनों बातोंको तुम्हें क्रमशः समझाऊँगा। तुम रुचिपूर्वक इस समाधानरूप वस्तुस्वरूपको ध्यानपूर्वक सुनों। अब उसमें उन्हीं समाधानोंके लिए यहा यह अभिप्राय रखकर तृतीय सूत्रमें आचार्यदेव बोल रहे हैं कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके बीचमें सुखका कारण होने से मोक्ष ही उत्तम है। ऐसे अभिप्राय को रखकर इस सूत्रको कहने जा रहे हैं।

धम्मह अत्थह कामह वि एयह सयलह मोक्खु।
उत्तम पभणहिं णाणि जिय अण्णे जेण ण सोक्खु ॥३॥

धर्म, अर्थ, काम--इन तीनोंसे श्रेष्ठ मोक्ष तत्त्वको जानों, क्योंकि धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पदार्थोंमें परमसुख नहीं है। धर्म शब्दका यहा मतलब लेना पुण्यसे, अर्थ शब्दको पुण्यके फलभूत पदार्थसे लेना। जैसे राज्यविभूति मिल जाये या विशेष धनकी प्राप्ति हो जाये वह अर्थ है और काम शब्दका अर्थ लेना कि उस ही राज्यके मुख्यफलभूत जो स्त्री वस्त्र आदिका संयोग है उसे समझना यों इन तीनोंसे उत्तम जीवको प्राप्त करना है। एक जगह बताया है कि धर्म, अर्थ, काममे से काम पुरुषार्थ क्यों जी अच्छा है कि बुरा है ?

इन्द्रियोंके विषयको भोगना सो काम पुरुषार्थ है। बतलावो कामपुरुषार्थ बढिया है कि बुरा है? तो काम तो यों बुरा है, और अर्थ मायने धन सम्पदा। यह अर्थ अनर्थ की जड है।

धनसपदाके गर्वमें आकर अपनेको भूल जाते हैं, आसमानमें चढ जाते हैं। जितना सचय करो उतनी ही इसकी आसक्ति बढेगी और मारे गर्वके वह तो दुनिया भरको तुच्छ देखता और सारी दुनिया उसे तुच्छ देखती। जैसे किसी पहाड़ पर चढा हुआ पुरुष नीचे जाते हुए पुरुषोंको कीडों मकौडोंकी तरह देखता है। ५-६ खण्डका मकान है उस पर चढ जावो, सड़क पर जाते हुए लोगोंको देखो तो कीडे मकौड़ोंकी तरह नजर आते हैं। एक कीडा यह गया। दूसरा कीड़ा वह गया दो पहियाकी गाडी पर बैठा हुआ और नीचे जाने वालोंको भी ऊपर चढे हुए लोग कीडे माफिक नजर आते हैं। तो यह गर्वी पुरुष अनेकको तुच्छ देखता है, मगर अनेक पुरुष उस गर्विष्ठको तुच्छ निरखते हैं।

इस धनका नाम है दौलत। इसके २ लातें होती हैं। जब यह दौलत जाती है तो छाती पर लात मारकर जाती है। छाती यों झुक हो जाती है। सबके आगे झुकना पड़ता है। और जब आती है तो पीठ पर लात मारकर आती है, छाती यों तन जाती है। जैसा मैं हू वैसा कोई नहीं है। तो अर्थ भी अनर्थ हुआ। तो इसमें दो पुरुषार्थ तो बुरे निकले अर्थ और काम। अर्थ और कामकी जड है पुण्य। इस पुण्यसे क्या मिलता है? अर्थ मिलेगा और काम मिलेगा। जो अनर्थकी जड है और विपदाओंका घर है तो जो अनर्थकी जड होवे और विपत्तियोंका घर होवे उस पुण्यकी क्या सराहना करना चाहिए? नहीं। वह तो विपत्तियोंमें पटकने के लिए है। यो धर्म, अर्थ और काम--ये तीनों ही हेय हैं। उपादेय तो एक मोक्षतत्त्व है। अब धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंमें से सुखका कारण होनेमें मोक्ष ही उत्तम है, ऐसी बात यहा कही जा रही है। हे जीव! धर्म, अर्थ और काम इन सब पुरुषार्थोंमें मोक्षको ही उत्तम पुरुषार्थ ज्ञानी पुरुष कहते है क्यो कि धर्म, अर्थ, काम इन पदार्थोंमें वास्तविक सुख नहीं है। अर्थमें वास्तविक सुख कहां? उसमे तृष्णा बढ़ती है। और होना चाहिए, और होना चाहिए। सो उस तृष्णाके कारण जो वर्तमानमें मिला हुआ समागम है उसका आनन्द नहीं ले सकता। जैसे किसीको भोजनकी अधिक गृद्धता है, बढ़िया कोई चीज बन गई, इमरती, रसगुल्ला, पेड़ा तो बहुत बढिया चीज बननेसे एक कौर मुंहमें तो है मगर दूसरे कौरके लिए तृष्णा लगी है। अब और लेना है। सो उस तृष्णाके कारण जो खाया जा रहा है उसका भी आनन्द

नहीं आता है क्योंकि तृष्णा लगी है। मिला हुआ कुछ समागम है उसके आगे की तृष्णा इन जीवोंके समाई है। तो जो समागम उसे मिला है उस समागममें भी वह आनन्द नहीं भोग सकता।

गधेका नाम है एक वैसाखनन्दन। शायद आपने न सुना हो, पर संस्कृतमें बोला करते हैं। इस गधेका नाम वैसाखनन्दन क्यों पड़ा कि वैसाखके दिनोंमें हरियाली खत्म हो जाती है, कम रहती है। चैतमें फिर भी रहती है पर वैसाखमें सूख जाती है और जेठमें तो हरियालीका पौधा ही नहीं रहता तो वैसाखकी बात कह रहे है कि हरियाली कम है सो थोड़ी हरियाली रहनेके कारण गधे पेट भर खा लेते हैं और सावन भादोंमें जब हरियाली खूब है सो यहा खा रहे हैं, झट वहा बढ गए। सावन भादों क्वार में अच्छी तरहसे वे हरियाली नही खा पाते हैं। जहा खा रहे हैं हरियाली वहाका आनन्द नहीं पाते हैं, दूर हरियाली देखा झट वहां चल दिया। सो इस लोभके मारे उनका पेट नही भरता है और वे सूख जाते हैं। वैसाखमें हरियाली कम रहनेके कारण पेट भर खा लेते हैं तो मस्त रहते हैं। वे वैसाखमें खूब पुष्ट रहते हैं। सो उन्हें कहा गया वैसाखनन्द। जब हरियाली कम रहती है, तो पेट भरकर खा लेते हैं, तृष्णाका आशय नहीं रहता है सो भरपेट खा लेते हैं। सो ऐसे ही ये धन भी चाहते हैं। उनके धनकी तृष्णा बनी रहती है। तो जो वर्तमानमें मिला हुआ धन है उसको भी आनन्दसे नहीं भोग पाते हैं। धनकी तो यह दशा है।

अब भोगोंकी दशा देखो। पञ्चेन्द्रियके विषयभोगोंमें से कौनसी इन्द्रियोंका विषय ऐसा है जो आत्मामें बल उत्पन्न करे, आत्मामें ज्ञान भी सही बनाए रहे, ऐसा कोई भोग नहीं है तो अर्थ और भोग तो प्रकट अनर्थ है। पर अर्थ और भोग मिलते हैं पुण्यकर्मसे, सो पुण्यकर्म भी अनर्थ है। मगर जो पाप करने वाले हैं उनके लिए यह उपदेश नही है कि पुण्य अनर्थ है। जो मुक्तिकी वाञ्छा करते हैं उनके लिए पुण्य अनर्थ है। ऐसे ही जीवों के लिए यह उपदेश है कि हे भव्य भगवन्! तुम सीधे अपने ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि करो। इन तीनों वर्गोंमे परम सुख नहीं है।

मोक्षमें परमसुख है। देखो, स्कूल लगता है १० बजे से ४ बजे तक। जब ३ बजने को होते हैं तो लडके कितना विह्वल रहते हैं। ४ बजे की घन्टी बजी तो स्कूलसे हर्षके मारे होहल्ला करते हुए, हाथ पर फैलाते हुए मस्त होकर भागते हैं। उन बच्चोंको किस बातका आनन्द मिला? न किसी ने फल बांटे, न किसी ने लड्डू पेड़ा आदि खानेकी कोई चीज दी, मगर खुशीके मारे भागते हैं। वह आनन्द किस चीजका मिला? छूट गए। छूटनेके

मानते हैं मोक्ष। ससारसे छूट मिलने का नाम है मोक्ष। बधनसे छूट मिलने का नाम है मोक्ष। धर्म, अर्थ, काममें परमसुख नहीं है। मोक्षमें परमसुख है। यह बात अपने भीतर लगी हुई होनी चाहिए। जो अपना दर्शन जो चाहे बना ले, उसको वही शरण है। यह जगत् फँसने योग्य नहीं है, विश्वासके योग्य नहीं है।

इस ससारसे तो छुट्टी पानेमें ही हित है। धर्म, अर्थ, काम—इन तीनो में से अर्थ तो पुण्य है और अर्थका अर्थ है पुण्यका फलभूत राज्य धन वैभव सम्पदाकी प्राप्ति और काम शब्दका अर्थ है उसही राज्यके मुख्य फल-स्वरूप स्त्री कपडे, शृङ्गार जेवर आदिका सयोग मिलन, भोग मिलना। ये हुए धर्म, अर्थ और काम। इन तीनों से उत्तम है मोक्षपुरुषार्थ। ऐसा वीतराग निर्विकल्प स्वसम्वेदन ज्ञानप्रकाश बतलाते हैं। छूटना अच्छा है। जब शास्त्र हो रहा हो और कोई बात प्रकरणमें बडी कठिन चल रही हो तो कुछ सकोचवश या आदतवश बैठना पड़ना है और चित्तमें यह आता है कि कब छुट्टी मिले? सो बहुत देर तक नींद आती है। और शास्त्र खत्म हो गया तो नींद बिल्कुल चली गई। सजग हो जाते हैं, फिर बडी खुशीसे ताली लगाकर स्तुति करते हैं। क्योंकि छुट्टी मिल गई ना। कोई प्रकारका बधन नहीं रहा।

सो भैया! विकल्पमें आ जाय कि बधन है तो आनन्द नहीं रहता। और जो वास्तविक बधन है उस बधनसे मुक्ति मिले तो उसमें शाश्वत और यथार्थ आनन्द मिलता है। प्रभुकी भक्ति करके हममे यह भाव आना चाहिए कि प्रभो! मुझे और कुछ नहीं चाहिए। जैसा आपका स्वरूप है तैसा ही मेरा स्वरूप प्रकट हो, बस यही कामना है, यही भावना है। इस भावनाके लिए बडे ज्ञानबलकी आवश्यकता है। लोकमें जो हो सो हो, पर मेरा धर्म न जाये, मेरी शुद्धदृष्टि बनी रहे, इस भावनासे ही मुक्ति मिल सकती है।

चार पुरुषार्थ होते हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तो इन चारोंमे धर्म, अर्थ, काम—इन तीनोंसे श्रेष्ठ मोक्षपुरुषार्थ को कहते हैं! मोक्षको उत्तम कौन कह सकता है? जो वीतराग निर्विकल्प स्वसम्वेदन ज्ञानी है। रागद्वेष रहित, विकल्परहित केवल ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका जिन्हें अनुभव होता है वे ही पुरुष बता सकते हैं कि सबसे उत्कृष्ट मोक्ष पुरुषार्थ है। मोक्षभावके सिवाय किसी भी कारणसे या धर्म (पुण्य) अर्थ कामादिकसे सिद्धि नहीं हो सकती। धर्म, अर्थ, काम ये तीन पुरुषार्थ आकुलतावोंको उत्पन्न करते हैं और वीतराग परमानन्द सुख भूतसे विपरीत हैं, खोटा फल देने वाले हैं। अब यह बतलाते हैं कि यदि धर्म, अर्थ, काममें उत्तम मोक्ष न होता तो बडे

पुरुष, जिनसिद्ध पुरुष इन तीनों वर्गोंको छोड़कर प्रलेप शब्द द्वारा वाच्य मोक्षको कैसे जाते? यदि इस ससारमें ही सार होता तो तीर्थंकर आदि महापुरुष इस संसार को क्यों तजते?

जइ जिय उत्तमु होइ णवि एयहुं सयलह सोइ।
तो किं तिण्णि वि परिहरवि जिण वच्चहि परलोइ॥

हे जीव! यदि इन सब धर्म, अर्थ, कामोंसे मोक्ष उत्तम न होता तो श्री जिनवरदेव इन धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थोंको छोड़कर पर लोकमें क्यों जाते? परलोक कहते हैं इस परिचित दुनियासे विलक्षण उत्कृष्ट जो कुछ हो उसे परलोक कहते हैं। इस परिचित दुनियासे विलक्षण उत्कृष्ट क्या है? मोक्ष। अथवा मोक्षका लाभ कराने वाला जो ध्यान है उस ध्यानमें क्यों जाते? परमात्मतत्त्व ध्यान सर्वसंकटोंसे मुक्त कराता है। वह परमात्मा दो रूपोंमें देखा जाता है। एक तो वीतराग सर्वज्ञ निर्दोष आत्मा, दूसरा अपने आपमें अनादिसे बसा हुआ ज्ञायकस्वभाव, उसका विकास होना यह है वास्तविक मोक्ष। शरीरके मोक्षको मोक्ष न कहो। यद्यपि आत्माके शुद्ध स्वरूपकी प्राप्तिमें शरीरका मोक्ष होता ही है, पर शरीरके मोक्षका नाम मोक्ष नहीं है।

यह मोक्ष परलोक स्वय है। परलोक शब्दका अर्थ है पर अर्थात् उत्कृष्ट मिथ्यात्व रागादिकसे रहित केवल ज्ञानादिक अनन्त गुणोंसे सहित परमात्मा 'पर' कहलाता है। ऐसे उत्कृष्ट गुणोंसे विशिष्ट उस परमात्माका अवलोकन करना उसका नाम है परलोक। वीतराग परमानन्द समरसभाव का अनुभवन करना, इसका नाम है परलोक। जब कोई प्राणी वर्तमान भोगों से थक जाता है उनसे हटकर कुछ अन्य भोगोंमें सकल्प करता है किन्तु यह ससारी प्राणी ससारके दण्ड भोगनेमें ऊबता नहीं है और इस संसारसे विलक्षण परलोकका चिंतन नहीं करता। परमात्मा स्वयं परलोक है। अपने आपका स्वभाव ही परलोक है, उसका दर्शन परलोकगमन कहलाता है।

भैया! कोई घरका आदमी गुजर जाये तो रिश्तेदारोंको चिट्ठी लिखते हैं कि अमुक साहबका परलोक हो गया है, या देवलोक हो गया है, या स्वर्गवास हो गया है। ऐसा कोई नहीं लिखता कि अमुक साहबका नरकवास हो गया है और प्रायः करके नरक जाना ज्यादा निश्चित है क्योंकि मोहमें, रागद्वेषमें लगे हुए मर रहे हैं। पर लोग ऐसी ऊँची ही बात लिखते हैं। परलोक हो गया है, इसका अर्थ यह है कि इस रागद्वेषमय आत्मासे उत्कृष्ट जो वीतराग ज्ञानमात्रका अनुभवन है वह परलोक है। परलोक कहो या शिवलोक कहो या ब्रह्मलोक कहो या विष्णु लोक कहो या मोक्ष कहो

सब एकार्थवाचक शब्द हैं। शिव लोकका क्या अर्थ है कि निश्चयसे परम शिव शब्द द्वारा कहा गया जो निर्दोष मुक्त आत्मा है उसको शिव कहते हैं। उस शिवका जो लोक है उसे शिवलोक कहते हैं।

शिवस्वरूप शिवकार–यह छहढालाके पहिले दोहेमें है। इसको लोग यों ही पढ जाते हैं, ध्यान नहीं देते हैं पर इसमें मर्म बहुत गहरा है। लोग बोलते हैं। 'तीन भुवनमें सार वीतराग विज्ञानता।' वीतरागता तीनों भुवन में श्रेष्ठ है अर्थात यह शुद्ध आत्मा स्वय जो स्वभावत रागद्वेषरहित है और विज्ञानमय है, यह कार्यपरमात्माकी दृष्टि नहीं है, किन्तु कारणपरमात्माकी दृष्टि है। यह ज्ञानस्वभावी कारण परमात्मा शिवस्वरूप है, कल्याणमय है और मोक्षका देने वाला है, आनन्द देने वाला है—ऐसे इस अपने आपके आत्मामें अनादिसे बसे हुए इस शुद्ध ज्ञानस्वभाव को सभ लकर मैं नमस्कार करता हू। एक कविने कहा है कि इस प्रभुकी तस्वीर इस हृदयके आइनेमें है। जरा गर्दन झुकावो और अपने इस हृदयके दर्पणमें उस प्रभुको देखलो। भगवान्को जो कोई निरखना चाहता है, यह या तो बहुत ऊचा मुँह करके देखता है या बिल्कुल अन्तरङ्गमें मुँह करके देखना है। अन्य दिशामें या नीचे मुँह लगाकर कोई भगवान्को नहीं देखता है। कोई विपत्ति पड जाये तो ऊँचा मुँह उठाकर कहते हैं। हे भगवान ! रक्षा करो। क्या कोई जमीनमें सिर गड़ाकर कहता है कि भगवान रक्षा करो ? नहीं। या तो बिल्कुल ऊँचा मुँह करके कहते हैं या फिर अपने आपमें गड करके भगवान्को देखते हैं।

ऐसी जो दो विधिया हैं उसका भाव यह है कि या तो ऊपर सिद्ध-लोकमें विराजमान जो मुक्त आत्मा है या तो उसको कहा जा रहा है या फिर अपने आपके आत्मामें बसा हुआ जो ज्ञानस्वभाव है उस ज्ञानस्वभावको कहा जा रहा है। शिवलोक मुक्त आत्माओं का निवासस्थान है अथवा परमब्र.. कौन है, सर्वगुणसम्पन्न जो मुक्त आत्मा है, जो परमब्रह्म है, उन मुक्त आत्मावोंका जो निवास है उसे ब्रह्मलोक कहते हैं। ब्रह्म नाम है जो अपने गुणोंसे बढ़ जाये उसे ब्रह्म कहते हैं। वह ब्रह्म यह आत्मा ही है। इस में जो ज्ञानस्वरूप लक्षित होता है उसको देखना, सो ब्रह्मलोकमें पहुचना है। हम आपसे कुछ कह रहे हैं और हमें ऐसा समझमें आए कि आप दिलसे नहीं सुन रहे हैं तो हम यही कहेंगे कि तुम कहा पर हो, कहा जा रहे हो ? तो तुम कहा जा रहे हो ? मंदिरमें ही तो बैठे हो, कहा जा रहे हो। मगर अपना उपयोग अपने आत्माको छोडकर किसी परद्रव्यमें जा [illegible] है तो उसे कहते हैं कि कहा जा रहे हो ? अपने आपका ज्ञान करना [illegible] पूर्ण पुरुषार्थ है, सारी दुनिया छान लो, जान लो, मगर अपने आप [illegible] हो न

जान पाये तो वह ज्ञान नहीं है।

एक बार स्कूलमें इन्स्पैक्टरने सूचना दी कि हम फलाने दिन बच्चों की परीक्षा लेने आयेंगे। सो मास्टर साहबने उन बच्चों को खूब सिखाया। जापान जर्मनी, अमेरिका की सारी नदियां पहाड़ सब सिखा दिया कि इन्स्पैक्टर यों पूछे तो यों जवाब देना। सब लड़के अच्छी तरहसे तैयार होकर बैठ गए। सब लडके बडे उत्सुक थे। इन्स्पैक्टर आया, पूछा कि बच्चों बतलावो जो तुम्हारे गावमें से नाला निकलता है वह नाला कहांसे निकलता है? अब बच्चोंने तो अमेरिका, जर्मनीकी पढ़ी थी, अपने गांवका नाला कहा पढ़ा था? अरे सारी दुनियाको तो जान लिया और जिस नालेमें कभी डूबकर मर सकते हैं उसे समझा ही नहीं कि कहां से निकला है? सभी परपदार्थोंका ज्ञान कर लिया और एक निज आत्माका जो कि सुख दुःखका जिम्मेदार है उसका ज्ञान न किया तो क्या ज्ञान किया?

यह दुनियां अथवा यह मुक्त स्थान विष्णुलोक है। विष्णु किसे कहते हैं? 'व्याप्नोति इति विष्णु' जो सर्वपदार्थोंमें व्यापकर रहे उसे विष्णु कहते हैं। उस लोकको विष्णुलोक कहते हैं। सो परलोक शब्दसे उस मोक्षका वर्णन किया है। अन्य कोई शिवलोक नहीं है, कल्याणमय आत्माके चरमविकासका जो साधन है, वही शिवलोकादिक है। इस परलोक शब्दके द्वारा वाच्य जो परमात्मतत्त्व है वह ही हम आप सब लोगोंके लिए उपादेय है। कहते हैं ना 'भूखे भजन न होय गोपाला, यह लो अपनी कठी माला।' अरे भूखे हो तो न करो, किन्तु जब आरामसे हो, खाये पिये हो, कोई प्रकारकी आपत्ति नहीं है तो मजेसे अपने आपमें बसे हुए उस प्रभुके दर्शन करो ना। कोई असुविधा हो, चिन्ता हो, अटक हो तो भाई उसे सभाल लो, पर जब मौजमें हो तब तो प्रभुस्वरूपका स्मरण करो।

आज कुछ काम नहीं है, फालतू हैं तो चलो अमुक सिनेमा देखेंगे, अमुक थियेटर देखेंगे। ये फालतू काम जो अपनी बुद्धिको बिगाडे, चरित्रको बिगाडे, ऐसे कामोंमे जानेके बजाय अगर फालतू हो तो ढूँढ लो कोई त्यागी साधु और चलो आध घटे वहां बैठे, चलो मंदिरमें ही बैठ जायें। कोई शास्त्र मिले उसका अध्ययन करें। ऐसी इच्छा होना चाहिए। यह परमात्मतत्त्व ही मेरे आपके लिए उपादेय है, किन्तु उस परमात्माके दर्शन करने लायक हम कब बनें? जब हमारा चरित्र पवित्र हो, जीवहिंसासे दूर हो, किसी जीवकी हिंसा न करे।

जो मनुष्य रात्रिके समय भोजन करते हैं? उनका रात्रिके समय भोजन करना यह जीवहिंसामें शामिल है। रात्रिमे कितने मच्छर हैं।

और लोग क्या सोचते हैं कि चलो रात्रिमें अन्न तो छोड़ दिया, दूध रख लें। जैसे मानो दूधमें दोष ही न हो। अरे रात्रिको दूधमें भी अधिक हिंसा होती है। दूधको आगसे गर्म किया जाता है। जब तक एक गिलाससे दूसरे गिलासमें २७ बार फेंट न लिया जाये और जितना दूध है उतना ही फसूकर न बन जाये तब तक घोंटीके नीचे नहीं उतरता। तो बतलावो दूधके गर्म करनेमें कितने कीड़ोंका विनाश किया। तो रात्रि भोजनमें कितनी हिंसा है। रात्रि भोजन करने वाले हिंसासे कभी बच नहीं सकते। इसी कारण आप लोगोंके कुलमें यह रिवाज है कि जब ८ वर्षका बालक हो जाये तो किसी विधानके समय, किसी जाप आदिके समय अष्टमूल गुणोंकी प्रतिज्ञा दिलायें।

परमात्मतत्त्वके दर्शनके योग्य हम कब हो सकते हैं? जब हमारा चरित्र निर्मल हो। जीवहिंसाका त्याग, झूठ बोलनेका त्याग, चुगुली करनेका त्याग निन्दा करनेका त्याग हो। किसी दूसरे जीवके बुरा करनेके वचन बोल दें इससे हमें क्या मिलता है। हमारा शरीर मोटा होता है कि आत्मा पुष्ट होता है या धनका लाभ होता है? कुछ भी तो नहीं होता। बिगाड़ सारा है। कैसे-कैसे बिगाड़ है? किसी की निन्दा सुनाई उसके दिलसे गिर गए। अरे यह तो ईर्ष्यावान् है, दोषग्राही है और जिसकी बुराई की उसके कानमें पहुंचे तो उसके दिलसे गिर गए। और कहीं किसी सवासेर से भिड़ जाये तो उससे फिर हाथापाई हो गई। तो दूसरेकी चुगली करने में बुराई करने में, निन्दा करनेमें लाभ तो रंच भी नहीं है, हानि ही हानि है। जो झूठ बोलता है, चुगली करता है, निन्दा करता है वह परमात्मदर्शन का पात्र नहीं हो सकता।

परमात्मदर्शनके इच्छुक पुरुषोंको अपना हृदय बड़ा विशुद्ध बनाना चाहिए। किसीकी चीज पर चित्त डुल जाये, चुरावें तो ऐसी चोरीका परिणाम रखने वालेका हृदय विशुद्ध नहीं हो सकता, उसे परमात्माका दर्शन नहीं हो सकता। परमात्माका दर्शन सरल पुरुष ही कर सकता है। कोई बुरी दृष्टि रखे, कामविकार रखे अथवा परपदार्थोंके परिग्रहकी अधिक लालसा बढ़ावे वह परमात्मदर्शनका पात्र नहीं हो सकता। देखो सब लोग अपने-अपने घरमें सुखी हैं, सबको सुविधा है, पर कुछ विशेष दूसरे धनिकोंको देखकर जो मनमें इच्छा और तरंग हो जाती है कि ऐसा मैं क्यों नहीं हूं, बस इस रागके उठते ही यह जीव दुखी हो जाता है। अन्यथा स्वभावसे देखो तो ये हम आप स्वभावतः आनन्दमय हैं। ज्ञान और आनन्दको छोड़ कर इस जीवका अन्य कुछ स्वभाव नहीं है और उस स्वभावरूप ही रहना

इसका नाम मोक्ष है। अब उस सुखदायक मोक्षको एक दृष्टान्तके द्वारा प्रकट करते हैं।

उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।
तो किं इच्छहि बंधणहिं बद्धा पसुय वि सोइ॥५॥

यदि मोक्ष उत्तम सुखको नहीं देता है तो वह उत्तम नहीं होता और यदि मोक्ष उत्तम न होता तो बंधनमें बंधे पशु मोक्षकी चाह क्यों करते? अभी एक लड़केका हाथ पकड़कर बैठाल लो और कहो कि खूब खाले, खूब पीले, खूब कपडे पहिन ले तो वह सुखी नहीं होगा। वह चाहता है कि मुझे छोड़ दे और हाथ पर फैलाता हुआ गेंद, बल्ला, गिल्ली आदि खेले। बंधनमें बंधा हुआ पुरुष अपनेको दुःखी अनुभव करता है और जहां छूट मिली वहां पर मस्त हो जाता है। वह बंधन इस परमात्मा पर सदा कर्मोंका लगा हुआ है। साधारण बातें पाई तो उसमें क्या सुख मानते हो? अपने आप पर देखो कि कितने उपद्रव और उपसर्ग लदे हुए हैं, कितना कर्मोंका भार लदा हुआ है। कर्मोंसे छुटकारा होने में ही उत्तम सुख है।

भैया! सुखका कारण होनेसे बद्ध पशु भी मोक्षकी इच्छा करता है। सुखका कारण होनेसे बद्ध पशु भी छुटकारा पानेकी चाह करता है। तब समझलो कि केवलज्ञानादिक अनन्तगुणोंसे अविनाभूत उपादेयरूप अनन्त सुखका जो कारण है, ऐसा जो मोक्ष है उस मोक्षकी ज्ञानी लोग तो विशेष कर इच्छा करते ही हैं, इस कारण एक मोक्षस्वरूप ही हम आपको उपादेय होना चाहिए। बन्धन वास्तवमें रागद्वेषका ही है। ऐसा ज्ञान बनाओ कि रागका बंधन न रहे, इससे ही अपना कल्याण है।

चूँकि धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ इन जीवोंको अभी बंधनके ही कारण बने हुए हैं। इस कारण उपादेयभूत इन चार पुरुषार्थोंमें से एक मोक्ष भी है। ज्ञानी पुरुष विशेषरूपसे इस मोक्षकी ही चाह करता है क्योंकि यह मोक्ष परिणाम केवलज्ञानादिक अनन्तगुणोंका अविनाभावी उपादेयरूप अनन्त सुखका कारण है। जीवोंमें कुछ ऐसी आदत होती है कि जो वे चाहते हैं सो पूरी शक्ति और साहसके साथ उसे पूरी तौर से चाहते हैं। तो फिर सुख चाहना है तो पूरी शक्ति और साहसके साथ पूर्ण सुख चाहो ना। यह पूर्ण सुख मोक्षमें है। सो ज्ञानी तब एक मोक्षको ही सुखदायक समझता है।

अब दूसरे प्रकारसे मोक्षकी प्रशंसा करते हैं कि सर्वश्रेष्ठ बात मोक्ष ही है। एक तो ऊबकर, घबडा कर लोग कह देते हैं कि इससे तो अलग हटना चाहिए, किन्तु ज्ञानी जीव वस्तुके स्वरूपको ठीक समझकर शांतिके

सार कैसे रहना है ? सर्व प्रसंगोंमें किसीमें सार नहीं है । मोक्ष ही सारभूत है । यदि उस मोक्षमें अधिक गुणसमूह न हो तो ये लोग अपने मस्तकके ऊपर इस मोक्षको किस लिए धरते ? ऐसा निरूपण अब अगली गाथामें योगीन्दु देव करते हैं ।

अणु जइ जगहं वि अहिययरु गुणगणु तासु ण होइ ।
तो तइलोउ वि किं धरइ णिय-सिर-उप्परि सोइ ॥६॥

यदि सब लोकोंसे अधिकतर गुणगण वाला यह मोक्ष न होता, इस मोक्षमें अनेक श्रेष्ठ गुण न होते तो तीनों ही लोक अपने मस्तकके ऊपर उस मोक्षको क्यों रखते ? इसको दो तरहसे समझना है । एक तो यह मोक्ष स्थान इन तीनों लोकोंके ऊपर है, अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक और ऊर्द्ध लोकके अंतमें सिद्धशिला और उस सिद्धशिलासे बहुत ऊपर सिद्ध भगवान् विराजमान हैं । यदि यह सिद्ध लोक उत्तम न होता तो ये तीनों लोक अपने मस्तक पर उस सिद्ध लोकको क्यों रखते ? दूसरी बात इसमें यह जानना कि यदि यह मोक्ष उत्तम गुण वाला न होता तो तीनों लोकोंके जीव उसे अपने मस्तक पर क्यों रखते ? तीनों लोकोंके जीव उस सिद्धलोक की वंदना करते हैं ।

आप कहेंगे कि तीनों लोकोंके जीव कहां वंदना करते हैं ? कोई विरोधी है, कोई अज्ञानी है । विरले कुछ ज्ञानी लोग ही तो इस सिद्धलोक की वंदना करते हैं । तीनों लोक वंदना कहां करते हैं ? तो उसको इस प्रकार जानिए कि अधोलोकमें इन्द्र हैं भवनवासी और व्यंतरोंके इन्द्र मेरु पर्वतकी जड़के नीचेसे अधोलोक शुरू हो जाता है । इस पृथ्वीके ३ खण्ड हैं, उसके दो खण्डोंमें भवनवासी, व्यंतर रहते हैं और नीचे जाकर नारकी जीव रहते हैं । तो अधोलोकका इन्द्र कौन हुआ ? भवनवासी और व्यंतर इन्द्र । अब मध्यलोकमें आइए । इसमें २ प्रकारके जीव हैं–मनुष्यगति और तिर्यञ्चगति । इनमें इन्द्र कौन होता है ? चक्रवर्ती, सर्वश्रेष्ठ मनुष्य और तिर्यञ्चोंमें इन्द्र कौन होता है ? स्वर्गके १२ इन्द्र । तो जिसे तीनों लोकोंके इन्द्रोंने नमस्कार कर लिया तो सबका नमस्कार समझना चाहिए ।

आप लोगोंने चुनकर एम० पी० भेज दिया दिल्लीमें, बड़ी सभामें । अब वह एम० पी० जो वहां कर आया सो आपका ही किया हुआ समझता है । जैसे काश्मीरके चुने हुए मेम्बरों ने भारतमें शामिल होना करार किया तो लो जो बात उन्होंने कही वह काश्मीरकी जनताकी पूरी समझी जाती है । यदि तीनों लोकोंमें मोक्ष उत्तम न होता तो ये तीनों लोक इस मोक्षको अपने मस्तक पर क्यों रखते ? जो सर्वश्रेष्ठ बात होती है उसको सबसे ऊपर

कहा जाता है। सबके सिरे पर कहा जाता है। जीवादि तत्त्वोंमें सबसे अंत में नाम किसका है? मोक्षका। जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष। जीव अजीव तो मूल पदार्थ हैं, उनको तो प्रथम नाम मिल गया। संसारका कारण होने से पहिले आस्रव और बन्ध रखा, इसके बाद आया संवर, फिर आया निर्जरा। इन दोनों शिवतत्त्वोंके फलमें होता है मोक्ष। मोक्षकल्याणक की-पूजा निर्वाणलाडू चढ़ाकर किया करते हैं। कहीं कहीं लड्डू चढते हैं केवल शक्करके। और कहीं-कहीं बनते हैं बूंदीके लड्डू तो इसमे भाव क्या आया सो सुनिये।

शक्करके लड्डू तो निश्चयदृष्टिको बताते हैं कि वह अखण्ड है, उसमें कहीं घुसनेकी जगह नहीं हैं, कहीं छिद्र नहीं हैं, अन्तर कहीं नहीं है। एक अखण्ड है, यह तो मोक्षतत्त्वको निश्चयदृष्टिसे दिखाता है और बूँदी लड्लू उस मोक्षतत्त्वको व्यवहारदृष्टिसे दिखाता है। जैसे बूँदीके लड्डूमें बहुतसे बूँदीके दाने भरे हुए हैं। इसी प्रकार उस मोक्षमें अनन्तगुण समूह पड़ा हुआ है। तो यह व्यवहारका दर्शक लडुवा है बूँदीका और शक्कर का लडुवा निश्चयका दर्शक है।

अब इनमें मीठा अधिक कौन लगता है, बतलावो। शक्करके लड्डूसे तो जल्दी ही अकुला जावोगे और बूंदीके लड्डूमें चूँकि बेसन भी है इस लिए पेटभर खा लोगे। इसी प्रकार यह निश्चयकी जो दृष्टि है इसको करते प्राय· लोग अघा जाते हैं, राह नहीं पाते हैं। अगर वे बहुत समय तक रह सकते तो उनका बेडा पार हो जाये। जब इतनी वृत्ति न बने तब फिर व्यवहारमें लड्डू चढावो याने व्यवहारमोक्षमार्गमें लगो। इस व्यवहारमोक्षमार्ग में केवल क्रियाएँ क्रियाएँ ही हों और उसमें आत्मस्वभावकी दृष्टिकी मधुराई न हो तो वह व्यवहार किस कामका? यह लड्डूपरम्परा किस मर्मको बताती है? लगो निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्गमें। यदि मोक्षमें अनेक गुण न होते तो ये तीनों लोक अपने मस्तक पर इस मोक्ष को क्यों रखते? इस दोहेमें मोक्षके स्वरूपको गुणोंके समूहके विशेषणसे दिखाया है।

इसमें मतार्थ यह हुआ कि जो लोग यह मानते हैं कि गुणोंका अभाव हो तो मोक्ष होता है, ऐसा उनका एक सिद्धान्त है कि जीवमें जब तक गुण रहते हैं तब तक यह संसारमें रुलता है और जब इसके गुण नष्ट हो जाते हैं तब भगवान् बनता है, मोक्ष होता है। ऐसा सिद्धान्त हो सकता है क्या? है एक सिद्धा[illegible], उनका मानना है कि बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा रागद्वेष परिणाम, [illegible] धर्म संस्कार नामके ९ गुण जब तक रहते हैं तब तक यह

जीव संसारी है और जब इन ६ ही गुणोंका अभाव हो जाता है तब इस जीवका मोक्ष हो जाता है। ऐसा बुद्ध वैशेषिक मानते हैं। तो इस विशेषण द्वारा इस बातकी सिद्धि की है कि मोक्षमें गुणोंका अभाव नहीं होता। वहां तो गुण परिपूर्ण विकसित हो जाते हैं। उसका ही नाम मोक्ष है। अपने सर्व गुण खत्म हो जायें—ऐसे विनाशको कौन चाहेगा ? और उस मोक्षको हम क्या करें, जिस मोक्षमें हमारे गुण ही खत्म हो जायेंगे। वे गुण रहते हैं।

भैया ! तिलका तो ताड बन सकता है पर कुछ भी बात न हो और ताड बन जाये तो ऐसा नहीं हो सकता है। ६ वे गुणोंके उच्छेदका नाम मोक्ष बताया है, उसमें बात यहांसे चली कि शुद्ध गुणों पर तो दृष्टि नहीं गई, स्वभाव पर तो दृष्टि नहीं पहुची और जो ऊपरी बातें हैं सुख दु:ख, इच्छा जिन्हें विकार कहा जाता है उनको गुण समझकर उनका निषेध किया है सो सही बात है। जब तक क्षयोपशम कल्पनाकी बुद्धि रहती है तब तक मोक्ष नहीं होता। जब तक सुख दु:खकी वृत्ति रहती है तब तक मोक्ष नहीं है। जब तक राग द्वेष पुण्य पाप संस्कार बसे रहते हैं तक तक मोक्ष नहीं है। इस कारण गुणोंके अभावका नाम मोक्ष है इसका यह अर्थ जानना कि विकारके अभावका नाम मोक्ष है। तो जैसे मोक्षमें गुण समूह है—ऐसा कहने से इस सिद्धान्तकी प्राप्ति हुई कि मोक्षमें गुणों का परिपूर्ण विकास है।

और भी देखो—कोई लोग मानते हैं कि जैसे दीपक बुझ गया, इसी तरह आत्मा बुझ गया तो उसका नाम मोक्ष है। निर्वाण हो गया। जब दिया जल रहा है तब लोग क्या ऐसा कहते हैं कि इस दियाको बुझा दो। नहीं, ऐसा नहीं कहते हैं, क्योंकि ऐसे शब्द बोलनेमें डर लगता है कि दिया बुझा दो ऐसा कहने से कहीं घरका दिया न बुझ जाये अथवा घरका कोई मर न जाये। सो ऐसा नहीं कहते हैं। क्या कहते हैं कि दिया बढा दो। दिया बढ़ा दो, इसका अर्थ क्या है कि दिया बुझा दो। जब शाम हो गई पौने आठ बज गये तो दुकान बंद कर दो, यह नहीं कहते। यह कहते हैं कि दुकान बढ़ा दो ! दुकान बंद कर दो—ऐसा कहनेसे कहीं भगवान् इन शब्दोंको सुनकर दुकान ही न बंद कर दे। तो उसे असगुन जानकर ऐसा कोई नहीं कहता है कि दुकान बंद कर दो। कहते यह हैं कि दुकान बढ़ा दो। इसी प्रकार कितने ही शब्द उलटा प्रयोगमें आ गए हैं कि जिन पर दृष्टि ही कोई नहीं देता है।

और यहां जिसमें धान कूटते हैं मूसरसे, उसका क्या नाम है ? उखरी। उखरी उसे कहते हैं जो ऊपर उठी हो। लेकिन वह तो नीचे गड़ी

है। जो नीचे गढ़ी है उसे बोलते हैं उखरी। जो यह बड़ा किला है, इसको पहिले लोग क्या बोलते थे ? गढ़ी। इस गढ़ीमे जावो। गढ़ी मायने जो गढ़ गया, और वह आसमानसे बातें कर रहा है। तो यहा पर दीप निर्वाण कहा है कि दीप निर्वाणका नाम मोक्ष है। दीप निर्वाणमें बुझना बताया है। दिया बुझ जाने का नाम मोक्ष है और भी तो शब्द दिया है निर्वाण। यहां यह नहीं समझना कि जैसे दिया बुझ जाने पर वह दिया न इस ओर गया, न उस ओर गया, न ऊपर गया, न नीचे गया, न कहीं भगा किन्तु वहां हो क्या गया कि बुझ गया। इसी तरह जब आत्मा न यहा रहे, न वहा रहे, न कहीं जाये, किन्तु हो क्या जाये कि बुझ जाये, उसीका नाम है मोक्ष। इस दृष्टिका खण्डन करनेके लिए यह निर्देशन दिया गया है कि मोक्ष गुणके समूहसे राजित है।

और भी देखिए। कुछ लोग ऐसा मानते है कि आत्मामें गुण आत्माके नहीं हैं। वे गुण अलग चीज हैं और उनका समन्वय होता है. तब आत्मा गुणी कहलाता है। जैसे लाठी अलग चीज है और आदमी अलग चीज है। जब आदमीके हाथमे लठिया पकड़ा दी जाये तो उसे कहेंगे लाठी वाला। लोग बोलते हैं कि आत्मा अनन्त गुणों वाला है तो वे गुण न्यारे हैं। अथवा गुणोंमें आत्माका समन्वय हो तब कहेंगे अनन्त गुण वाला। सो उन गुणोंका जब तक आत्मासे समन्वय रहता है, सम्बन्ध रहता है तब तक इसका ससार है और जब उन गुणोका अभाव हो जाता है तब उसका नाम है आत्माका मोक्ष। ऐसा भी कहने वाले कुछ सिद्धान्त हैं। उन सिद्धान्तोको भी निरस्त किया गया है ? इस विशेषणसे कि आत्मा मोक्ष अवस्थामें परिपूर्ण गुणोंसे विराजित रहता है। इसमें एक वाक्यके अशकी सार्थकता बताई है। अब इस ही दोहेमें यह लिखा है कि मोक्ष यदि उत्तम न होता तो यह लोकके अग्र भागपर क्यों ठहरा होता ? यही है मुख्य मोक्ष।

सिद्ध लोकके अग्र भाग पर ठहरा हुए हैं—इस विशेषण से भी कितना प्रकाश पड़ गया है ? कोई लोग ऐसा भी मानते हैं कि जहां ही मुक्ति होती है वहा ही जीव ठहर जाता है, किन्तु ऐसा है नहीं। जीवका ऊर्द्धगमन स्वभाव है। जैसे कीचड़से चिपटी हुई तूमड़ी बनाएँ और पानीमें डाल दें तो वह नीचे, जाकर ठहरती है उस पानीके सम्बन्धसे वह कीचड़ धुल जाता है और वह तूमड़ी जलके ऊपर आ जाती है। इसी प्रकार कर्मोंका कीचड़ इस जीवके लिपटा हुआ है, यह नीचे यत्र तत्र जन्म-मरण कर रहा है और सम्यक्‌भावके कारण जैसे ही इस जीवके कर्म धुल गए वैसे ही यह जीव एकदम लोकके अग्रभाग पर जाकर ठहरता है। लोकके अग्रभाग पर मुक्त

जीव ठहरता है— इस विशेषणसे यह सिद्ध किया गया है कि जहां मुक्ति होती है वहा ही वह नहीं रहता है। ऊर्द्ध गमन स्वभावके कारण यह जीव लोकके अग्र भाग पर पहुच जाता है। जैनसिद्धान्तमें तो इन्द्रियजनित ज्ञान और सुखके अभावमें होने वाले अतीन्द्रिय रूप जो केवल ज्ञान है, जो आत्मवस्तु स्वभाव है, वह तो और अधिक प्रकट होता है, उसका अभाव आत्मामें नहीं हो सकता है। वहा मोक्षमे इन्द्रियजनित ज्ञान और सुखका अत्यन्त अभाव है, पर अतीन्द्रियज्ञान और सुखका अभाव नहीं है। वहां सुख और दु ख आदि विकार नहीं हैं।

उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।
तो किं सयलु वि कालु जिय सिद्ध वि सेवहिं सोइ ॥७॥

यह मोक्ष यदि अतीन्द्रिय परम आल्हादरूप सुख देने वाला न होता तो केवल ज्ञानादिक गुण सहित सिद्ध भगवान् कैसे उस मोक्षकी निरन्तर सेवा किया करते ? वह सिद्ध अविवेकी तो नहीं है, जो कि विना ही प्रयोजन उस मोक्ष सुखकी सेवा किया करता है। आरम्भ अवस्थामें ही जिस जीवको आत्मानन्द का अनुभव हुआ है, वह फिर इस ही आनन्दके अनुभवके लिए हठ करता है। अज्ञानी जन धनसे हित मानकर धनकी वृद्धि के लिए ही हठ वनाए, नेता जन ख्याति प्रसिद्धिसे ही अपना हित जानकर ख्याति प्रसिद्धिके लिए ही अपना हठ वनाए, साधुजन ज्ञानमात्र आत्माके ध्यानसे ही अनन्त आनन्द प्रकट होता है— ऐसा जानकर उस आनन्दके लिए ही हठ वनाए हुए हैं और ये ही साधु अपने आनन्द प्राप्ति के लक्ष्यमे पूर्ण सिद्ध हो जाते हैं तो सिद्ध होकर फिर अनन्त काल तक इस ही आनन्दके अनुभवमें अपना परिणमन कर रहे हैं।

शुद्ध परिणमनका कारण है भेदविज्ञान। यह भेदविज्ञान जिसका निकट होनहार है— ऐसे मेढ़कों के भी हो जाता है। सप्तम नरकके नारकी जो रात दिन पिटते रहते हैं, उनके भी हो जाता है और सर्वश्रेष्ठ मनुष्य-पर्याय वाले यदि भोग विषयोंमें ही मस्त रहते हैं तो उनके नहीं हो सकता है।

वह पुरुष वडा भाग्यशाली है जिसके धर्मपालन की रुचि जगी है और धर्मपालनके समक्ष समस्त विभावोंका भी मूल्य नहीं करता है। जिसकी दृष्टिमे करोडोंकी सम्पदा छोडकर धर्म पालन है— ऐसी दृष्टि वाले गृहस्थजन धन्य हैं। वे अपने सहजज्ञानस्वभावको पोषण करते हैं। इस प्रकारके साधु परमेष्ठी जब अपने परमशरणभूत ज्ञानस्वभाव की उपासना करते हैं तो इसके प्रतापसे वे सर्व कर्मों का क्षय करके सिद्ध हो जाते हैं

हम आप सब प्रभु ही तो हैं। हम आपमें बड़ी सामर्थ्य है। यह क्या कम सामर्थ्य है कि अभी मनुष्य बने बैठे हैं और कहो गोलमटोल कीड़ा बन जायें। यह क्या कम ताक़तकी बात है? बन तो ले कोई जड़पदार्थ, यह भी प्रभुताका एक विकास है। संसारमें रुलना, सुखी दुखी होना, घबड़ाहट मचाना, कीड़ा मकौड़ा पेड़ आदि बन जाना, मनुष्य बन जाना, संगीतके कविके व्यापारमें कुशलता पाना—ये सब बातें इस चैतन्यप्रभुकी प्रभुताकी ही तो हैं। पर यह विकृत प्रभुता है। इसमें आनन्द प्राप्त नहीं होता। केवल कष्ट ही है। जैसे एक पुरुष जंगलमें लकड़ी बीनने गया। उस जंगलमें आग लग गई, वह एक पेड़ पर चढ़ गया। पेड़ पर चढ़ा हुआ पुरुष चारों ओरके दृश्य देखकर आनन्दमग्न हो रहा है। देख रहा है लो वह हिरण मरा, यह खरगोश देखो जल रहा है। इस तरह चारों ओरके सब खेलोंको देख रहा है। लो यह खरगोश भुन गया, बहुत बचना चाहा, पर मर गया। चारों ओर सब जीवोंको जलता हुआ देख रहा है पर उसे यह पता नहीं है कि यह चारों ओरसे आग बढ़कर इस वृक्षको भी भस्म कर देगी, हम भी भस्म हो जायेंगे। इसका इस मोहीको पता नहीं है।

इसी प्रकार हम दूसरोंको बहुत सी बातें बताते रहते हैं—इसने यह गल्ती की, यह इस तरह चले तो लौकिक कामोंमें सफलता हो। अमुक यों मर गया, अमुक असहाय है, यह केवल कल्पनासे ही अपना बड़प्पन मान रहे हैं। ये सब कुछ नहीं हैं, ये सब देख रहे हैं कि सभी संकटमें पड़े हुए हैं पर यह नहीं मान सकते कि ऐसे संकटोंके बीचमें हम भी तो पड़े हुए हैं। इस ओर दृष्टि नहीं जाती। मोहका प्रताप ऐसा होता है कि खुदकी गल्ती खुदको नहीं मालूम होती। यह सारा जगत् दुःखसे परिपूर्ण है। इस लोकके बीच रहकर भी यदि एक ज्ञानस्वभावका आदर किया होता तो यही रक्षक था और उस निज ज्ञानस्वभावका आदर न कर सके तो कुछ भी करते जाइए, इस जीवकी रक्षा नहीं है। सिद्ध भगवान्के सुखको देखो, उनका सुख आत्माके उपादानसे सिद्ध हुआ है। किसी अन्य भोग विषयसे उन्हें सुख नहीं मिला, किन्तु अपने आनन्दमय आत्माके स्वभावसे ही उन्हें सुख हुआ है। उनका सुख अतिशय वाला है और इन संसारी जीवोंका सुख निरतिशय वाला है। स्वप्नकी एक कल्पनासी हो गई है। जैसे किसीने स्वप्नमें देखा कि राज्य वैभव मिल गया, उस स्वप्नमें ही वह आनन्दमग्न हो रहा है। पर नींद खुलने पर उसे कष्ट होता है। इसी प्रकार ये सब मोही जीव मोहकी नींदके स्वप्नमें आनन्दमग्न हो रहे हैं और दुःखी हो रहे हैं। पर वह सुख मिथ्या है और दुःख भी मिथ्या है।

एक सेठ थे। सो गए घरमें। गर्मीके दिन थे, किन्तु घर वड़ा ठंडा वनवा रखा था। उस घरमें वड़े आरामसे पलंग पर लेट गये, नींद आ गई। वे स्वप्न देखने लगे। वड़ी कठिन गर्मी लग रही है, इस गर्मीसे कैसे बचें ? सो उपाय सोचा कि चलो समुद्रमें थोड़ा विहार कर आएँ नावमें बैठकर तो समुद्रके जलकी शीतल तरगे गर्मीको दूर कर देंगी। चला वह समुद्रके किनारे। ये सब स्वप्नकी वातें कही जा रही हैं। नाविकसे बोलता है ऐ नाविक ! तू समुद्रमे सैर करा देगा ? हां हां। दो रुपया फीस है। हां हां दो रुपया लो। नावमें वैठ गया। अब पानीमें जहाज १ मील तक पहुंच गया। सब स्वप्नकी तो वातें हैं। एक मिनटमें चाहे १० मील ले जावो। सोचनेमें क्या देर लगती है ? तो जैसे स्वप्नमें सोचनेमे कुछ नहीं लगता ऐसे ही इस जिन्दगीमें भी सोचनेमे कुछ नहीं लगता। उस नावमें बैठकर एक मील तक जहाज पानीमें चला गया। फिर सहसा देखा कि एक भँवर पड़ी है उसके बीचमें नाव फँस गई है। वड़ी बुरी हालत होती है किसी भँवर में नावके फँस जानेसे। तभी तो उस फसावका दृष्टान्त दिया है भजनोंमें। "नैया पड़ी मझधार" यों दिया करते हैं। भँवरमें नैया डूबने लगी, उस सेठ के साथ सारा परिवार भी था। सब स्वप्नकी वातें हो रही हैं। नहीं तो सभी वातको सुनकर तुम भी दुःखी होने लगोगे। ओह उस सेठको ऐसा दुःख है, सोच रहा है कि अब तो हम मरे, हमारे घरके सब मरे और जो हमारे पास धन है वह भी खत्म हो जायेगा। भला वतलावो ऐसा स्वप्न हो रहा है तो उसके दुःखका क्या ठिकाना ? वह सेठ वड़ा दुःखी है। वह सचमुचका दुःख भोग रहा है। भीतरमें कितनी कल्पनाएँ कर रहा है ? अच्छा अब जरा वतलावो कि उसके दुःखको मिटाने का कोई उपाय है क्या ? है। वैसे तो कमरेमें पलग पर पड़ा है। कुछ मित्र लोग भी पासमें कुर्सीपर वैठे हैं। पवन चलाने वाले अपने-अपने स्थान पर तइनात हैं। ऐसा तो आरामका वातावरण है, किन्तु सेठकी देखो-क्या हालत हो रही है ? सेठ वड़ा दुःखी हो रहा है। उसका दुःख मेटनेका उपाय है कि वह जग जाये। वह जग जाय तो उसकी सारी घवड़ाहट दूर हो जायेगी। सारी सकटकी वातें समाप्त हो जावेंगी।

अब तो प्रायः लोगोंके उत्तम आत्मस्वरूपकी वात सामने है। देखो जब बहुत छोटा बचा होता है साल भरका तो उसका खिलौना किस तरहका होता है ? वही काठवाकी मुठिया, क्योंकि उसके हाथ नहीं पसरते हैं। साल छः माहके बच्चेके हाथ नहीं फैलते हैं। सो उसके खेलनेका सिस्टम है कठवा की मुठिया खेलना। [illegible] वह उस मुठियाको चूसता भी रहता है और

जब वह बालक ५-६ वर्षका हो जाता है तो उसे यदि काठकी मुठिया खेलने को दी जाये तो ठीक न लगेगा। अब उसे क्या चाहिए खेलनेको ? दौड़नेके, छूनेके अथवा बहुतसी चीजें जोड़ने का। उन बालकोंके पास बहुत सी चीजों का भण्डार मिलेगा, जिनकी आप कल्पना नहीं कर सकते हैं। कहीं छोटे ककरा धरे होंगे, टूटी चाक, टूटी पेंसिल, माचिसकी तीली, टूटे फूटे बटन, इन सबका संग्रह करते हैं और उस खेलमें मस्त रहते हैं। और क्यों जी जब १५-१६ वर्षका हो जाये तो क्या ये खेल उसे सुहायेगा ? उसे तो हाकी, बल्ला, क्रिकेट, फुटबाल, गिल्ली डंडा ऐसे ऐसे कुछ खेलके साधन चाहिये। और क्यों जी जब २०--२५ वर्षका हो गया तो अब ये खेलके साधन सब छूट गए। अब तो वह घर गृहस्थीमें अपने खेलका साधन समझता है और जब बड़ा हो गया, ४०-५० वर्षका हो गया, अब उसे ये खेल भी नहीं सुहाते। यहां वहा की बातें सुनना, कुछ ज्ञानार्जन करना सुहाता है। इसी तरह ज्ञान के हिसाबसे ज्ञानी जीवके मन रमने के कारण भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। जो प्राथमिक दशा है उसको धारण करना है। सो देव, शास्त्र, गुरुका सम्मान रखता है यह पहिली स्टेज है, फिर और आगे यह ज्ञानी प्राणी शास्त्र स्वाध्याय करने, तत्त्वचिंतन करने की सोचता है। वह सोचता है कि मोह के तत्त्वसे क्या लाभ ? सो रागद्वेषकी वृत्ति न हो सके, ऐसे अनुभवमें उतरने का तब वह ख्याल करता है। अब उसका सर्वोत्कृष्ट खेल रहता है भक्ति, तत्त्वचिंतन, आत्माकी उपासना।

पूर्ण विकासमय सिद्ध स्वयं बड़ा अतिशयवान् है-ऐसा अनन्तानन्द उन सिद्ध जीवोंके प्राप्त है। जैसे किसी अच्छी जगह जा रहे हो और लड़का हठ कर रहा हो, कोई थोती बातमें तो उसका दिल रम कर उसे सन्तुष्ट कर देता हो। इसी तरह ये जगत्के हम आप सब जीव सुखकी हठ कर रहे हैं तो ये पुण्यकर्म, उदयागत कर्म इन थोती चीजोंमें रमा देते हैं। रम जावो भैया! पचेन्द्रियके विषयोंमें, पर यदि इनमें ही पडे रहे तो प्रगतिका रास्ता नहीं मिल सकता है। यह भगवान् का सुख आत्माके उपादानसे सिद्ध है, अतिशयवान है, बाधारहित है, बहुत विशाल है, भगवान्के सुखमें वृद्धि और ह्रास नहीं होता वे विषयरहित हैं और किसी द्रव्यकी अपेक्षा नहीं करते हैं। वे उपमारहित हैं, ऐसा शाश्वत परमसुख भगवान्के उत्पन्न हुआ है।

गम्भीरता इस जीवके बहुत संकट भोग चुकनेके बाद आती है। आरामसे पला हुआ मनुष्य कलावान योग्यतावान नहीं होता। अव्वल तो इस कला और योग्यतामें भी विश्वास नहीं है कि ये सुखका कारण बन सकते हैं, फिर अन्य वस्तुवोंके समागम से तो सुखकी आशा ही क्या करे ?

जो सुख अतिशयवान है, अपमानरहित है, सदा काल रहने वाला है, उत्कृष्ट है, सारभूत है— ऐसा परम सुख उस सिद्ध भगवानके ही उत्पन्न होता है। सो इस दोहेमें यह बात बतायी है कि आत्मीय सुखके ही प्रति निरन्तर अभिलाषा करो, बाह्यवस्तुओंकी हठ न करो।

एक लडकेको हठ हो गया हाथीको देखकर कि यह हाथी मेरा बन जाय। वह रोने लगा। तब उस लडकेके बापने महावतोंसे कहकर हाथीको अपने आंगन में खड़ा करा दिया और बेटेसे कह दिया कि देखो यह हाथी तुम्हारा है। तब वह लडका कहता है कि यों नहीं, तुम इस हाथीको मुझे खरीद दो। (बाजारमें छोटे लड़केको भूलमें भी मत साथमें ले जाओ, नहीं तो तुम्हारे ५-७ रुपये खर्च करा देगा। जो चीज मांगेगा, उसमें हठकर लेगा। हमें तो यह चीज खरीद दो अभी। हाथी देखेगा तो वह हठ करके रहेगा।) तो उसने कहा मुझे खरीद दो। बापने कहा, लो बेटा यह तुम्हें खरीद दिया।

तो भैया! थोड़ी देरमें वह लडका कहता है कि यों नहीं। इसे तुम हमारी जेब में रख दो। क्या तुम रख दोगे उसे जेबमें? हाथी जेबमें नहीं आ सकता। अब इसकी पूर्ति कैसे करे? किसमें दम है और सब तो करते गये। हाथी तो खड़ा कर दिया, पर जेबमें उसे धर देवे। ऐसा कौन योधा है जो कर सके। शायद इसे राजामण्डी वाले बाबा कर सकें। (हंसी) कोई प्रोग्राम हो तो बतलाओ कि क्या धरा जा सकता है जेबमें? नहीं। इस हठकी कोई दवा नहीं है। इस हठमें तो वह लडका परेशान ही रहेगा। रोवेगा और लोटेगा, पर यह काम नहीं बन सकता है।

इसी तरह यह मोही प्राणी हठ कर रहा है कि हमें ये चीजें मिल जायें। कितना भी हठ करे, पर वे चीजें एकत्रित नहीं हो सकतीं। वे सब परवस्तुएं हैं, उनका क्या हठ किया जाए। पर प्रभुका सुख कैसा है? अतिशयवान् है, बाधारहित है, बहुत महान् है, जिसमें वृद्धि और ह्रास नहीं है। भगवान्का सुख कल बढ जाय, परसों बढ जाय— ऐसा नहीं है, पर यहांके बिगडे हुए भगवान्का सुख घटता और बढता है। अभी थोड़ी देर में बड़ा आनन्दमय रहता है। थोड़ी देरमें कष्ट मानने लगा। प्रभुका सुख वृद्धि और ह्रास करके रहित है। उनके सुख में कोई प्रतिद्वन्द्व भाव नहीं है। कोई बिगाड़ सके, कोई उसका प्रतिद्वन्द्वी सामने खड़ा हो जाय— ऐसा नहीं है। किसी द्रव्यकी उनको उपेक्षा नहीं है। न भोजन चाहिए, न कमरा पलङ्ग चाहिए, न लोगोंका समागम चाहिए, वे अन्य द्रव्योंकी उपेक्षासे रहित सुख वाले हैं। उनके सुखकी उपमा कहीं भी नहीं ढूंढी जा सकती

है। उनका सुख शाश्वत है, सर्वोत्कृष्ट है, अनन्तसार वाला है। जो ऐसा परमसुख उन सिद्ध भगवानमें प्रकट होता है।

भैया! अपना सुख अपने आपके आनन्दगुणके परिणमनसे होता है। दूसरों की आशा पर अपनेमें आनन्द नहीं प्रकट होता है। प्रभुका सुख स्वाधीन है और उनकी आत्मासे वह सुख उत्पन्न होता है। ऐसे सुखकी ही निरन्तर अभिलाषा कीजिए। यदि सच्चा श्रद्धान हो गया है तो यह जीव कहीं मार नहीं खा सकता है। श्रद्धान यदि सत्य नहीं है। तो पद पद पर उसे कष्ट होता है। जिसको क्रोध करनेका स्वभाव पड़ गया है उसके क्रोधकी धारा बनी रहती है। घरमें नौकर हो तो उस नौकर पर झुँझलाता रहता है और उस समय वह दुःखी तो होता है अपने ज्ञान के विरुद्ध परिणमनसे, पर लगाता दोष है उस नौकरको कि इस नौकरने यों कर दिया है इसलिए मुझे तकलीफ है। अच्छा तो नौकर बदल दो। उसका हिसाब चुका दो। नया रख लो। नया रख लिया, अब उस नए को माफ करना जा रहा है। १०-५ दिन तो वह नया नौकर अच्छी तरह निभा पाता है, बादमें उस पर भी क्रोध आने लगा। सोचा कि नौकर रखने से तो काम बहुत बिगड़ता है। मत रखो, सब काम अपने आप कर लो। जब अपने आप सब काम करने लगा तो मालूम हुआ कि रसोई बनाना तो सरल है क्योंकि खानेकी आशा लगी है। बढ़िया भोजन बनाया है खायेंगे, पर पेट भरनेके बाद जब बर्तन मलना पड़ता है तो नानीकी याद आ जाती है। सबसे अधिक प्यार करने वाली नानी हुआ करती है। विपत्ति कोई जब आती है तब उसकी ही याद आती है जो सबसे प्यारा होता है। सो वह बर्तन माजने लगा और बर्तनों को पटकने लगा।

अरे भाई! तेरे तो मानका स्वभाव पड़ा हुआ है। ज्ञान बलपूर्वक जगे तो तुझे कुछ शान्ति मिलेगी और सुख मिलेगा अन्यथा सुख नहीं मिल सकता है। तू क्रोधमें ही डूबा रहा तो दुःखी रहेगा। सो श्रद्धा तो गलत है, बाह्य वस्तुओं की आशा है तो कभी सफलता नहीं मिल सकती है। इसलिए सही श्रद्धान होना चाहिए स्वयं ज्ञान और आनन्दका। यह ज्ञान और आनन्द स्वयमेव प्रकट होता है, सो ज्ञानानन्दमय सिद्धप्रभुकी तरह अपने स्वरूपका निरन्तर अभिनन्दन करना चाहिए।

मोक्ष उत्तम सुख है अर्थात् कर्मोंसे शरीरसे, रागादिक विकारोंसे जो छुटकारा होता है वह उत्तम सुख है। मोक्ष अतीन्द्रिय अविनाभावी सुख स्वाधीनरूप आनन्द न देता होता तो वह कैसे उत्तम कहलाता? यदि वह उत्तम न होता तो केवल ज्ञानादिक गुणोंसे सहित सिद्ध भगवान किस

लिए उसकी निरन्तर सेवा करते हैं। इससे यह जाना जाता है कि मोक्षका सुख ही उत्तम सुख है। आत्मोपादान सिद्धम आदि श्लोकमें यह बात बतलाते हैं कि सिद्ध भगवान् के जो सुख है वह आत्माके उपादानसे सिद्ध है। देखो—आनन्द जितने होते हैं वे स्वयके आत्माके उपादानसे सिद्ध होते हैं। यद्यपि उन कर्मोंके दूर होने पर अनन्त आनन्द हुआ, किन्तु आनन्दके उपादानसे ही वह आनन्द हुआ। इसका उपादानकारण आत्मा ही है। और वह सुख प्रभुका कैसा है? अतिशयवान् है। इससे अधिक आनन्द और कहीं नहीं हो सकता है। उस आनन्दमें बाधा नहीं आती।

इन ससारके इन्द्रियजन्य सुखोंमें सैकडों बाधाएँ आती हैं। इन बाधावोंसे सभी परेशान हो रहे हैं। सभी अपनी अपनी जान रहे हैं। दूसरे यों देखते हैं कि ये व्यर्थ ही बाधावोंमें फसे हैं। भले हैं, बैठे हैं, किन्तु उनके तो परिवारके रागकी चक्की चल रही है। बच्चे बूढे, जवान सभीके, कल्पनाओंकी चक्की चलती है किन्तु सिद्ध भगवानका आनन्द बाधारहित है। उसमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं है। वह स्वाभाविक नहीं है। वह एक समान है। जो औपाधिक हो वह ही घट बढ़ हो सकता है किन्तु जो औपाधिक नहीं है वह घट बढ़ नहीं हो सकता है। वह वीतबाध है, विशाल है, उस आनन्दकी सीमा नहीं है। पूर्णआनन्द है, आकुलतावोंका वहा नाम नहीं है। सो जिसे आनन्द चाहिए वह राग छोडे। जिससे करते बने सो करले, न करते बने न करे। प्रभु पूर्ण वीतराग है। अतएव उनका सुख परम विशाल है।

भैया! गृहस्थजन उपासक कहलाते हैं। वे इसही तत्त्व की उपासना करें जिससे कि भविष्यमे वीतबाध उपाधिसे सुख प्राप्त हो। बाधित सुखकी जरूरत नहीं है, वृद्धि ह्राससे रहित वह सुख है। वह सुख घटे बढे—ऐसा नहीं है। यहा तो गिरगिटसे भी ज्यादा हम लोग रग बदलते हैं। एक जानवर गिरगिट होता है। वह पचासों बार रग बदलता है। कभी गला हरा दिखता, कभी लाल दिखता, कभी पीला दिखता। उससे भी ज्यादा हम आप रग बदलते हैं। अभी मौजमें हैं, सुखमे हैं, फिर ये ही क्लेशमें हो गए, दु ख में हो गए। प्रभुका आनन्द वृद्धिह्रासमय नहीं है और वह सुख दु ख विषयोंसे विरहित है। उसमे प्रतिद्वन्दिता नहीं है। हम आपके आनन्दमें प्रतिद्वन्द्वी अनेक हैं। रागादिक विकार हैं। निमित्तभूत अनेक पदार्थ हैं। मुख्य तो रागादिक विकार हैं। कर्मोंका उदय निमित्त है। पर प्रभुके सुखमें प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं खडा है। प्रभुका सुख अन्य जीवोंके सुखकी उपमासे रहित है, अनुपम है। यहा तो उपमा दी जा सकती है कि भाई आलूका

स्वाद कैसा है ? जैसे कच्चे केले का सूखा साग होता है वैसा ही आलूका स्वाद होता है। इस तरहसे यहा तो उपमा दी जा सकती है। सिद्धके सुखमें कोई उपमा दे सकता हो तो बतलावे कि सिद्ध भगवान्का आनन्द कैसा है ? कहां ढूढें उस प्रकार का दूसरा आनन्द ? किस पड़ौसी का नाम लें कि इसका सिद्ध भगवान्की तरह सुख है।

सिद्ध प्रभुका सुख उपमारहित है और अमित है। उसकी कोई म्याद नहीं है। शाश्वत है, सदाकाल रहने वाला है। वह सुख कभी मिट नहीं सकता, जिसमे अनन्त सार गर्भित है, ऐसा परमानन्द उस सिद्ध भगवान्के प्रकट हो जाता है। इससे क्या शिक्षा लेना है हमको कि हम निरन्तर इस मुक्तिके सुखकी ही अभिलाषा किया करें तो मुक्ति सुखकी हो करें। हम भगवान् को तो पूजने आएँ और घरकी इच्छा लगायें तो क्या पूजा हुई प्रभुकी ? नहीं। प्रभुकी पूजा प्रभुके यथार्थ गुणोंके स्मरण से है और अपना विशुद्ध आशय बना लेना है। अब अगले दोहेमे यह बतलाते हैं कि सभीको परमपुरुषोंका ही ध्यान करना चाहिए।

हरि-हर-बभु वि जिणवर वि मुणिवर विंद वि भव्य।
परम-णिरजणि मणु धरिवि मक्खु जि झायहिं सव्व ॥८॥

हरि, हर, ब्रह्मादिक, जिनवर, मुनिवर सभी और शेष सभी सम्यग्दृष्टि, सभी भव्य जीव परम निरञ्जन निज परमात्मतत्त्वमें मन को लगाते हैं, मोक्षका ही ध्यान करते हैं। जितने भी पुराण पुरुष हुए हैं उन्होंने मुक्तिके सुखका ही ध्यान किया। अपने बुजुर्गोंने धर्मप्रवृत्ति चलाई— मदिर जाना, स्वाध्याय करना, पूजा करना, वही परम्परा चली आ रही है। भादोंकी दसलाक्षणीमें विशेष समारोह मनाना, उन पुरुषोंने धर्मप्रवृत्ति रखी और जो उनमें विशेष विवेकी ज्ञानी हुए वे मोक्षकी ही आराधनामें रहे। ऐसे सिद्ध पुरुष रागादिकरहित, आकुलतारहित परमसमाधिमे स्थित हुए। उन पुराण पुरुषोंने विषय-कषायोंमें जाते हुए मनको ज्ञानबल लगाकर निज ज्ञानस्वरूप परमात्मतत्त्वमे लगाया था। कितनो के नाम ले ? हरि, विष्णु आदि इस परमात्मतत्त्वमे लगे थे। हर, महादेव ने भी निर्ग्रन्थ साधु होकर बड़ी समाधिके साथ इस परमात्मतत्त्वमें मन लगाया था। तभी तो ग्यारह अङ्ग नौ पूर्व तकके पाठी हो गए थे। फिर क्या हुआ ? यह बात दूसरी है।

कैसा है वह परमात्मतत्त्व कि ख्याति, पूजा, लाभ आदि समस्त विकल्पजालीसे शून्य है। कैसा है वह परमात्मतत्त्व ? पूर्ण कलशवत् आनन्दरससे भरा हुआ है। जैसे एक घड़ेमें पानी भर देवे तो पानीमें स्वय अन्दर कुछ नहीं [illegible] पानीके अन्दर कुछ अन्तर नहीं रहता है। पानी

है तो एक समरस होकर रहता है। जैसे घडेमें लड्डुवा भर दें तो लड्डुवोंके बीचमें अन्तर रहा करता है, ठोस नहीं भरा जा सकता है। पर पानी तो बिलकुल ठोस भरा जाता है। पूर्ण कलशको जो लोग मगल मानते हैं वे इसी कारण मानते हैं कि पूर्ण कलश आत्माकी यह याद दिलाता है कि जैसे यह कलश पानीसे भरा हुआ है, बीचमें कुछ जगह शून्य नहीं है इसी प्रकार यह आत्मा केवल ज्ञानादिक गुणोंसे भरा हुआ है। इसमें अन्तर नहीं है।

यह सुख कैसे उत्पन्न होता है? निर्विकल्प समाधिसे निर्विकल्प समाधिका अर्थ क्या है कि जो शुद्ध है, बुद्ध है, ज्ञानज्योतिस्वरूप है, सहज है—ऐसा जो स्वरूप है उस स्वरूप रूप परमात्मद्रव्यका, निज आत्मद्रव्यका सम्यक्श्रद्धान हो, ज्ञान हो और अनुभरण हो, ऐसे रत्नत्रयके परिणामको निर्विकल्प समाधिभाव कहा गया है। उस निर्विकल्प समाधिभावसे उत्पन्न हुआ जो वीतरागसहज आनन्द है, उसके अनुभवसे जो पूर्ण पूरित है, पूर्ण निरंजन है— ऐसे पुराणतत्त्वमें स्थित होकर मोक्षको ही ध्याता है। इस दोहे से यह शिक्षा मिलती है कि यद्यपि व्यवहारसे सविकल्प अवस्थामें वीतराग सर्वज्ञदेवको ही ध्याना चाहिए और प्रतिदिन सर्वज्ञदेवका ध्यान करना चाहिए। उनके वाचक मंत्र अक्षरों का ध्यान करना चाहिए और उस परमात्मतत्त्वकी आराधना करने वाले पुरुष को भी ध्याना चाहिए। फिर भी जब वीतराग निर्विकल्प तीन गुप्तियोंमे गुप्त परमसमाधिके क्षण प्राप्त होते हैं उस समय निज शुद्ध आत्मा ही ध्येय होता है।

भैया! जैन आगममें सर्व प्रकारका उपदेश है, सबकी सिद्धिका उपदेश है। प्रथमानुयोग, करुणानुयोग, चरणानुयोग ये सब कल्याणके लिए हैं। इसी कारण सब प्रकारके उपदेश हैं। जो चीज विनाशीक है उसका वैसा उपदेश दिया है। एक मासभक्षी क्रूरकर्मी चाडाल है उसको कहा जाता है कि तू मांस खाना छोड दे, तेरा कल्याण होगा। मास छोडना धर्म है। और जो कुलके अच्छे लोग हैं, कुलीन लोग हैं उनके लिए और प्रकारसे उपदेश है। तुम रात्रि भोजन न करो, देवदर्शन किया करो और जो कुछ ज्ञानसे प्रेम रखते हैं, उनको वस्तुस्वरूपके बोधका उपदेश है। जो और विशेष ज्ञानी हैं उनके लिए शुद्ध निश्चयनयका उपदेश है। और जो वीतराग निर्विकल्प समाधिमे स्थित हैं उनके लिए तो एक निज शुद्ध आत्मस्वरूपका उपदेश है। जैसी जिसकी भूमिका है उस भूमिका के अनुसार उपदेश है। अभी कोई वक्ता बहुत ज्ञान प्राप्त कर चुके शुद्धनयका, परमसुखका उसे ज्ञान आजाये और उसका उपदेश सबपर अजमावें तो वह नहीं बनता है। यह भिन्न-भिन्न गोष्ठीकी बात है।

एक बार एक जैन साधुको अन्य कोई संन्यासी मिला। इन दोनोंमे विवाद होने लगा, शास्त्रार्थ होने लगा। फिर दोनोंमे यह बातठ हरी कि यहा हम दोनोंमे बात चल रही है। कोई न्यायकर्ता नहीं है। सो चलो किसी न्यायकर्ताके पास चले। चले तो उन्हें एक गडरिया बकरी चराने वाला मिला। तो वे पण्डितजी अपनी सस्कृतकी छटा छोड़ने लगे। वेचारा गड़रिया यों ही रह गया। वह न समझ सका कि क्या कह रहे हैं? अब उस साधुने सारी बाते बता दीं। भेड़ोंको ऐसे पाला जाता है, ऐसे खिलाया जाता है, ऐसे रखा जाता है, उसकी सारी बाते गडरियाकी समझमें आ गई। अच्छा बतलावो कौन जीता? जिसकी बाते उस गढरियेकी समझमे आ गई वही जीता। ऐसे ही दूसरी जगह दोनों गए। वहा प्रसग छिड गया, वहा भी साधु विजेता हुआ। तो यह तो अन्य विषयोंकी बात है। पर यहां सर्व प्रकारका उपदेश है। निम्न छोटीसी प्रतिज्ञासे लेकर बडे ज्ञान और चारित्र तक की बातका उपदेश है, पर सबसे अतमे चलकर जब अपने शुद्ध ज्ञान-स्वरूपके उपयोगके बलसे निर्विकल्प समाधिमें वर्तता है उस कालमें निज शुद्ध आत्मा ही ध्येय है। अब कहते हैं कि इस लोकमें मोक्षकी प्राप्ति करो। अन्य सुख परम सुखका कारण नहीं है, ऐसा निश्चय करते हैं।

तिहुयणि जीवहँ अत्थि णवि सोक्खह कारणु कोइ।
मुक्खु मुएविणु एक्क पर तेणवि चिंतहि सोइ ॥९॥

तीन भुवनमे ऐसा अन्य कुछ नहीं है जो वास्तविक परम सुखका कारण हो। मोक्षको छोडकर इस कारण एक उस मोक्षका ही ध्यान करो। अपने कामके तत्त्व सात हैं जिनका जानना बहुत जरूरी है। जीव, अजीव, आश्रव, वध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इनमे मूल तो दो हैं। जीव और अजीव। जो चैतन्य शक्ति रखता है वह जीव है और जो चैतन्यशक्तिसे शून्य है वह अजीव है। फिर जीवके अजीव आवे उसका नाम आश्रव है। अजीव है कर्म, सो जीवमे कर्म आना आश्रव है, जीवमे अजीवका वध जाना सो वध है। जीवमें अजीव रुक जाये, जीवसे अलग रहे, न उत्पन्न हो, न आये तो उसे कहते हैं सम्वर और पहिलेके आए हुए कर्मादिक झड़ जाएँ उसका नाम है निर्जरा और सर्व कर्म उपाधि दूर हो जाएँ, केवल एक आत्म-तत्त्व रह जाये तो इसका नाम है मोक्ष। यह मोही जीव इस तत्त्वमे कैसा श्रद्धान् रखता है।

यह जीव चैतन्य उपयोगमय प्रभु मोहमें अपनेको मानता है। पुद्गलादिक रूप। शरीर उत्पन्न होता है तो मान लेता है कि मैं उत्पन्न हुआ। शरीर और आत्मा कैसे हैं, तिलमें तेलकी तरह तिल भिन्न हैं और तिलका

छिलका भिन्न है, पर कोल्हूमे पिलकर सब फैमना हो जाता है। इसी प्रकार देह भी भिन्न है और आत्मा भी भिन्न है। एक क्षेत्रावगाह है मगर लक्षण पर दृष्टि दे तो कहा तो ज्ञान ज्योतिर्मय आत्मतत्त्व और कहा धूलमधूलना पडा हुआ मूर्तिकतत्त्व ? पर यहा मानते हैं शरीरको कि यह मै हू। रागद्वेष म ह ही सकटके कारण हैं। दूसरा कोई संकटोंका कारण नहीं है। मगर यहा राग उत्पन्न करके चैन मानते हैं। पुण्यका बध हो, पापका बध हो। उनका उदय तो आयेगा ही। पुण्यके फलमे सम्पदा मिली तो उसमे हर्ष मानते हैं और पापके फलमें निर्धनता आदिक मिली तो उनमे यह विषाद मानता है। अरे तू तो पाप पुण्यके फलसे रहित है, पापसे रहित है, शुभ अशुभ विकारोंसे रहित है। तेरा जो शुद्ध ज्ञानस्वरूप है उसको ध्या।

सवरतत्त्व आत्माका बडा प्रयोजक है। पर सवरका जो उपाय है उसमे सच्ची दृष्टि नहीं करता। यह वैराग्य भाव आत्माके हितका कारण है, सो इसे कष्टदायी मानते हैं। निर्जरा होती है इच्छा को दूर करनेसे, पर यह चाहको रोकता ही नहीं है। मनमें जो आया उसका हठ करने लगता है कि यह होना ही चाहिए। मोक्षका स्वरूप निराकुलता रूप है, पर उसकी बाट ही नहीं जोहता। चित्त लगा है सासारिक सुखमें ऐसी दशा है। निज तत्त्वके सम्बन्धमे इस जीवकी विपरीत श्रद्धा है और उसी विपरीत श्रद्धाका यह फल है कि नाना प्रकारके शरीर मिलते रहते हैं, जितने काल रहते हैं अनेक कष्ट उत्पन्न होते हैं।

तीन लोकमें केवल एक मोक्ष ही परमसुखका कारण है। शेष और कोई तत्त्व सुखका कारण नहीं है। मोक्षसुख और विषयसुखका अन्तर देखो, यह विषयसुख पचेन्द्रियके विषयके अनुभवरूप है। इसमे अन्तर आया करता है और मोक्षसुख निरन्तर है, अन्तररहित है। यह ससारका सुख अतिशयरहित है। यह सुख होता है, मिटता है। फिर होता है, यह निरतिशय सुख है, पर मोक्षका सुख पूर्ण अतिशयवान् है। ऐसे सुखका कारण इन्द्रियोंके अनुभव नहीं हैं, किन्तु रागद्वेषकी मुक्ति ही ऐसे शुद्ध सुखका कारण है। सो हे प्रभाकर भट्ट! तू वीतराग निर्विकल्प परम समतारूप निज शुद्ध आत्मस्वभाव का ध्यान कर।

अब यहा प्रभाकर भट्ट पूछ रहे हैं कि हे भगवान् अतीन्द्रिय सुखका बहुत दोहोंमे वर्णन करते आ रहे हैं, पर यह लोगोंको समझमें नहीं आता कि वह मोक्ष क्या है ? तब भगवान् बोलते हैं अथवा योगीन्दुदेव कहते हैं कि हे प्रभाकर भट्ट! जैसे एक कोई पुरुष आकुलतारहित निराकुल चित्त होकर किसी प्रसगमे पचेन्द्रियके भोग सेवासे रहित होकर बैठा है, जैसे कोई

आदमी अपने मकानके चबूतरे पर बैठा हो, उस समय न कुछ खा रहा, न कुछ भोग रहा और फिर भी कोई उससे पूछता है कि तुम सुखसे ठहर हो ना ? तो वह उत्तर देता है कि हां सुखपूर्वक हैं। चलते हुए लोग कहते हैं ना कि कहो भया आनन्दसे बैठे हो ना ? तो बोलता है, हां खूब आनन्द है। न कुछ खा रहा, न कुछ भर रहा, न कमाई हाथ है, फिर भी कहता है कि बडा आनन्द है। वह आनन्द किस चीजका था ? वह आत्मासे उठा हुआ आनन्द है। इसी प्रकारसे विषयरहित अवस्थामें भी आत्मामें एक सहज आनन्द प्रकट होता है। मोक्ष सुख तो आत्माधीन है। इस ही का वर्णन इस दोहेमें, इस टीकामें कुछ विशेष विस्तारसे किया जायेगा। जिसको इन्द्रियों के विषयके सेवनमें ही सुख प्रतीत होता है ऐसा कोई जिज्ञासु पुरुष पूछ रहा है कि क्या इन्द्रियज सुखसे भी विलक्षण अतीन्द्रिय सुख कोई प्राप्त हुआ करता है ? उसके उत्तरमें कहा जा रहा है कि जैसे कभी कोई पुरुष कहीं एकांतमें बैठा हो या घरके चबूतरे पर ही सुखपूर्वक ठहरा हुआ हो और उससे कोई पूछे कि कहो भाई आनन्दसे तो हो ? तो वह कहता है कि बहुत आनन्द है। उस समय न वह भोजन कर रहा है, न किसी इन्द्रियके विषय का सेवन कर रहा है, फिर भी उसके सुख अनुभव हो रहा है। न वहां स्त्री-सेवन है, न वहां उत्तम गंधका सूँघना है, न वहां किसी रूपका अवलोकन है, न कोई गान तान सुना जा रहा है, फिर भी वह कहता है कि बडे सुखसे है। वह सुख क्या है ? वह अतीन्द्रिय सुख है। जब बाह्यविषयोंसे प्रवृत्ति हटकर अपने आपमें अपने आपकी ओर झुकता है उस समय जो आनन्द है वह अतीन्द्रिय आनन्द है।

और भी देखो कि एकदेश विषयोंके व्यापारसे रहित पुरुषका एक-देश आत्मीय सुख प्राप्त किया जाता है। अपने वीतराग निर्विकल्प स्वसम्वेदन ज्ञानमें रत पुरुषोंका जब समस्त पचेन्द्रियविषयक, मनोविषयक विकल्पजाल दूर हो जाता है तो वही सुख विशेषरूपसे अनुभूत होता है। भोजन करते जावो तो जितने क्षण भोजन किया जा रहा है उतने क्षण आकुलता है। सभी जानते है कि कैसा लपलप करके खाते हैं ? कैसा कौर चबाकर खाते हैं ? एक कौर दाल रोटीका मुँहमें लिए हैं और एक कौर हाथमें लिए हैं। चैन नहीं पड़ती कि जो कौर मुखमें है उसे गटक तो ले। एक कौर तो मुखमें रखा है, एक हाथमें लिए हैं और तीसरे कौर का मनमें विचार चल रहा है कि अब तीसरा कौर किस पर धरें ? यह विचार हमारा चल रहा है तो क्षोभका, उससे जो वेदना होती है उसको न सह सकने से इन्द्रियके विषयोंमें प्रवृत्ति है। कहीं इन्द्रिय विषयोंसे सुख नहीं है।

यदि भोजनसे ही सुख हो तो फिर खाते जावो, गले तक भरलो, एक कौर मुँहमें रखकर ओठोंको बद किये रहो। क्या इससे सतोष हो जायेगा ? नहीं। अरे जब भोजन छोड़कर कमरेमें बैठकर चम समय पर पसारकर पडे हैं, आखें बद करके पडे हैं। वहा कुछ आत्मीय सुख है। पर विषयों मे तो सुखकी झलक ही नहीं है। वे सब भ्रममे कल्पनामें माने हुए सुख हैं तो यदि इन्द्रियविषयोंमें थोडा भी हटाव है तो उस हटावमें सुख मिलता है। फिर जो योगी समस्त इन्द्रियोंके विषयोंसे हटे हुए होते हैं उनको तो आत्मीय सुख और विशेषरूपसे प्राप्त होता है और सिद्ध भगवानके तो स्वसम्वेदन प्रत्यक्षगम्य वह आत्मीय सुख है, अनुभवगम्य नहीं। वह साक्षात् सखको भोगता है। मुक्त जीवके इन्द्रियज व्यापार नहीं है फिर भी सुख है। जो वीतराग निर्विकल्प समाधिमें रहने वाले योगीश्वर हैं, उनके पचेन्द्रिय विषयोंके व्यापार नहीं हो रहा है तो भी स्वाधीन वीतराग परमानन्द सुखकी प्राप्ति होती है।

इस दोहेमे यह बतलाया है कि आत्मीय सख ही उपादेय है। अन्य सुखोंमे बुद्धि न फसावो। सबको मायारूप समझो। आत्मार्थ अतीन्द्रिय सख कैसा है ? अतिशयवान और आत्मासे उत्पन्न होने वाले विषयोंसे विपरीत है। ससारके सुखमें तो दम नहीं है, वह तो हुआ और मिट गया। जब यह सासारिक सुख होता है तब बीच-बीचमें क्लेश भी होता है, निरतिशय है, दु खके सम्मुख ले जाने वाला है। सुख और दु ख चक्रकी तरह घूम रहा है। सुख आता है तो इसके बाद दु ख आयेगा, दु ख आता है तो इसके बाद सुख आयेगा। सुख नष्ट होगा तो दु ख देकर नष्ट होगा और दु ख नष्ट होगा तो क्लेश देकर सुख होगा। दु ख आता है सुख दिलानेके लिए, सुख आता है दु ख दिलानेके लिए। घर-घर तो यह हाल देखा जा रहा है। क्या यह सुख जीवन भर रहता है ? अरे एक घटा तो लगातार रहता नहीं है। थोडी कल्पनामें सुहावनी बात आ गई तो सुख हो गया, थोडी देरमें असुहावनी बात आ गई तो दु ख हो गया।

भैया ! इस संसारके सख दु खकी प्रतिष्ठा न करो। आत्मीय सुखको ही वास्तविक सुख मानो। यह केवल आत्माके उपादानसे सिद्ध है। इस आत्मीय सुखमे धन दौलत परिवार आदि किसी भी बातकी आवश्यकता नहीं है। यह सुख स्वाधीन है, विपदाओंसे परे है, अनुपम है, इसका कभी विनाश नहीं होता है और कभी अन्तर भी कुछ नहीं आया करता है। वह प्रभुका सख लगातार रहता है। ऐसा नहीं है कि उनके सुखमें एक मिनटका भी अन्तर हो जाये। सिद्ध प्रभुका आत्मानन्दरस निर्विकार है। बीचमें

कदाचित् क्लेश नहीं हो सकता। ऐसा सुख शुद्धोपयोगी पुरुषोंके अथवा शुद्धोपयोगसे सिद्ध हुए आत्मावोंके हुआ करता है। इस आत्मामें अचिन्त्य शक्ति है। जो सोचले वह हो जायेगा। विभावोंकी बात सोचेगा तो संसार हो जायेगा, स्वभावकी दृष्टि करेगा तो मुक्ति मिल जायेगी। जो चाहेगा सोई होगा। ऐसा आत्मामें अचिन्त्य प्रभाव पड़ा हुआ है। यह आत्मा अचिन्त्य शक्तिमान् है, पूर्ण सुखी है।

अब यह बतलाते हैं कि जिस मोक्षके होने पर ऐसा अतीन्द्रिय सुख होता है, उस मोक्षका स्वरूप क्या है? एक बार एक राजाने मन्त्रीसे बड़ा विवाद किया कि न तो कोई आत्मा है और न परमात्मा है। कई दिन तक विवाद होता रहा। एक दिन राजा घोडे पर चढ़ा हुआ चला जा रहा था, रास्तेमें मंत्रीका घर मिला। घोडे को रोककर मंत्रीसे कहता है कि हे मन्त्री! बतलावो तुम आत्मा व परमात्मा क्या है? मंत्री कहता है—राजन, घोडेसे उतरो, आरामसे बैठो तब कुछ बातचीत होगी। तब समझ जावोगे। राजाने कहा १० मिनटमें बता दो। मंत्रीने कहा महाराज माफ करो, १० मिनटमें नहीं हम आध मिनटमें बता देंगे कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है? राजाने कहा बतलावो, सो मंत्रीने कोड़ा उठाया और तीन चार राजाके जमाया तो राजा कहता है—अरे भगवान! तब मंत्री बोला कि जिसे तुम अरे कह रहे हो, वह है आत्मा और जिसको भगवान कह रहे हो, वह परमात्मा है।

आत्मा और परमात्माका स्वरूप अनुभवसे सिद्ध होता है। बातोंसे नहीं सिद्ध होता है। सुनने से नहीं होता। और इसके लिए अन्त-चारित्रका निर्माण करना चाहिए, परमात्माके दर्शन करना चाहिए। वह अन्त चारित्र क्या है? विकल्पो का त्याग करना। परम विश्राममें बैठना, अपने आपके आत्मोपयोगमें संयत होना। इस तपस्याके प्रसादसे केवलज्ञान स्वरूपका अनुभव रहता है और वह सहजआनन्द प्रकट करता हुआ अनुभव मे आता है वही प्रभुस्वरूप है। जहां ज्ञान और आनन्दका ही अनुभव होना है वही प्रभुका स्वरूप है। प्रभु हाथ पैर वाला नहीं है कि आंखोंसे दिख जाय। किधर ठहरा है? कहां रहता है? बस ज्ञानभाव और सहज आनन्दका जो अनुभव है उसको ही प्रभु कहते है। ऐसी प्रभुतामें प्रत्येक जीव मौजूद है। किन्हींकी प्रभुता व्यक्त हो गई है और किन्हीं को नहीं व्यक्त हुई है। पर प्रभुता है सबमें। वह मोक्ष क्या है इसका वर्णन इस दोहेमें कर रहे है।

जीवहं सो पर मोक्खु मुणि जो परमप्पय-लाहु।
कम्म-कलंक-विमुक्काहं णाणिय बोल्लहिं साहु ॥१०॥

कर्मरूपी कलंकसे रहित जीवके जो परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो

उसीको तू नियमसे मोक्ष जान—ऐसा ज्ञानी मत जन कहते हैं। ज्ञानमय अपने आपका अनुभव करके हिम्मत करना चाहिए। परिवारके जन अथवा धन वैभव, ये सभी मुझसे छूट ही कभी जायेंगे। अपनी जीवित अवस्थामें ये मेरे नहीं है ऐसा कभी ध्यान जगे तो कुछ मिलेगा भी। मरते समय हाय हाय करके छूटे तो उस छूटने से कोई सिद्धि नहीं है किन्तु जीवित अवस्था में ही भेदविज्ञान करके अभी ही प्रत्येक वस्तुसे विविक्त ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व को निरखो तो इसमें आत्मसिद्धि है। जो लोग श्राद्ध करते हैं मरे पर, जो पानी देते हैं, चढाते हैं, पडोंको भोजन देते हैं, कोई गाय देता है, कोई पलग देता है कि आरामसे हमारे बाप या बाबा पलग पर सोयें, तो वे मरे हुए बाप या बाबा मानो कह रहे हैं लोगोसे कि लोग मरने पर पानी चढाते हैं, इतना खर्च करते हैं। उससे तो अब अणुमात्र भी लाभ नहीं। यदि मेरी जिन्दगी के बीचमें ही सुखपूर्वक पानी भी पिलाया होता तो इससे बेहतर था। अब मरने के बाद गाय भी देते हैं, पलग भी देते हैं। जीवित रहने पर तो कोई आदर नहीं किया था। अब इससे भला तो यह था कि जिन्दा रहने पर पानी पीनेको पूछ लिया करते। सो ऐसा ही हाल यहा है कि मरने के बाद सब छूट जायेगा। आखिर ये सब छोडने ही पड़ेगे। जीवित अवस्थामें ही भेदविज्ञानके प्रसादसे कुछ निर्णय करलो, अपने आपके शुद्ध स्वरूपको पहिचान लो तो इससे अपना भला है और यह काम बहुत जल्दी कर लेना चाहिए। केवल सुनने और बाचनेसे ही सिद्धि नहीं है, किन्तु प्रेक्टिकल करना चाहिए।

एक पजाबीके यहा तोता था। उसको सिखा रखा था कि 'इसमे क्या शक ? एक ब्राह्मण भाई था, वहासे गुजरा। तोता रूप रगका बडा अच्छा था। पूछा कि भाई इसे बेचोगे। हा हा, बेचेंगे। कितनेमें बेचोगे ? बोला १०० रुपयेमें। बोला १०० रुपये का इसमें ऐसा क्या गुण है ? बोले इस तोतेसे ही पूछो कि इसकी १०० रुपये कीमत है कि नहीं ? ब्राह्मणने तोते से पूछा कि क्या तुम्हारी कीमत १०० रुपये हैं ? तोता क्या बोला ? 'इसमें क्या शक ?' जो सिखाया उसे बोला। उसने समझा कि तोता कुछ विचार कर उत्तर देता है। उसे तोता बुद्धिमान् मालूम हुआ। तोते को १००) में खरीद कर अपने घर ले आया। उसे खूब खिलाया पिलाया, उसकी खूब सेवा करी। १०-५ दिनके बादमें उसने सोचा कि तोता तो बहुत बुद्धिमान् है, इसके आगे कुछ धर्मचर्चा करें। सो बैठ गया रामायण लेकर रामायण की २ पक्ति पढी और तोते से पूछा कहो यह ठीक है ना ? तोता बोला— ,इसमें क्या शक ?' कोई चारित्र पूछा—तो बोला, इसमें क्या शक ? फिर

उससे कुछ गहरी बात ब्राह्मणने पूछी, तोते ! जीवका सत् चित्स्वरूप है ? तोते ने कहा—इसमें क्या शक ? ब्राह्मणने सोचा कि इससे और गहरी बात पूछें। कहा तोते इस जीवका यह ब्रह्मस्वरूप व्यापक है, लोकालोकके सर्वपदार्थोंसे भिन्न है ? तोता बोला—इसमें क्या शक ? जब कई बार उस ब्राह्मण ने वही बात सुनी तो अब उसे शक हो गया। ब्राह्मणने सोचा कि क्या मेरे रुपये पानीमें गए ? पूछता है तोते से कि कहो तोते क्या मेरे रुपये पानीमें गए ? तो क्या बोला—इसमें क्या शक ? जो बात रट ली थी वही बोल दी।

हम सब कुछ करते जायें धर्मके नाम पर, पर अन्तर मे न तो मोहमें फर्क डालें और न ज्ञानस्वरूप आत्माकी दृष्टिमे यत्न करें, केवल व्यवहारकी बातोंमे ही मन रमाये रहें, हुश हुआ करे। इस तरह ही सारा जीवन बिता डालें तो पर्वतसे गिरने वाली नदी की तरह वेगसे यह आयु बह रही है। समस्त आयु व्यतीत हो जायेगी, फिर इसकी क्या हालत होगी ? कहा जायेगा ? कहा रहेगा ? अपनी जिम्मेदारी अपने आप पर निर्भर है। परवाह नहीं करते। जैन शासन सबसे उच्च वैभव है। जहां देव शास्त्र गुरुकी कथा पूर्ण वीतरागता को लिए हुए है। निर्दोष और अहिंसाका पोषण है। जहा मोह मर्दनका अचूक उपाय दिखाया है—ऐसा जैन शासन पाया, हमने सर्वोच्च वैभव पाया। दर्शनके बाद भक्त बोलता है कि—

जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भुव चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासित ॥

हे भगवन् ! मै जिनधर्मसे रहित नहीं होना चाहता हू। मैं चाहे किसी का दास रहू, पर जिनशासनमे मेरा हृदय बना रहे।

भैया ! शातिका कारण ज्ञान है। वैभव नहीं है, पैसा नहीं है, लौकिक बातें नहीं हैं। केवल वह ज्ञान आत्माका स्वरूप है। वह ज्ञान धर्मके ध्यानसे प्राप्त होता है। यदि अपनी प्रभुताका दर्शन और अनुभव होता है तो वह सबसे उच्च विभूति प्राप्त करता है। और वैभवोंकी कुछ कीमत नहीं है। यह मोक्षका स्वरूप बताया जा रहा है कि जीवके वह परममोक्षका सुख प्राप्त होता है। हे प्रभाकर भट्ट ! जो परमात्मलाभ जीवके होता है उसीको ही तुम मोक्ष समझो। बडे-बडे ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि कर्म कलकोंसे विमुक्त जीवके परमात्मतत्त्व का लाभ होता है। वे साधु पुरुष हैं जो इस अतरग सुखकी ही आराधना करते हैं। मोक्ष क्या चीज है कि जो आत्माका स्वभाव पड़ा हुआ है उस स्वभावका प्रकट हो जाना। इसही का नाम मोक्ष है। इस मोक्ष के लिए अपने आपको कोई नई चीज नहीं जमाना है, किन्तु इस मोक्षके बाधक जो बाह्यावरण हैं उनको दूर करना है।

भैया ! यह आत्मस्वरूप, परमात्मतत्त्व टकोत्कीर्णवत् निश्चल ज्ञायक स्वरूप है। टाकीसे उकेरी गई जो प्रतिमा है उस प्रतिमाको कारीगर वनाता नहीं है। वह तो पाषाणमें पहिले से ही थी। उसको ढकने वाले जो अगल वगलमें पत्थर हों उनको दूर करना है। मूर्ति वनानेके लिए कोई चीज नहीं चिपकाना है। वह चीज व्यवस्थित है। बस उसके आवरक जो पाषाण खण्ड हैं उन आवरकको दूर करना है। अपने आप ही वह मूर्ति प्रकट हो जायेगी। इसी प्रकार परमात्मतत्त्व बनानेके लिए कोई नवीन कार्य आत्मामें नहीं करना है, वह आत्मा स्वय प्रभु है, तत्त्वस्वरूप है। पर जो औपाधिक भाव लगा रखे हैं उन औपाधिक भावो को दूर करना है। यह प्रभु स्वय अपने आप ही प्रकट हो जायेगा।

जहा परम निराकुलता है उसको ही मोक्ष कहते हैं। इस मोक्षकी दृष्टि का वाधक है अहकार। परद्रव्योंमें अहवुद्धि लगाना उसे कहते हैं अहकार। अपने आपकी वृत्तिसे अपनेको श्रेष्ठ अनुभव करना उसे कहते हैं अहकार। सो प्रथम तो यह वात हैं कि तुम किस जीवको अपना अहकार दिखाना चाहते हो ? ये जीव क्या निर्मल प्रभु हैं। अरे ये सब मलिन हैं, ससारमें रुलने वाले हैं, मेरी ही तरह है। इनको क्या अपनी शान दिखाना, किसको अहकार दिखाना ? फिर दूसरी वात यह है कि अपने आपमें अहवुद्धि करके दूसरोंके साथ तुम कैसा ही वर्ताव कर लो, पर दूसरोंमें भी तो सामर्थ्य है। वे कैसे आपके अहकारको सहेंगे ? वे भी कुछ प्रतिक्रिया ही करेंगे, उससे आपको विपदायें ही वढ़ेंगी।

एक घरमें स्त्री पुरुष रहते थे। तो स्त्री जरा हठीली थी, जो मनमे आये सो करती थी। और पतिको उसकी इच्छा माफिक करना ही पडता था। ऐसा उसका पति था। अपनी कुछ कलावोंके कारण वह स्त्री पतिको अपने वशमें किए रहती थी। एक दिन सोचा कि देखें तो आखिर कि ये मेरे कितने वशमें हैं ? उसके मनमे आया कि इनकी मूछ मुड़वा ले। पहिले मूछ मुड़ाना वुरा समझा जाता था। कोई खेद का प्रसग आये तो लोग मूछ मुड़ाते थे। तो उस स्त्रीने क्या किया कि पेट दर्द और सिर दर्दका वहाना वनाया और अपने पतिको हथकडा दिखाया। बहुतसे डाक्टर वैद्य पति ने वुलाये, पर यदि कोई सोया हो तो उसे जगाले और कोई यों ही आंख मींच ले और सोते हुएका वहाना वना ले तो कौन उसे जगा सकता है ? उसने वहुत इलाज कराया पर उसका दर्द न मिटा। पति ने पूछा—देवी, दर्द तुम्हारा किसी तरहसे मिटेगा भी ? स्त्री वोली, अभी थोड़ी देर हुई देवता वोल गए हैं कि जो तुम्हें सवसे प्यारा हो वह मूछ मुडाकर सुबह अपनी शकल दिखाये

सो मैं अच्छी हो सकती हूं, नहीं तो सुवह होने के बाद मृत्यु हो जायेगी। उस पतिको उस स्त्रीसे बडा अनुराग था। उसने मूछ मुडा लिया और बडे सुवह जाकर अपनी शकल दिखाई तो वह चगी हो गई। चंगी तो वह थी ही। अब वह रोज सुवह कहा करे– अपनी टेक रखाई, पतिकी मूछ मुडाई। पति सुनकर हैरान हो गया। उसने भी अपनी अकल चलाई।

पतिने स्वसुरालको पत्र लिख दिया कि तुम्हारी लड़की सख्त बीमार है। देवता लोग कह गए है कि जो इससे प्यार करता हो मौसी, बुआ, मा, बाप आदि वे सब मूछ बाल मुडाकर सवह ही आकर लडकी को दर्शन दे तो यह बचेगी वरना मर जायेगी। अब तो सब लोगों ने मूछ, बाल जो जिसके पास कुछ थे सब मुड़ा डाले और सवेरा होते ही उस स्त्रीके निकट आ गए। उस समय स्त्री चक्की पीस रही थी और गा रही थी। "अपनी टेक रखाई पतिकी मूछ मुडाई।" तो पुरुष कहता है कि 'पीछे देख लुगाई, मुण्डनकी पलटन आई।' उसने देखा पीछे तो उसके मा, बाप, बुवा आदि थे। वह शरमाकर रह गई। तो इन जीवोंमे किसको छोटा माने? किसको छोटा मानकर हम अन्याय या उपद्रव करे? किसे अहकार दिखाये? इससे कुछ भी तो फायदा नहीं है। उससे केवल पापका बध है।

भैया! प्रथम तो लोकमें किया जाने वाला अहकार ही खोटा फल देता है और परमार्थसे अपनी पर्यायमे किया गया अहकार, मैं मनुष्य हू, मैं क्रोधी हू, मैं इज्जत वाला हू, मैं अमुक जातिका हू इत्यादि प्रकारसे अपनी ही पर्यायमें किया जाने वाला जो अहकार है वह भव-भवमें दुःख देता है। इन समस्त क्लेशोंके काटने की बस दो ही युक्तिया है। प्रभुके सत्य स्वरूप का भजन करो और आत्माके स्वरूपको अपने ध्यानमें लगावो। ये दो ही ससार सागर से तिरनेके उपाय हैं। ऐसा अद्भुत जिनशासन पाया कि जिसके ज्ञानमें प्रवेश करे तो पता पड़ता है कि इस शासनमे कितना रत्न भरा हुआ है? वस्तुका स्वरूप जिसमें बताया है, न्यायनीतिसे जिसने ज्ञान की किरणे फैलाई है उन अध्यात्मशास्त्रोंमे प्रवेश करने पर चित्त गद्गद् हो जाता है। अहो इसमे कितना जौहर है? इससे बढकर वैभव और कुछ नहीं है। कोई सकट टलने टालने वाला है तो वह इस जिनधर्मका शरण ही है। चार दण्डकों को शरण बोलते हैं। इन चारों की शरणको प्राप्त होने से शान्ति मिलती है। अन्तमें कहते हैं—

केवलि पण्णत्त धम्म सरण पव्वज्जामि। केवली भगवान द्वारा प्रणीत धर्मकी शरणको प्राप्त होता हू। भैया! इस जिनशासनको पाया है तो अपना अध्यात्मदर्शन बढ़ावे और अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव करें, यही एक

उन्नतिका उपाय है।

जीवह मोक्खहं हेउ वरु दसणु णाणु चरित्तु।
ते पुणु तिण्णि अप्पु मुणि णिच्छएँ एहउ वुत्तु॥१२॥

इसमे मोक्षमार्ग बताया है याने छूटनेका उपाय बताया है। जैसे स्कूलमे जब बच्चे लोग घबड़ा जाते हैं बहुत देर तक स्कूलमें रहने से तो वे छुट्टीका उपाय सोचा करते हैं। और छुट्टी हो जाने पर बड़ी शाति मानते हैं। इसी प्रकार इस ससारमे रागद्वेष मोहके सकटोंमे फसे हुए इन प्राणियो को रागद्वेषके सकटोंसे छूट जाना चाहिए। उस छूटनेका उपाय क्या है, वह यहा कहा गया है। देखो हम आप सभी प्राय दु खी हैं और सबके दु ख अपने-अपने ढगके हैं। जैसे यहा तुम लोग २०० भाई बैठे हो तो इन सबके दु ख अलग-अलग विषयके हैं। प्राय हैं दु खी सभी, चाहे कोई दुपट्टा ओढ़े बैठा हो, चाहे कोई पैन्ट कोट पहिने बैठा हो, शकल सूरतसे भी अच्छा दिखता हो, पर सभी दु खी हैं। पचाध्यायी मे बताया है कि चूँकि अष्टकर्म लगे हैं इसलिए सबके सब पीड़ित हैं। एक आदमी दूसरेके प्रति सोच सकता है कि यह व्यर्थ दु खी हो रहा है। क्या रखा है इस तरहका दु ख करनेमे? व्यर्थमे इन बातोंका ख्याल करके विकल्प बना रहे हैं। एक दूसरेके प्रति लोग ऐसा सोच लेते हैं, पर स्वयपर क्या गुजर रहा है? सो अनुभव नहीं कर रहे हैं।

ससारके दु खोंसे छूटनेका उपाय क्या है? तो सीधा सुगम जल्दी कर सकने योग्य और अमोघ, जो कभी व्यर्थ न जाये, जो हम आपको जीवन में उतारना चाहिए ऐसा उपाय है। वह है एकत्व दृष्टि। वह शब्द जरा कठिन है। कुछ वर्णनके बादमे सरल हो जायेगा। अपने आपका जैसा अकेला स्वरूप है उस-पर निगाह जाना सब सकटोंके दूर करने का उपाय है। व्यवहारमें देखा होगा कि जब कोई बड़ी विपत्तिमें फँस जाता है, कोई इष्टका वियोग हो गया, बहुतसा धन टोटेमें पड़ गया या अन्य-अन्य कुछ बातें हो गई। दूसरोंने भला बुरा कहना शुरू कर दिया, कितने ही सकट आ गए, ऐसी स्थितिके बीच सब ओरसे हटकर सबको पर जानकर अपने को अकेला अनुभव करो। भैया! स्त्री पुत्रादि ये सर्वथा मदद करनेमें असमर्थ हैं। ये भिन्न वस्तुयें हैं, ये अपने आपमे ही परिणमन करके समाप्त हो जाते हैं। इन सबका मुझमे कोई प्रवेश नहीं। इनसे मेरा कोई हित नहीं है। ऐसा भाव बनाकर सब ओर से आख मींचकर अपने केवल ज्ञानस्वभावमे दृष्टि दें, अपनी ओर ही झुकें, अपने आपका ही अनुभव करें तो सकट एक साथ समाप्त हो जाते हैं।

अब कुछ भीतरी दुःखों पर विचार करिये। राग द्वेष सदा रहते हैं। इन राग द्वेषमें ज्ञानी पुरुष नहीं रमते हैं। वे व्यवहारमें रहकर व्यवहारकी बातोंमें जब जब अवसर आता है, किसीसे बात कर रहे हैं, बातें करते हैं, बीचमें दो मिनटका गैप भी नहीं देते तो भी उन्हें शुद्ध ज्ञानस्वभावकी दृष्टि करनेकी पड़ी रहती है। और यह साधना अन्तरंगकी साधना है। थोड़ी थोड़ी तो कोट पट पहिनने वाले भी कर सकते हैं, दुकान घर बसाने वाले भी कर सकते हैं। वस्त्रोंको छोड़ देने वाले साधु तो करते ही हैं, यह तो अपने तत्त्वकी बात है, अपने आपकी ओर झुकना यह सर्व संकटोंके विनष्ट करनेका उपाय है। भजनमें भी सभी कहा करते हैं कि—"आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय। यों कबहूं इस जीवका साथी सगा न कोय॥" अपने आपके अकेलेपनका विचार तो करो। यह मैं सबसे अत्यन्त जुदा हूं। घरमें पैदा हुए बच्चोंसे, मित्रोंसे जुदा हूं। यह मैं आत्मा इस शरीरसे भी अलग हूं। और की तो बात ही क्या? यह मैं सर्व इन्द्रियोंसे भी न्यारा, सर्व तर्कवितर्कोंसे भी न्यारा केवल शुद्ध ज्ञानज्योति मात्र हूं।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्? अपने आपकी ऐसी भावना बनाओ कि यह मैं आत्मामात्र ज्ञानस्वरूप हूं। आंखें बंद करके इन्द्रियके विषयोंको रोक कर, मनको केन्द्रित करके किसी भी वस्तुका विचार न करके, जरा तैयारीके साथ सुननेमें जो लाभ होना है उस लाभका श्रेय वक्ता पर नहीं है। उस लाभका श्रेय स्वयं श्रोताकी तैयारी पर है। एक बच्चा भी एक दोहा बोल दे और सुननेवाला यदि चतुर है, ज्ञानी है तो उस दोहेसे भी वह अपना बड़ा काम निकाल लेता है। जरा तैयारीके साथ अपने आपमें कुछ उद्यम करो। अपने आपको छोड़कर किसी अन्यका ध्यान न करो। जो हो सो हो, किसी पर मेरा अधिकार नहीं है। आपके विचार करनेसे आपका काम बन जाये ऐसा आपका अधिकार नहीं है। तब किसी परका संकल्प-विकल्प न करके इस शरीरसे भी अपनेको पृथक् समझ करके अपने ज्ञानस्वरूपको निरखो—यह ज्ञानमात्र मैं हूं, मैं ऐसा ज्ञानज्योतिमात्र हूं, रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित हूं, मैं न तो छेदा जा सकता हूं, न भेदा जा सकता हूं—ऐसा यह मैं आकाशकी तरह अमूर्त निर्विकल्प केवल ज्ञानस्वरूपमात्र मात्र यह मैं ज्ञानके सिवाय और क्या कर सकता हूं?

क्या मैं ज्ञानके सिवाय और कुछ भी कर सकता हूं? नहीं। किसी पर दयाकी तो यहां ज्ञानका ही तो परिणमन किया। किसी पर कषायकी तो [illegible] ही तो कुछ परिणमन किया। इसे न कोई पकड़ सकता है और न [illegible] सकता है। यह [illegible] केवल ज्ञानका ही परिणमन किया करता

है। अपने परिणमनको भला बनाए, बुरा बनाए, पर करेगा अपना परिणमन ही। यह मैं आत्मा ज्ञानके सिवाय अन्य क्या कर सकता हूं। कुछ भी तो मैं नहीं किया करता। केवल विकल्प करता हूं और मानता रहता हूं कि मैंने अमुक काम किया। अमुकको मैंने बड़ा बनाया। इस तरहका विकल्प किया करता हूं। मैं किसी भी परद्रव्यका करने वाला नहीं हूं। ऐसी बुद्धि की ओर अपने आपके शुद्ध अकेलेपन की ओर हम जितना झुक सकें उतनी ही हमें शान्ति होगी। उतना ही हम दुःखसे दूर होंगे। किसी भी परवस्तुमें मेरे दुःखोंको दूर करनेकी सामर्थ्य नहीं है।

जैसे सूर्य तो प्रकाशित हो रहा है, पर ठोकर न लगे यह इस चलने वाले पर निर्भर है। चलने वाला यदि देखभाल कर चलता है तो ठोकर न लगेगी। सूर्य तो निमित्तमात्र है, चलने वाला देखभाल कर चले तो काम ठीक बन सकता है। हम आप सबका बड़ा सौभाग्य है कि जैनशासन पाया। ऐसा उपदेश पाया जहां केवल वस्तुस्वरूप की विवेचना है। जो मोहको दूर करे ऐसा जैनशासन पाकर तुम थोड़ी हिम्मत ज्ञानसाधनाकी करो। अपने आपके ज्ञानपनके अनुभवका एक माद्दा बन जावे तो किसी भी जगह आपको दुःख नहीं हो सकता है।

एक बार राजाभोजके समयकी बात है कि चार देहाती पुरुषोंने सोचा कि राजा भोजके दरबारमें अपनी कविताएँ बनाकर ले जाएँ और सुनाएँ तो मनमाना इनाम मिलेगा। चारो ने कहा ठीक है। चले चारों देहाती। पहिले देहाती को एक बुढिया रहटा कातते हुए मिली। उसने झट तुकबन्दी बनाई। क्या बनाई ? "चन्नर-मनर रहँटा भन्नाय।" इसे कोई रागनीमें गाना चाहे तो गा लेगा। आगे गए तो दूसरे देहाती को क्या मिला कि एक तेलीका बैल खली भुस खा रहा था। तो उसने भी तुकबन्दी बनाई। क्या बनाई ? 'तेली का बैल खली भुस खाय।' तीसरे देहातीको क्या मिला ? उसने देखा कि एक धुनिया रुई धुननेकी तांत लादे हुए चला आ रहा था। उसने भी तुक मिलाई, क्या ? "वहा से आ गए तरकसबन्द।" अब तीन देहातियोंकी तो कविताएँ बन गई। चौथेसे कहा कि तुम भी बनाओ। वह शानमें आकर कहता है कि पहिलेसे कविता नहीं बनाता। मैं आशुकवि हूं। मैं तो मौके पर तुरन्त ही बना लेता हूं। खैर, पहुचे चारों देहाती राजा भोजके दरबार में। दरबारीसे कहा, जावो राजासे कह दो कि आज चार महाकवीश्वर आए हैं। दरबारीने जाकर राजासे कहा कि महाराज ! आज चार महाकवीश्वर आये हैं। राजाने कहा बुलावो। चारों गए और राजाके पास खडे हो गए। चारो ने कहा कि हम चारोंने मिलकर एक कविता बनाई है। कविता बहुत

ऊँत्र है। आप लोग ध्यानसे सुनो। चारों खड़े हो गए और बोलने लगे। चौथा क्या बोलेगा? सो मिलमिलके से हम बोल देंगे, आप लोग समझ लेना।

"चनर-मनर रहटा भन्नाय। तेली का बैल खली भुस खाय॥ वहांसे आ गए तरकस बद। राजा भोज है मूसरचंद॥" उसकी कुछ समझमें न आया कि क्या बताएँ, तो एकदम उसने बोल दिया कि राजा भोज हैं मूसरचन्द। राजा भोज पासमें बैठे हुए अन्य विद्वानोंसे कहते हैं कि इनकी कविताका अर्थ तो लगावो। विद्वान् लोग सोचते हैं कि इस कवितामें कोई सार हो तो अर्थ भी लगायें। यह तो बिल्कुल निःसार है, ये तो देहाती गँवारु बातें हैं, इनका क्या अर्थ लगायें? बड़ी परेशानी हुई। एक कोई वृद्ध पंडित चतुर बोले, अच्छा इसका अर्थ हम बताते हैं। खड़े होकर बोलता है कि इस पहिले कवि ने यह कहा कि चनर मनर रहँटा भन्नाय, मायने हम आप सभी २४ घंटे एक सुबहसे लेकर दूसरे सुबह तक रहँटा सा भन्नाया करते हैं, अभी यह करना है, वह करना है, यहां जाना है, वहां जाना है इत्यादि। दूसरे कवीश्वर जी ने यह बोला है कि "कोल्हूका बैल खली भुस खाय।" मायने रात दिन जुतते हैं तेलीके से बैल और खाते हैं रूखा सूखा। तीसरे कवि जी यह बोल रहे हैं कि "वहां से आ गए तरकस बद" मायने इतनेमें ही यमराज आ गए अर्थात् कालक्षय का समय आ गया। अब चौथा यह बात बोलता है कि ऐसा गुजर रहा है, फिर भी राजा भोज मूसरचन्द बने बैठे हैं।

भैया! आप सभी लोग अपनी-अपनी स्थितियों पर दृष्टि दो। यह दुर्लभ अनुपम जीवन हमारा कैसे बीता जा रहा है? रातके बाद दिन, दिनके बाद रात-व्यतीत होते चले जा रहे हैं। जितना समय व्यतीत होता चला जा रहा है उतना ही हम आप मरणके निकट पहुच रहे हैं। यहा सोचते हैं कि २० वर्षके हो गए, ४० वर्षके हो गए, अर्थ उसका यह है कि ४० वर्ष घट गए, मर गए। जो समय गुजर गया, वह किसी भी प्रकार हाथ नहीं आने को है। ऐसा दमादम यह समय गुजर रहा है। मरणके निकट ही हम आप पहुच रहे हैं। हमें क्या सोचना चाहिए? हमें अपने आपको सबसे न्यारा समझना चाहिए। अपना अधिकसे अधिक अवसर ऐसा बनाओ कि अपने एकत्वस्वरूपको देखा करें। हम केवल अपने आपके शुद्धस्वरूपकी ओर झुका करें। अपने आपका ऐसा अनुभवन करें कि मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानके अतिरिक्त मैं अन्य कुछ नहीं हू। ज्ञानरूप ही सदा वर्तता रहता हू। ज्ञानके सिवाय मैं अन्य कुछ करता नहीं हू। ज्ञानके सिवाय मेरे मे अन्य कुछ करने की सामर्थ्य ही नहीं है। ऐसा ही अपनेमें ज्ञान बनाना है।

सही ज्ञान बननेसे ही संसारकी सारी चीजोंसे छुट्टी मिल जायेगी। संसारके सारे संकटोंसे छुट्टी मिलनेका ही नाम मोक्ष है। तप, व्रत, संयम, भक्ति सब कुछ इसी लिए करते हैं कि हमको शांति प्राप्त हो। शांतिका उपाय अन्य नहीं, किन्तु अपने ज्ञानघनकी दृष्टि बनानेसे शान्ति हो सकती है। शांति प्राप्त करने का अन्य उपाय कुछ नहीं। अपनेको भगवत्स्वरूप, विकाररहित शुद्ध निरखे, बड़ा ही शान्ति इसको प्राप्त हो जाती है।

यहां निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग का वर्णन चल रहा है। मोक्षमार्ग सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्ररूप है। सम्यग्दर्शन का अर्थ है आत्माके सहजस्वभावका अवलोकन करना। अर्थात् यह मैं आत्मा अपने अस्तित्वके कारण जैसा स्वयं सहजस्वरूप हूं वैसा समझ लेना सो सम्यग्दर्शन है। यह मैं आत्मा अपने ही द्रव्यरूप हूं। अपने ही प्रदेशोंमें हूं। अपने ही प्रदेशोंमें परिणमता हूं, अपने ही भावोंमें अवस्थित हूं। मेरा मेरसे बाहर कहीं कुछ नहीं है। मैं चैतन्यमात्र हूं जैसे चेतना का कार्य लोका-लोकमें व्यापक होता है ऐसा ही यह मैं आत्मतत्त्व हूं। ऐसी प्रतीतिके आने मे निमित्त हैं सम्यग्दर्शन। इसके विरुद्ध यह वासना न रहे कि मैं पुरुष हूं, मैं स्त्री हूं, मैं अमुक गांवका हूं, अमुक पोजीशनका हूं, यह विकल्प न रहे किन्तु केवल ज्ञानमात्रका ही तकना बना रहे इसे कहते हैं सम्यग्दर्शन और जो वस्तु जैसी हैं उन वस्तुओंका उसी प्रकारसे ज्ञान होना इसे कहते हैं सम्यग्ज्ञान और जैसा यह मैं हूं तैसा ही उपयोग निरन्तर बना रहे उसे कहते हैं सम्यक् चारित्र।

इस जीवने अपने उपयोग को बाहरमें निकाला तो वहां ही क्लेश हो जाया करता है। जैसे जमुना नदीके बीचमें चलने वाले कछुवे निर्बाध हैं, जब तक वे पानीके भीतर हैं उन्हें कोई सता नहीं सकता, किन्तु जब वे अपनी चोंच को बाहर निकालकर चलते हैं तो उन पर सकडों पक्षी टूट पड़ते हैं। यदि वे कछुवे अपनी चोंचको पानीमें डुबा लें तो फिर वे पक्षी उनका क्या करेंगे? इसी प्रकार यह उपयोग अपनेसे बाह्यपदार्थोंमें लगता है तब इसे संकट प्रतीत होने लगता है। हर एक जगह यह संकट समझ लेता है, किन्तु कुछ ज्ञानबल बढ़ाकर ज्यों ही उपयोग अपने आपमें लगाया बस सारे संकट समाप्त हो जाते हैं।

ये तीनों के तीनों आत्माको ही मानो। सम्यग्दर्शन आत्मासे अतिरिक्त और क्या है? आत्माकी ही एक शुद्ध श्रद्धाकी परिणतिका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्ज्ञान आत्माके अतिरिक्त और क्या है? ज्ञानमय आत्माका शुद्ध-ज्ञानरूपसे वर्तना, बस यही सम्यग्ज्ञान है। सम्यक्चारित्र आत्माको छोड़कर

और क्या है ? आत्माका ही रागादिकके त्यागसे वर्तने लगना इसका ही नाम सम्यक्चारित्र है। सो ये तीनोंके तीनों आत्मा ही तो हैं। ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। यह है निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। आत्मतत्त्वका श्रद्धान् होना, जीवादिक सात तत्त्वोंके स्वरूपकी निगाह बनाना व्यवहार सम्यग्दर्शन है, और इन सब पदार्थोंका ज्ञान जगना, सो व्यवहार सम्यग्ज्ञान है और व्रत, तप, संयम आदि व्यवहार सम्यक्चारित्र है। जो निश्चय मोक्षमार्गका कारण है वह व्यवहारनयसे मोक्षमार्ग कहलाता है। अथवा यों कहा जाये कि जो भेदरूप रत्नत्रय है वह तो है व्यवहारमोक्ष मार्ग और जो निश्चयरूप रत्नत्रय है वह है निश्चयमोक्षमार्ग। भेदरत्नत्रयरूप व्यवहारमोक्षमार्ग साधक है और अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग साध्य है। अपने आपका स्वाद आता रहे, यह ज्ञान ज्ञानके स्वरूपको ही निहारता रहे, मैं अपने आपमें संयत हो जाऊँ तो यह होता है रत्नत्रय।

भैया! एक कहावत कहा करते है कि "लेवा मरे कि देवा, बलदेवा करे कलेवा।" एक बलदेवा नामका अनाजका दलाल था। गाड़ियों अनाज आया पर बिका नहीं। सो उसमें कुछ लेवा से लिया करता था, कुछ देवासे लिया करता था। उसे दोनोंसे मिला करता था। कुछ भावकी घटा बढ़ी का ऐसा समय आया कि बेचने वाले और लेने वाले दोनों संदेहमें रहा करते थे। किन्तु बलदेवा मनमें बोला कि 'लेवा मरे व देवा, बलदेवा करे कलेवा।' कलेवा करना मायने भोजन करना। यह तो लौकिक बात है। जैसे उसने लेवा और देवाकी उपेक्षा करके अपनी धुनमें अपने आपको लगाया, यह तो उनकी लौकिक बात है। यहां यह निर्णय करना चाहिए कि परपदार्थोंमें कुछ भी परिणति हो, पर यह मैं आत्मा अपने स्वरूपसे हूं, अपने आपके स्वरूपमें अपनेको टिका सकता हूं, आनन्दमय हो सकता हूं।

इस प्रकार निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्गमें परस्पर साध्यसाधक भाव जान लेना चाहिए। जैसे स्वर्ण और स्वर्णपाषाण। स्वर्ण-पाषाण तो है साधक और स्वर्ण है साध्य। उपादेय चीज तो है स्वर्ण पर वह बनता कहांसे है, कहां से बनता है? वह स्वर्ण पाषाणसे निश्चयसे तो जो निजी आत्मस्वरूप है वही वास्तवमें मोक्षका कारण है, सो यह प्रथम किस उपायसे उद्भूत होता है, वह है व्यवहारमोक्षके मायने है छूट जाना। किससे छूट जाना, दुःखोंसे। दुःखका रूप क्या है? ज्ञानको वस्तुके प्रतिकूल बनाना यह है दुःखोंका रूपक। ज्ञान जब सही नहीं जानता तो उसे क्लेश होता है। जैसे किसी बच्चे से कोई सवाल पूछा जाये तो जब तक उत्तर नहीं आता तब तक उसके दुःख रहता है। सही ज्ञान नहीं बैठ पाता, इसलिए

उसे दु ख है। प्रकृत्या आत्मामें ऐसी जिज्ञासा होती है कि जान तो लें कुछ।

जैसे सागरामें रोज वीसों जहाज निकलते हैं। वीसों वार चलते फिरते हैं और आपने खूब रोज-रोज देखा है। आगनमें आप खडे हों या वैठे हों जव जहाज निकले तो प्रकृत्या यह जानना चाहेंगे कि कहा है ? कैसा है ? उससे कुछ मिलता नहीं, रोज-रोज देखते भी हैं। यह भी नहीं है कि नवीन चीज हो, मगर इसको जाननेकी आदत पडी है कि जो सत् है वह ज्ञानमें आ जाये। एक वार सिर उठा ही लेते हैं कि देख तो ले। जरासा देखा और अपने काममें लग गए। तो इतना जाननेका स्वभाव पडा हुआ है। सो जानता ही रहता है। इस जाननेकी दिशामें ही सुख और दु ख भरा हुआ है। हम कैसा जानें कि सुखी हो जाएँ और कैसा जानें कि दु खी हो जाएँ। यह सुख और दु ख जाननेकी कला पर ही निर्भर है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र— ये मोक्षके कारण कहे गए हैं। हमे छूटना है दु खसे, सो जिससे छूटना है और जिस तरहसे छूटना है उसे पहिले जान तो लो और जान ही न पाये तो कौन छूटेगा और किससे छूटेगा ? जान लो कौन छूटना चाहता है ? यह चिदानन्द एकस्वरूप ज्ञानानन्दमय किससे छूटना चाहता है ? इस आत्मपदार्थमें आए हुए औपाधिक भावोंसे।

भैया ! धर्मकी तपस्या बहुत कठिन है। सही रूपमें धर्म कर लीजिए और वडा सुगम उपाय है, और वडा कठिन पुरुषार्थ भी है। धर्म तो वास्तविक ही किया जाये। वह वास्तविक धर्म क्षमामें है, नम्रतामें है, त्यागमें है, सयम तप आदिकमे है। जैसे आत्मा विकाररहित वन सके ऐसा ज्ञानका परिणमन होना सो यह सव धर्म है। कर्म आपके हाथ पैरोंको देख कर नहीं डरते। उन कर्मोंका निमित्त केवल कषायभाव है। कषायभाव आया कि कर्म वँध जाते हैं। सर्व विश्वसे छुटकारा पाना यह वहुत सरल है और वहुत दुर्गम है। रुख वन जाये तो सुगम है और न वन जाये तो अति कठिन है। तो अपने आपका श्रद्धान् हो, अपने आपका ज्ञान हो और आचरण हो तो उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। फिर उसकी आतरिक स्थिति ऐसी हो जाती है कि कोई पदार्थ कैसा ही परिणमें ? वे सर्व पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं, उनका परिणमन उनमें ही हुआ करता है और उनमें ही समाप्त हो जाता है।

एक किसान किसानी थे। सो किसान तो था उजड्ड और किसानिन थी चतुर। किसानने सोचा कि घरमें रहते वहुत दिन हो गए, पर एक दिन भी इसको मैं पीट न सका। यह कोई कसूर ही नहीं करती है कि जिसके कारण इसे पीट ही दिया जाये। वडी चिंतामें पड़ गया। वह उपाय ढूँढने लगा। सो एक दिन उसकी समझमें आया कि रोज हल चलाने जाते हैं, सो

आज हल उल्टा सीधा जोतेंगे। स्त्री रोज दो बजे रोटी देने आती ही है। सो देखकर कुछ तो बोलेगी ही। बस पीटनेका मौका लग जायेगा। सो उसने एक बैल का पूरबको मुँह किया और एक का पश्चिम को किया और ऊपर से गर्दन पर जुवा रख दिया। अब वे चल तो सकते ही न थे। सो वह स्त्री दो बजे रोटी देने आई। दूर से देखा कि ऐसी मूर्खता तो कभी नहीं करते थे। आज तो पिटनेके डौलडाल दिखते हैं। सो रोटी दे दिया और कहा "चाहे औंधा जोतो चाहे सीधा जोतो, हमारा तो काम केवल रोटी देनेका है।" सो उसने रोटी रख दी और चली गई। किसान देखता ही रह गया। सोचा कितना तो हमने परिश्रम किया कि कुछ तो देखकर कहेगी ही, ऐसे ही काम चल जायेगा, बाल बच्चोंका ऐसे ही पोषण हो जायेगा, कुछ तो कहेगी ही, किन्तु कुछ न कहा। पीट भी न सका।

कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थके स्वरूपको जानकर अपने आपमें आकुलित नहीं होता। सो ही धर्मपालन है। यह बड़ा कठिन पुरुषार्थ है। और रास्ता मिल जाये तो बड़ा सरल है। पथिकको अच्छा रास्ता मिले तो वह खूब चलता है, जल्दी चलता है और जब पगडण्डी आती है, रास्ता साफ नहीं है, कहीं रास्ता समझमें आया, कहीं न आया तो उसे दुर्गमता है। जिसको नजर आ गया, यह वह साक्षात देख लेता है। उपयोग आत्मस्वभाव को स्पर्श करे यह महान तप है। यह काम अपने आपमें गुपचुप करनेका है। किसीको बताना नहीं है। कितने दिनोंका यह जीवन है और कौनसा जीव हमारे लिए शरण होगा? अनन्ते जीव हैं, कौन जीव हमारी प्रशंसा करेगा, कितनी देर तक प्रशंसाकी जायेगी, कितने समय तक प्रशंसा बनी रहेगी? सर्व असार है, केवल अपने आपके स्वभावका आलम्बन ही जगतमें सार है। ये सब उपद्रव हैं। धन वैभवके संचयमें शान्ति नहीं मिलती है किन्तु उससे पापका उदय हो रहा है। यह आत्मा तो स्वयं ज्ञानानन्दस्वरूप है। इसके क्या कमी है ज्ञानकी। इसके क्या कमी है आनन्दकी। ऐसे ज्ञानानन्द आत्माका जानना, अवलोकना और उसमें ही रमना, यही है रत्नत्रय, यही है संकटोंसे छूटनेका उपाय।

भैया! यदि कल्याण चाहते हो तो आत्माका परिचय करो। आत्मा का परिचय क्या है? हम किसी को जानते ही नहीं है, कोई हमें जानता ही नहीं है, फिर वहां क्या दुःख है, क्या अपमान है? किसी अन्य जगह पहुँच जायें कि जहां कोई जानता ही न हो और वहां ३-४ बातें कोई खोटी कहदे तो वहां अपमान नहीं महसूस करते हैं और जहां जानने वाले एक दो दिख गए, वहां अपमान महसूस होने लगता है। सो अपनेको दुनियांसे

अपरिचित जानों। मुझे कोई नहीं जानता। और जो जानता भी होगा तो वह इस शरीर को ही जानता होगा। यह शरीर तो स्पष्ट जड़ है किन्तु इस किलेमें सुरक्षित विराजमान स्वतःसिद्ध जो आत्मस्वभाव है, आत्मज्योति है। उसको तो इसने जान ही न पाया। केवल इस एकके जाने बिना सब व्यर्थ है। सो इस प्रकरणमें यह बतलाया जायेगा कि निश्चय रत्नत्रयमें परिणत निज शुद्ध आत्मा ही मोक्षमार्ग होता है—ऐसा प्रतिपादन करते हैं।

यह आत्मा, आत्माके द्वारा अपने आत्माको जानता है। देखता है और उसके अनुकूल आचरण करता है? यही दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्षका कारण है। ऐसा जिनशासनमें कहा है। एक जो आग है उसमें हम तीन प्रकारका काम देखते हैं—यह आगके जलाने काम भी आती है, वस्तुवोंको प्रकाशित करने वाली भी है और रोटी वगैरह पकाने वाली भी है। आग वह एक ही है, पर उस एक आगमें तीन प्रकारके गुण समझमें आ रहे हैं ना। वहा तीन ही गुण नहीं हैं। जितनी तरहकी परिणतिया हो सकती हैं उतनी तरहकी वह आग है। तो जैसे अग्नि तो एक स्वरूप है उसके बारेमें तीन बातें बोलते हैं—जलती है, पकाती है व प्रकाशित करती है। वस्तुतः कार्य वहा एक है। अनेक कार्य नहीं होते। वह अग्नि तो अपने चतुष्टयसे बराबर परिणमनका कार्य करती है। भेद देखकर अग्निको तीन गुण वाली मान लेते हैं। इसी प्रकार आत्मा तो प्रतिसमय एक परिणमन करता चला जाता है। प्रकरण यहा चल रहा था मोक्षमार्गका कि संकटोंसे कैसे छूटें? तो जिसे छूटना है उसको जानो और जिससे छूटना है उसको जानो और यह जानने का भेद परखमें हो तब उससे छूटा जा सकता है।

जैसे अग्नि जलने का काम करती है, प्रकाश करनेका काम करती है, पर परमार्थसे वह केवल एक ही पर्याय करने वाला है। इसी तरह यह आत्मा प्रतीति करनेका काम करता है, ज्ञान करनेका काम करता है और किसीमें रम जानेका काम करता है। पर वस्तुतः वह तो एक ही काम करने वाला है। जिसे कहने के लिए कोई शब्द नहीं है, पर भेददृष्टिसे हम तीन रूपमें पूजते हैं।

एक देवता था। जो किसी देवताकी सिद्धि करने लगा। देवता ने कहा मांग लो जो चाहो। तो बोला हम कल मागेंगे। वह अपने घर गया। बोला पिता जी! हमें देवता सिद्ध हो गया है। हम क्या मागें? पितावर्ग तो धन को चाहने वाला होता है। तो वहा जावो धन माग लेना। मा के पास गया बोला, मां जी हमें देवता सिद्ध हो गया है, वह वर देना चाहता है, तो हम क्या मागे? मा बोली, बेटा हमारे आख नहीं हैं सो आख माग लेना। स्त्री

के पास पहुचा, पूछा क्या मांगें ? स्त्रीके कोई बेटा न था तो कहा कि एक बेटा माग लेना। अब वह इस सोचमें पड़ गया कि क्या मांगें ? सो उसकी अक्लमें आ गया। देवता ने कहा मांगो क्या मांगते हो ? एक ही चीज मांगो। एक ही चीज मिलेगी। वह बोला कि 'मेरी मां सोनेके थालमें अपने पोतेको खेलता हुआ देखले।' सिर्फ एक ही बात चाहिए। अब बतलावो कि इसमें तीनों बातें आ गई कि नहीं। मेरी मां अपने पोते को सोने के थालमें खेलता हुआ देख ले। देखो बेटा भी मिल गया, धन भी मिल गया और मां को आंखें भी मिल गई। ये तीनों बातें अपने आप आ गई।

इसी तरह प्रति समय यह आत्मा और आत्मा ही क्या समस्त पदार्थ केवल एक दशा बनाते हैं, वह दशा विभिन्नरूपमें परिणत हो जाती है। यह बिजली जल रही है हम आपको तो अच्छी लगती है, पर किसी चोरके लिए अच्छी न लगती होगी। यह बिजली चोरोंको बुरी लग रही होगी। छिपकलियोंको यही बिजली अच्छी लग रही होगी। छिपकली, छिप कर ली, छिपकर कीड़ोंको ले लेती हैं। यह बिजली छिपकलियोंको अच्छी लगती है। देखो चीज एक है, पर कितनी तरहसे परिणम रही है ? चोरों को बुरी लगती, हम आपको अच्छी लगती, कितनी ही तरहसे यह बिजली परिणम रही है। बिजली एक तरहकी है पर उसके नाना परिणमन हो रहे हैं। ये आपेक्षिक हैं फिर भी साथमें एक मोटा दृष्टान्त कह डाला। ऐसे ही आत्मा एक है, अमूर्तिक, आकाशकी तरह दुर्लभ, कठिन ज्ञानदर्शनमय वह आत्मा प्रतिसमय अपना एक परिणमन किया करता है। इसका परिणमन उसका अपने आपके स्वरूप रूप होता है।

भैया ! आत्माका जान लेना बस यही ज्ञानका ऊँचा ज्ञान है, और ऐसा जाननेके लिए हमें पात्रता मिलती है तब, जब कि सत्संग अधिक रहे। शास्त्रस्वाध्याय करे, विषयोंमें आसक्त पुरुषोंसे दूर रहे तो अपने आत्मस्वभावके जाननेकी पात्रता रह सकती है। और ऐसी स्थितिमें पात्रता नहीं रहती कि यह आत्मा को जानले। यों यह भेदरत्नत्रय और अभेदरत्नत्रयसे मोक्ष होता है। जैसे किसी अटारी पर चढ़ें तो सीढ़ियां अटारी पर चढ़ने की साधन हैं पर साधक तो हमारे हाथ पैर हैं। सीढ़ियों पर पैर न रखें तो तो अटारी पर चढ़ कैसे सकें ? सीढ़ियों पर पैर रख कर खड़े ही रहें तो चढ़ कैसे सकें ? दोनों ही बातें हैं। इसी प्रकार व्यवहारवृत्ति न रहे तो निश्चय मोक्षमार्गमें कैसे-कैसे प्रवेश करेंगे और व्यवहारवृत्तिमें ही अटक जायें तो मोक्षमार्गमें कैसे प्रवेश करें ? ऐसा है यह व्यवहार साधक, जिसका सद्भाव और असद्भाव दोनों ही साधक हैं। जैसे सीढ़ी पर पैर रखकर

चलनेसे ऊपर चढनेका साधन है, पर सीढी पर ही पैर ही रखे रहें तो कैसे ऊपर चढ पायेंगे ? यदि सीढ़ीको छोड़कर ऊपर चढ सकेंगे तो सीढ़ी पर पैर रखनेकी क्या जरूरत है ? क्योंकि सीढी पर पैर रखे बिना ही ऊपर चढ जायेंगे। सो इसमें बातें दोनों आती हैं। सीढी पर पैर रखकर छूकर ऊपर चढ सकते हैं। सीढीको छुवें ही नहीं तो ऊपर कैसे चढ सकेंगे ? इसी प्रकार व्यवहारमार्गमें रहकर व्यवहारमार्गको छोड़कर निश्चयमोक्षमार्गमें लग जाया करते हैं। न केवल छोड़ना साधक है और न अटकना ही साधक है। सीढी पर चढना व्यवहार है और ऊपर पहुचनेका निश्चय पाना साध्य है, यों व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चयमोक्षमार्गका कारण होता है। यों इस गाथामें निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्गका वर्णन किया है।

अब यह बतलाते हैं कि निश्चयरत्नत्रयमें परिणत निजशुद्ध आत्मा ही मोक्षमार्ग होता है।

पेच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पिं अप्पउ जो जि।
दंसणु णाणु चरित्त जिउ मोक्खह कारणु सो जि ॥१३॥

जो जीव आत्माके द्वारा आत्माको देखता है, जानता है, आचरणता है वही विवेकी पुरुष दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमता हुआ मोक्षका कारण है। मोक्षके कारणभूत भेदहृष्टिसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रको बताते हैं पर यह तो बतावो कि वह सम्यग्दर्शन कहा रखा हुआ है ? मूर्तिमें, मदिरमें, घरकी तिजोरीमें, कहां मिलेगा वह सम्यग्ज्ञान ? वह सम्यग्ज्ञान कहा धरा है ? सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्ररूप जो बनता रहता है वही आत्मा तो सम्यग्दर्शन है। इस कारण मोक्षका मार्ग रत्नत्रय ही है, निज शुद्ध आत्मा ही है। भेदनयसे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग है और अभेदनयसे तद्रूप जो आत्मा है वह निज आत्मा ही मोक्षका कारण है। कौन आत्मा मोक्षका कारण है ? जो निज आत्माको मोक्षके कारणरूपसे देखता है अर्थात् निर्विकल्परूपसे अपनेको अवलोकन करता है, शुद्ध आत्मा ही उपादेय है ऐसा निश्चय करता है। ज्ञानी वीतराग निर्विकल्प, स्वसम्वेदन ज्ञानरूप अभेदज्ञान से जानता है, न केवल जानता है किन्तु रागादिक समस्त विकल्पजालोंको त्याग कर उसही निजस्वरूपमें स्थिर होता है, ऐसा निश्चयरत्नत्रयमें परिणत प्रभु ही मोक्षमार्गी होता है।

सम्यग्दर्शन पाने की कई भावनाएँ और छोटी-छोटी युक्तिया हैं। यह मैं सबसे न्यारा केवल अकेला शुद्ध आत्मा ही उपादेय हू, यह मैं शुद्धआत्मा ही उपादेय हू— ऐसी बार बार भावना करके रुचि बनाना, सो सम्यग्दर्शनका

उपाय है। यह मैं शुद्धआत्मा अर्थात् शरीररहित, वैभवसे रहित, विकल्प रहित, सर्वमलिनतावोंसे परे केवल प्रतिभास मात्र आकाशकी तरह निर्लेप यह मै आत्मा ही उपादेय हू—ऐसी रुचि करना सो सम्यग्दर्शन है।

भैया! यह ससारी जीव अपने आपको कुछ न कुछ मानता रहता है। मै मनुष्य हू, मैं साला हू, मै बहनोई हू, मै पति हू, मैं स्त्री हू, मैं पडित हूं, मैं मूर्ख हूं—यों नानाप्रकारसे सभी अपनेको कुछ न कुछ अनुभव किया करते हैं। सो यदि ये इन रूपोंमें अपनेको अनुभवन करते हैं तो इनके आत्माकी झलक मिट जाती है। किन्तु जो सदा रहने वाला यह मैं ध्रुव ज्ञानमात्र अपने आपका अनुभव करने वाला हू—ऐसा अनुभव हो तो निर्मलता बढती है। इस जगत्के भव्य जीव बाह्यवस्तुवोंमे ही रत रहते है, जिस प्रभुकी मूर्तिको हम पूजते हैं उन्होने क्या किया? अपने आपको शुद्ध अकेला तका। भला तो इस बातमें है कि किसी भी चीज की इच्छा न रहे। उस प्रभुने किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं रही, इसलिए उसे सर्वस्व मानकर पूजते हैं।

अभी घरके लड़के पर कोई आपत्ति आ जाये तो घरके मां बाप उस बच्चेकी रक्षा करने के लिए तत्पर होंगे और कोई धर्म पर आपत्ति आ जाये, कोई प्रतिबिम्बको जबरदस्ती तोड़ने लगे, मदिर गिराने लगे या कोई साधुजनो पर उपसर्ग करने लगे तो सभी आदमी उनकी रक्षाके लिए उमड आते हैं। तो सबसे उत्कृष्ट धर्मकी प्रवृत्ति है। जब कभी कोई साधुवोंको आहार बनाता है और घरके बच्चे लोग भोजन चाहते हैं तो क्या घरके लोग बच्चोंसे कहते हैं कि अभी मत खावो, साधु महाराजका आहार हो जाये तब खाना। भला बतलावो तो सही कि उस समय उनकी साधुके ऊपर अधिक ममता है या बच्चोंके ऊपर? साधुके ऊपर है। तो रक्षक केवल धर्म है। और कोई दूसरा हमारा रक्षक नहीं है।

भैया! लोग अपने अपने कषायके अनुसार अपनी चेष्टा करते हैं। रक्षा करने वाला जगत्मे कोई अन्य नहीं है। भीतर भाव आना चाहिए और अनुभूतिपूर्वक चित्त बनाना चाहिए कि मुझे तो अपना हित करना है, मै तो स्वतत्र हूं, क्या रखा है किसी परकी वृत्तिमें? वस्तुका स्वरूप देखो। सभी पदार्थोंका स्वरूप अपने ही स्वरूपके समान है। कोई पदार्थ अपने स्वरूपसे हिल नहीं सकता, किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थमें प्रवेश नहीं है तो फिर उनमें सम्बन्धबुद्धि क्यों की जा रही है? सबसे न्यारा ज्ञान ज्योति मात्र शुद्ध आत्माकी रुचि होना यह है असली कमाई। चुपचाप भीतरमें ही अपने आपका अनुभवन कर अपनी रक्षा करलो, काम यही देग

सब तो यहीं पड़े रह जायेंगे। वह ही विवेकी है, बुद्धिमान् है जो अपना हित कर जाता है। बाकी तो सब पड़ा ही रह जाता है।

निर्विकल्परूपसे अपने आपका अवलोकन करना सो सम्यग्दर्शन है। ऐसा कहे जाने पर प्रभाकर भट्ट प्रश्न करते हैं कि ७ तत्त्वोंके श्रद्धान् और रुचि होने रूप सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग है। इसमें कोई दोष नहीं है, किन्तु निर्विकल्प रूपसे देखना—ऐसा जो सम्यग्दर्शन कहा है तो ऐसी सत्ताके अवलोकनसे कैसे मोक्षमार्ग हो जायेगा? यदि वस्तुकी सत्ताका अवलोकन ही मोक्षमार्ग बन जाये तो ऐसे दर्शनका अवलोकन तो सदा अभव्य जीवके भी होता है। उसने तो आत्मतत्त्वको समझा ही नहीं है। इस कथनमें तो आगम विरोध आता है। हां कैसे? जीवादि पर्यायभूततत्त्व आत्मत्व विचारना यह है मिथ्यात्व और प्रयोजकभूत जीवादि तत्त्वका यथार्थ श्रद्धान् करना यह है सम्यग्दर्शन। यहां तक तो ठीक है किन्तु निर्विकल्प रूपसे कुछ तक लेना सो सम्यग्दर्शन है। यह बात तो ठीक नहीं बैठती है। ऐसा दर्शन तो अभव्य जीवके भी होता है।

ऐसा प्रश्न हुआ। अब इसके उत्तरमें कहते हैं कि उन अभव्य जीवों को बाह्यपदार्थोंके विषयमें निर्विकल्प सत्ता का अवलोकना रूप दर्शन पाया जाता है पर आभ्यतर को शुद्धआत्मतत्त्व के विषयमें उनका अवलोकन ही पाया जाता है। एक कथानक है—ऋषभदेवके पुराने भवोंसे सम्बन्धित किसी भवका, उस समयका एक कथानक है। एक अरविन्द नामका राजा था। उसके एक बार बड़ा बुखार आया। बुखारके समयमें ऊपरसे लड़ती हुई छिपकली के घमसानसे उनकी पूँछ टूट गई। छिपकली की पूछ बड़ी जल्दी टूट जाती है। गाय बैल भैंस आदिकी जैसी उसकी पूंछ नहीं होती है। उनकी पूछमें तो लटक जावो और उसके सहारे जहा चाहे चले जावो। तो ऐसी छिपकलीकी पूछं नहीं होती है। वह तो छिपकली है—छिप कर ली। कीड़े मकौड़ोंको धीरेसे छिपकर खा लेती है। ऐसी छिपकर लेने वालीकी कहा पूँछ तकड़ी हो सकती है? तो उसकी पूँछ टूट गई और खूनका बिन्दु राजाके गर्म शरीर पर पड़ा। बुखार तो था ही। शरीर पर खूनका बूँद पड़नेसे ठंडक भी लगी। कुछ आरामसा मिला। तो उसने सोचा कि इस खूनकी बूँदसे आराम मिला है। यदि मैं खून की बावड़ी भराऊँ और उसमें स्नान करूँ तो मुझे बड़ी शाति मिलेगी। सो लड़कोंको बुलाता है। कहा, देखो लड़कों! तुम एक खूनकी बावड़ी बना दो और हिरन आदि मार कर ले आवो, उनका खून उस बावड़ीमे भरो। हम उस बावड़ीमें स्नान करेंगे। इससे मुझे शाति मिलेगी। बच्चोंने बहुत समझाया कि पिता जी आपके कुबुद्धि

आई है। आप जीवोंकी हत्या करवायेंगे, पर वह तो अपनी हठ पर था। लाना ही पड़ेगा। तो खून कहांसे लाएँ? अरविन्द बोला कि जावो उस जंगलमें वहां हिरन बहुत हैं, उनको मारो और उनके खूनसे बावड़ी भर दो। वे लड़के चले गए जंगल मे।

जंगलमें एक साधु महाराज बैठे थे। वे मनःपर्ययज्ञानके धारी थे। उन बच्चोंके मनकी बातको जान गए। अपने पास बुलाया, कहा बेटा तुम किस बापके लिए जीवोंकी हत्या करने जा रहे हो। वह बाप मिथ्यादृष्टी है, कुअवधिज्ञानी है। बच्चे बोलते हैं कि वह बाप तो बड़ा ज्ञानी मालूम देता है। अपने ज्ञानसे ही बता दिया कि उस जगलमें हिरण हैं। मुनिसे बच्चे बोले कि कैसे आपने समझा कि वह कुअवधिज्ञानी है? साधु महाराज उत्तर देते हैं कि तुम अभी जावो और अपने पितासे यह पूछो कि जिस जगलमें तुमने हिरण बताये हैं उस जगलमें और भी कुछ है क्या? और इसका उत्तर लेकर मेरे पास आना। बोले बहुत अच्छी बात। गए वे बापके पास, पूछा, पिता जी! जिस जगलमें आपने हिरण बताये हैं उस जगलमे और क्या है? अरे वहां खरगोस भी हैं, वनगायें भी हैं, स्वतत्र घोडे भी हैं, रोज भी हैं। वे पूछते जा रहे हैं, और क्या? अरे क्या है, बहुत सी चीजे बताई। सुन कर साधुके पास पहुचे। महाराज पूछ आये। क्या-क्या बताया? महाराज! गाय, खरगोस आदिको बताया है। क्या यह भी बताया है कि मुनिराज जगलमे ठहरे हैं? नहीं महाराज! मुनि जी का तो नाम ही नहीं लिया। मुनि जी बोले कि यही तो कुअवधि ज्ञान है। उसने पापकी ही चीजें देखीं, पर धर्मकी चीजे न देखीं। ऐसे पापी मिथ्यादृष्टी पुरुषका मन रखनेके लिए तुम पचासो सैकड़ों हिरणोंका बध करोगे? वे बालक धार्मिक तो थे ही। अब और चेत गए। बोले, महाराज! हम ऐसा न करेंगे, लौट जायेंगे। वे लौट आए।

अब सोचते हैं कि उनकी बात भी तो रखना है। सो लाखका रंग पानीसे खौलकर बावड़ीमें भर दिया और कहा पिता जी तैयार है आपकी बावड़ी। वह आ गया बावड़ी देखने और उस बावड़ी में प्रवेश किया तो वहां खूनका स्वाद न आया, सोचा कि लड़कोंने हमारे साथ धोखा किया है। बावड़ी खूनसे नहीं भरा, रगसे भर दिया है। गुस्सेमें आकर नगी तलवार लेकर उनको मारने के लिए दौड़ा। वे बेचारे आगे आगे भागते जाएँ और वह उन दोनों बालकों की हत्या करनेके लिए पीछे-पीछे दौड़ता जाये। रास्ते में एक पत्थरमें ठोकर लग गई और उस ठोकरके लगनेसे उसकी तलवार में लगकर टेढ़ी हो गई और खुदके ही पेटमें धस गई, और वह मरकर नरक

गया। तो जैसे कुअवधिज्ञानीने खोटी ही खोटी बातें देखीं, सही बात नहीं देखी, भली बात नहीं देखी, इसी प्रकार ये मिथ्यादृष्टी जीव बाहर-बाहर ही अवलोकन करते हैं, जिसका अवलोकन होनेपर अपने आपके अतरगका अवलोकन नहीं हो सकता है।

उन मिथ्यादृष्टी जीवोंके मिथ्यात्व आदिक ७ प्रकारकी प्रकृतियोंका न उपशम है, न क्षयोपशम है, न क्षय है, तब शुद्ध आत्मा उपादेय है—ऐसा रुचिरूप सम्यक्त्व अभव्य जीवों के कैसे हो सकता है? उनके सम्यग्दर्शन ही नहीं है। चारित्रमोहके उदयसे फिर वीतराग चरित्ररूप निर्विकल्प शुद्धआत्मा की सत्ता का अवलोकन करना भी नहीं बन सकता है। यह भावार्थ है।

निश्चयमें अभेदरत्नत्रयपरिणत आत्मा ही मोक्षका मार्ग है—यह इस दोहेमें बताया गया है। अन्य ग्रन्थोंमें भी इसके सम्वादकी कथा आई है। यह रत्नत्रय आत्माको छोडकर अन्य द्रव्यामें नहीं रहता है। धर्म कहीं बाहरमें मिलेगा क्या? कहीं न मिलेगा। न मदिरमें मिलेगा, न मूर्तिमें मिलेगा, न शास्त्रोंमें मिलेगा, न गुरुवों की उपासनामें मिलेगा, किन्तु अपना धर्म अपने आपके आत्माके स्वरूपके अन्तरमें पड़ा हुआ है। इस प्रकार यह निज शुद्धआत्मा ही मोक्षका मार्ग है—ऐसा इस दोहेमें बताया गया है, जब कि रत्नत्रय आत्माको छोडकर अन्यद्रव्योंमें नहीं रहता। तीनों मे तन्मय जो आत्मा है वह मोक्षका कारण होता है। यों मोक्षमार्गका यथार्थस्वरूप बताया है। इसको न जानकर दूसरे अज्ञानी जीवोंकी परिणतिको देखकर मिथ्यादृष्टी वैसा ही धर्मकार्य करें। तो करते हैं, ठीक हैं, मगर कुछ तो पुण्यका बध होता है, किन्तु मोक्षमार्ग उसके रच भी नहीं होता।

चार पुजारी थे। जानते तो नहीं थे किन्तु कुछ बोल दिया यथा तथा और पुजारी बन गए। सो उन चारों पुजारियोंने सोचा कि किसी बड़े के यहा चले और कोई यज्ञकी बात करें। कुछ जापकी बात करके कुछ आमदनी करे। वे जापका तत्त्व क्या जानें? एकजपे विष्णु-विष्णु स्वाहा—ऐसा ही तो बोला करते हैं। दूसरा बोला, तुम जपा सो हम जपा स्वाहा। तीसरा कहता है कि ऐसा कब तक चलेगा स्वाहा? चौथा कहता है कि जब तक चले तब तक सही स्वाहा। तो धर्मका स्वरूप क्या है? वह दृष्टि, वह झलक वह अवलोकन जिसके होने पर जन्म सफल होता है, संसारके सारे सकट टल जाते हैं यही धर्म है। धर्मके नाम पर अनेक श्रम किए जा रहे हैं तो वहा क्या है? एककी देखादेखी दूसरे भी करने लगते हैं। ऐसे तो एक एक वर्षका बच्चा भी अपने मा को जाप करते हुए देखकर पाल्थी लगाकर बैठ जाता है और जाप करने लगता है। तो जैसे बच्चे नकल करते हैं वैसे ही

ये बड़े बच्चे धर्मात्मा पुरुषोंकी नकल करते हैं। जैसे धर्मात्माके हृदयका अत.पट खोल दो तो एक अपने आपका दर्शन होने पर समझलो कि जीवन सफल है। सब कुछ मिल गया। पैसा तो यहा छोड़ ही जाना पडेगा।

एक सेठ था, वह बड़ा कजूस था। ८०–८२ वर्षका होकर भी तिजोरी की, कोठा की चाबी जो खास खास थीं अपने बच्चोंको न देता था। बहुत दिन हो गए। वह तो वृद्ध ही हो गया था। एक दिन उसकी मरणासन्न अवस्था हो गई तो बच्चोंको बुलाता है और कहता है कि हे बच्चों! हमने तुम्हारा बड़ा अनर्थ किया। अब लो ये चाबी अपने पास रख लो। तो बच्चे क्या कहते हैं? क्योंकि जान गए कि अब तो यह मरता है, सो कहते हैं कि पिता जी चाबी हमें न चाहिए, आप अपने साथ लेते जाइए। चाबी तो बडी चीज है, साथमे परमाणु मात्र भी नहीं जाता है। तो यों सबसे न्यारा देखो। यही निश्चय मोक्षमार्ग है। अब भेदरत्नत्रय व्यवहार मोक्ष-मार्ग को दिखाते हैं।

ज वोल्लइ ववहारु-णउ दसणु णाणु चरित्तु।
त परिमाणहि जीव तुहु जे परु होइ पवित्तु ॥१४॥

हे जीव! व्यवहारनय तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनो को कहते हैं। ऐसी ही दृष्टिको तू व्यवहारनय जान। जिससे तू उत्कृष्ट अर्थात् पवित्र होगा। बड़ा गुप्त है यह प्रभु भगवान्, जो सबके अन्दर गुप्त पड़ा हुआ है। इसकी दृष्टि न करें, किन्तु बन जाये तो यह बड़ा सुगम हो जाता है कि हम अपने प्रभुके जब चाहें दर्शन कर सकते हैं। जब कोई विकल्प नहीं होता है, केवल एक ज्ञान ज्योतिमात्र अनुभवमें होता है उस समय जो अनुभूति है उस सम्यग्दर्शनको साथ लेकर अनुभूति होती है। सो इसका उपाय वस्तु-स्वरूपका ज्ञान है। ऐसा जानकर हमारा कर्तव्य है कि हम वस्तुस्वरूपके ज्ञानको समझलें। कितना समय गुजरा है और-और कामोंमें और अपने आपके हितमें ज्ञानमें आनेमे समय लगता है। परिणाम निर्मल रहेगा तो पुण्य सातिशय बधेगा। यह वैभव तो अपने आप छाया की तरह पीछे पड़ता चला जायेगा। सो सर्व उपाय करके ज्ञानमार्गमे लगो।

सच तो यह है कि मात्र स्वाध्यायसे ही काम नहीं चलता। स्वाध्याय काम देता तो है, पर विद्यार्थीकी भाति अपना किसीको गुरु मानकर अध्ययन करो तो उससे जो पल्ले पड़ता है वह चीज स्थायी होती है। यह अन्य म पठन अपने आप हो सकता है, रुचि चाहिए और उस ओर यत्न होना चाहिए। एक आध घटा रोज उस अध्यात्मका अध्ययन करे तो बहुत कुछ समझमें आ सकता है। सो तुम अनेक उपाय करके इस ज्ञानवृद्धिमें लगो।

यदि कोई योग्य पडित हो, निकट ही रहता हो, गावमें वसता हो ऐसे पडितों का आदर करके शास्त्र स्वाध्याय आदि कराकर उनसे कुछ पढो और ज्ञान सीखो। यदि आप ही शिथिलता करदें, पंडित जो बोले उसका भी उपयोग न करें तो वह व्यर्थ लगने लगता है। यदि तन, मन, धन, वचनसे ज्ञानार्जन करें तो उससे कुछ सफलता हो सकती है। अनेक यत्नपूर्वक तुम ज्ञानार्जनमें में लगो, इससे ही कल्याणका मार्ग मिलेगा।

हे जीव ! जो निश्चयमोक्षमार्गका साधक है उसको तू व्यवहारमोक्षमार्ग जान। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र रूप निश्चय रत्नत्रय ही मोक्षका कारण है। परद्रव्योंसे जुदा ज्ञानमात्र आत्माके स्वरूपमें रुचि होना सो सम्यग्दर्शन है और अपने आपके स्वरूपके प्रति ज्ञान होना, विशेषरूपसे यथार्थ गुणपर्यायका परिज्ञान होना सो ज्ञान है और इसही आत्मस्वरूपमें लीन होना सम्यक्चारित्र है। ऐसा जाननेसे तू क्या वन जायेगा ? परम्परा से पवित्र परमात्मा हो जायेगा। व्यवहारमोक्षमार्ग ही इस जीवका प्रथम पुरुषार्थ है। उसके प्रतापसे ही उत्तरोत्तर विकास होकर निश्चयमोक्षमार्ग प्रकट होता है। वीतराग सर्वज्ञदेवके द्वारा प्रणीत जीव, अजीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालका सम्यक् श्रद्धान् होना, ज्ञान होना और आत्म सयमके लिए व्रत आदि का अनुष्ठान होना—यह सव व्यवहार मोक्षमार्ग है और निज जो सहज शुद्ध आत्मस्वरूप है, ज्ञानमात्र ध्रुव उस स्वरूपका वास्तवमें स्वरूप रूप आत्मतत्त्वका सम्यग्दर्शन होना, ज्ञान होना, और अनुष्ठान होना, यह है निश्चयमोक्षमार्ग।

यह व्यवहारमोक्षमार्ग तो साधक है और निश्चयमोक्षमार्ग साध्य है। यहा कोई शिष्य प्रश्न करता है कि निश्चयमोक्षमार्ग तो निर्विकल्प है, याने शुद्ध ज्ञानका श्रद्धान् होना, सोई सम्यग्दर्शन है। वह तो निर्विकल्प है उसके सम्बन्धमें विकल्प नहीं आता, फिर वह साधक कैसे होगा ? व्यवहार मोक्षमार्ग जव तक है तव तक निश्चयमोक्षमार्ग नहीं है। व्यवहारमोक्षमार्ग मिटे तो निश्चयमोक्षमार्ग वनेगा। तो साधक कैसे हुआ ? उत्तर देते हैं कि भूतनैगमनयसे, परस्परासे उसे मोक्षमार्ग कहा है। अथवा सविकल्प और निर्विकल्पके भेदसे निश्चयमोक्षमार्ग दो प्रकार का है कैसे ? मैं अनन्त ज्ञानरूप हू, यों विकल्प यत्नसाधक मार्ग है और निर्विकल्प समाधिरूप साध्य मोक्षमार्ग है। कैसा भी हो, जो आत्मतत्त्व हैं वे सविकल्प और निर्विकल्प के भेदसे दो प्रकारके हैं। जो सविकल्प हैं वे आश्रव सहित हैं और जो निर्विकल्प हैं वे आश्रवरहित हैं। तव क्या करना ? सविकल्प अवस्था पहिले होती है, होने दो, पर वहा ऐसा ही उद्यम करो जिससे निर्वि-

कल्प अवस्था हो।

देखो भैया! हमारा आपका किसी भी अन्य जीवके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। घरमें उत्पन्न हुए दो चार जो मनुष्य हैं वे भी उतना ही अपने से जुदा है जितना कि जगत् के अन्य जीव जुदा हैं और जीवोंकी अपेक्षा घरमें रहने वाले जीवोंसे कुछ सम्बन्ध हो, ऐसा नहीं है। द्रव्य भिन्न, क्षेत्र भिन्न, काल भिन्न, भाव भिन्न। हमारी परिणति से उनकी कोई परिणति नहीं बनती। उनके परिणमनसे हमारी कुछ परिणति नहीं बनती, पर वाह रे मोह कैसा आशय बसा हुआ है कि ये तो मेरे सब कुछ हैं और बाकी सब पर हैं, पराये हैं। सो ऐसी ही चेष्टा करो, प्रयत्न करो, पुरुषार्थ करो जिससे कि मन स्थिर हो जाये। यत्र तत्र न दौड़ो। और ऐसा मिथ्या आशय न पकड़ो कि लो ये तो मेरे हैं और बाकी सब पर हैं। यथार्थ स्वरूप निरखो। व्यवस्थाके नाते रह रहे हैं घरमें, पर मेरा मेरे से सिवाय अन्य कुछ नहीं है। इस निजस्वरूप तक बने रहें तो धर्म होगा, उन्नति होगी। पाप कटेंगे अन्यथा ऐसे परिणाम तो करते ही चले आ रहे हैं।

सूकर हुए तो क्या उन ५—७ बच्चों को अपना नहीं माना? जब गधा भैंस हुए तो क्या उन बच्चोंको अपना नहीं माना? बस वही रूढि चली आ रही है। अब तो अच्छा समागम मिला, इसलिए परद्रव्योंसे भिन्न अपने आपकी रुचि करो, अपनी ओर झुको, अपने आपके स्वरूपमें लीन हो, मोक्ष-मार्गमें विहार करके अपनेको निर्मल बनाओ। मोहसे, रागद्वेषसे कुछ पूरा न पड़ेगा। अब व्यवहारमोक्षमार्गका प्रथम अवयवभूत जो व्यवहारसम्य-क्त्व है, उसका मुख्यरूपसे प्रतिपादन करते हैं।

दव्वइँ जाणइ जहठियइँ तह जगि मण्णइ जो जि।
अप्पहँ केरउ भावडउ अविचलु दंसणु सो जि॥१५॥

जो यथार्थरूपमें द्रव्योंको जानता है और ऐसा ही श्रद्धान करता है वह ही तो आत्माका अविचल भाव है। यही आत्मभाव सम्यक् दर्शन है। रस्सी पड़ी थी और जान गया साप कुछ अंधेरे उजेलेमें। अब उस समय मिथ्या आशय होगा कि यह सांप है। डरता है, दौड़ता है, भागता है और जरा हिम्मत की, समझमें आ गया कि यह तो कोरी रस्सी है। तो क्या हो गया? उसके यथार्थ श्रद्धान् हो गया। अब कोई कहे कि जरा वैसे ही उचक दो जैसे पहिले उचके थे तो वह न उचक पायेगा। कोई कहे कि अच्छा १०० रुपये ले लो, जैसे पहिले उचके थे वैसे ही उचक दो, सो न उचक पायेगा। यह सांप है, ऐसा ज्ञान उसे नहीं आसकता है। जब ज्ञानही सम्यक् होगा तो मिथ्या नाटक करनेकी कला नहीं आ सकती है। और जब श्रद्धान्

ही गलत है तो ज्ञानकी कला नहीं आ सकती है। यदि हमने आगमके ज्ञान से यथार्थवस्तुका स्वरूप जान लिया तो इसमे मिथ्याज्ञान नहीं आ सकता है।

भैया! जगत्में सबसे बड़ा क्लेश है तो एक मोह ही है। इस मोहमें दूसरोंके प्रति आकर्षण होता है। परन्तु अपना विनाश करने वाला मोह ही है। मोहके फलमें अंतमे पछतावा ही रहता है। क्योंकि मोह करनेसे आत्मा का मिलेगा क्या? कुछ नहीं मिलना है। यह तो अकेला जैसा है सोई है। जब मोहमें कोई सतोषकी बात नहीं मिलती है तो वहा भी पछतावा होता है तो सबसे बड़ा सकट इस जीवको मोहका है। इस मोहके सकट को मिटाने में समर्थ तो यथार्थज्ञान है। यथार्थज्ञान बिना मोह दूर नहीं हो सकता है। प्रभुकी भक्तिसे मोह न मिटेगा। प्रभुकी भक्ति करते हुएमें यदि यथार्थज्ञान हो जाये तो मोह मिटेगा। सो उस मोह मिटाने का कारण यथार्थज्ञान है, प्रभुकी भक्ति नहीं है। प्रभुकी भक्ति तो आत्माके शुद्धस्वरूपकी ओर झुकने में एक कारण है।

जैसे बच्चोंके सिरमें नजरका टीका लगा देते हैं। जब उस बच्चे को वह टीका नहीं सुहाता है तो वह ऐना से देखता है। सो ऐनाके देखने से कहीं टीका न मिट जायेगा। ऐना तो उस लगे हुए टीकाको बता देनेका कारण है, पर टीका तो खुदको ही मिटाना पडेगा। इसी प्रकार प्रभुकी भक्ति, प्रभुका दर्शन, प्रभुका स्मरण प्रभुकी शुद्ध शक्तिका स्मरण कराने के लिए है। अब जो कुछ शुद्ध पुरुषार्थ बनेगा वह आपके प्रयोगसे बनेगा। भगवान् यहां कुछ करने नहीं आता। हम आप जैसे लोगोंको तारने के लिए वह भगवान् आ जाये तो भगवान् तो रागी द्वेषी हो गया। जैसे अपने रागद्वेष हैं। फिर उनकी उपासनासे कुछ भला न होगा। प्रभुका जब ध्यान करते हैं कि वह किस रूपमें हैं तो वह प्रभु शुद्ध है, निर्दोष है, समस्त लोकालोकको जानने वाला है, ऐसे परिणमन की शक्ति उस प्रभुमें है। और उस शक्तिका शुद्ध परिणमन होता रहता है। ऐसी ही शक्ति मुझमे हैं और ऐसी अनन्तशक्तिका पुञ्ज जैसा कि प्रभु है तैसी ही अनन्तशक्तिका पुञ्ज यह मैं हू।

भैया! अपने को यह मालूम पड़ता है कि हम ठीक कर रहे हैं, यह अच्छा कर रहे हैं, यह करना चाहिए मगर प्रभुकी निगाहमें तो किसी विशेष ज्ञानीकी दृष्टिमें तो हम आप यों दिख रहे होंगे, जैसे मैदानमें सड़कके चारों ओर प्राय यहासे वहा जाते हुए छोटे मोटे कीड़ोंका झुण्ड हो जाये और वे भिनभिनाते हैं, यहां से वहा जाते हैं। इसी तरह कीड़ोंके माफिक हम आप यहा से वहा, वहा से यहा व्यवहार किया करते हैं। तत्त्व कुछ नहीं निकलता मोह करते-करते ६०–७० वर्ष हो जाते हैं और उनसे पूछो कि तुम्हारी गाठमें

लाभ कितना हुआ, तुम कितने मस्त हो गए, तुम्हारी आत्मामें कितना पोषण हुआ, कितना संतोप इकट्ठा कर लिया, कितना सुख जुट गया ? उत्तर मिलेगा नथिंग। और इतना ही नहीं, टोटेमे पड़ गए। मोह करने से मिलता तो कुछ नहीं, उलटा नुक्सान ही होगा। आत्मबल घटेगा, बाह्यदृष्टि बढ़ेगी। अपने को और हल्का बना लिया। नुक्सान ही अनुभव करते हैं, फायदा कुछ नहीं पाते हैं, पर ऐसा मिथ्यात्व प्रकृतिका प्रसाद है कि सब कुछ नुक्सान होता रहता है मोहमें, पर मोह किये बिना ये मानते नहीं हैं। मोह कर रहे हैं।

मिर्चके आसक्त पुरुष लाल मिर्चको खाते हैं तो सी सी करते जाते हैं, आंखोंसे आसू भी गिरते जाते हैं और मांगते जाते हैं कि थोड़ी मिर्च और डाल दो। कैसा मिर्चका शौक लगा है ? खा चुकने के बाद जब डकार आती है तो गला जलने लगता है। देखो सब अनुभव है बाबा जी को और फिर वह कहने लगता है कि और डाल दो लाल मिर्च। इसी प्रकार मिथ्यात्व के उदयमे हो क्या रहा है ? उसी मोहके कारण दु खी होते जा रहे हैं और उसी मोहको करते जा रहे हैं। वह निर्लेप ज्ञानप्रतिभास धन्य है जो घर गृहस्थीमें रहकर भी अपने आपके शुद्धस्वरूप की स्मृति रखता है।

यह परमागम ज्ञान निश्चय सम्यग्ज्ञानका कारणभूत है। अर्थात् वीतराग स्वसम्वेदन शुद्ध जानन परिणतिका परम्परा कारणभूत यह शास्त्र-ज्ञान है। शास्त्रज्ञानसे पार नहीं होता है। पार होता है आत्माके शुद्धज्ञान से। आत्माके उस शुद्धज्ञानमें पहुंचा देनेमे समर्थ यह शास्त्रज्ञान है। इस ज्ञानके द्वारा जो जानता है और न केवल जानता है किन्तु इस जगत्में निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है--ऐसी रुचिरूप जो सम्यक्त्व है उसकी परम्परा के कारणभूत जो व्यवहारसम्यक्त्व है उसके द्वारा अपने आत्माका जो श्रद्धान करता है वह जीव मोक्षमार्गी है।

भैया ! व्यवहारसम्यग्दर्शनका स्वरूप जानकर अपने आपमें यह निरखो कि ये सब तत्त्व मुझमें पाये जाते हैं या नहीं। जिसको सम्यग्दर्शन होता है उसके तीन मूढ़ता नहीं रहती हैं। देवमूढ़ता, लोकमूढ़ता और पाखण्डमूढ़ता। जिस चाहे देवको मानने की कल्पना नहीं जगती है। चलते जा रहे हैं, रास्तेमें कोई चबूतरा मिल गया, सिंदूर लगा है, नारियल के चार-छ जटा पड़े हुए हैं, उसको देखकर हृदय और प्रकारका हो जाता है। यहा देव विराजमान हैं, भगवान् बैठे हैं, देव देविया बैठे हुए हैं, उन भौतिकों की सिर्फ इतनी ही कीमत है जितनी कीमतकी वहा खपरिया पड़ी हुई हैं, नारियल की लटें पड़ी हुई हैं। अरे देव तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानमात्र

जो आत्मतत्त्व है उसको देव समझो। इस देवको छोड़कर जो रागद्वेषके वशीभूत है, स्त्री भी साथ लिए है, कहते हैं कि यह तो ठाकुर जी हैं, यह ठकुरानी जी हैं। यह तो भगवान् हैं और यह भगवती जी हैं। जैसे मास्टर और मास्टरानी, सेठ और सेठानी। ऐसे ही परमात्मा और परमात्मनी चले आ रहे हैं और यह कहते जाते हैं कि यह कौन है सगमे? यह भगवान् का जेठा लडका है, यह तो भगवान्की बिटिया है, ऐसे जो परिवारके साथ फिरता हो उसे देव मानना देवमूढ़ता है।

भैया! देव तो शुद्ध ज्ञानमात्र है। अब समझलो कि कौन वस्तु कैसी है? यह मोही किसी आशा को रखकर यदि जगह-जगह डोलता रहता है तो उसके देवमूढ़ता मिटे कैसे?

लोकमूढ़ता क्या है? इस नदीमें नहा लो तो सारे पाप धुल जायेंगे। अरे पाप धुलते हैं ज्ञानजलमे स्नान करने से, न कि एकेन्द्रिय जलमें स्नान करने से। रेतका भँटूना बना लेते हैं तो उसीको ही नमस्कार करते जाते हैं। किसी-किसी वृक्षको ही भगवान् बना देते हैं। कुछ झडिया लटका दीं, घंटिया लटकी, कुछ कपडे बाध दिये, उसकी परिक्रमा भी कर देते हैं। पीपलके पेड़में, बडके पेड़में ऐसा करते हैं। नीमको ऐसा नहीं मानते हैं, लेकिन नीम काममें बहुत आती है। इस रीतिमे तो वह नीम भी देवता मानने लायक है। और बबूल की भी डाल पुष्ट होती है। बबूल की डालसे दातून करनेमें दात पुष्ट होते हैं और पीपलके पेड़की हवा अच्छी होती है, बड़के पेड़की भी छाया बढ़िया होती है। तो जिससे उपकार होता है उसकी पहिले रक्षा की जाती थी। वे रक्षक आज देवताके रूपमें बन गए हैं। वहा सम्यक्त्व ही कैसे हो सकता है?

जो परिग्रहसहित आरम्भसहित गुरु हैं उस गुरुकी आराधना, उपासना करना सो है पाखण्डमूढ़ता। इन मूढतावोंसे रहित हो तो सम्यक्त्व होता है। घमण्ड भी न हो धनमें, रूपमें इज्जतमें, प्रतिष्ठामें कुलमें। यदि इनमें घमण्ड है तो वहा सम्यक्त्व नहीं है। अपनेको निरखलो कुदेव, कुशास्त्र कुगुरुकी महिमा न गावो तो वहा सम्यक्त्व होता है। वस्तुस्वरूपमें शका न हो, किसी परपदार्थमें आसक्ति न हो, किसी धर्मात्मामें ग्लानि न हो, बछों की तरह धर्मात्मावोंमें प्रीति हो, वहा मोह नहीं होता। दूसरोंके दोषोंको ढाक सकनेकी हिम्मत हो। धर्मसे च्युत होने वाले लोगोंमें धर्म स्थित कर सकने की हिम्मत हो, धर्मात्माजनोंसे प्रीति कर सकता हो, तपस्या ज्ञान आदिके द्वारा धर्ममे प्रभावना कर सकता हो—ऐसी योग्यता सम्यग्दृष्टी पुरुष में हो जाती है। ऐसा चरित्र हो तो समझो कि हमको सम्यग्ज्ञान हुआ।

सम्यग्दर्शन होने से सर्वमें एक प्रकारकी दृष्टि होगी, कृतकृत्यता होगी व सर्व संकट समाप्त हो जायेंगे हैं।

जीवका सर्वोत्कृष्ट वैभव सम्यक्त्व है। अपने आपका यथार्थ परिचय होना इसही का नाम सम्यक्त्व है। यह जीव ज्ञान और आनन्दस्वरूपमय है। अन्तरदृष्टि करके उसके अन्तरमें निरखा जाय तो यहा मिलेगा क्या? न रूप है, न रस है, न गंध है, न स्पर्श है, न वहां वर्ण है, न शब्द है। केवलज्ञान और आनन्द लक्षण ही मिलेगा। ऐसे ज्ञानानन्दस्वरूप निज आत्माका परिचय हो जाना सो सम्यक्त्व है।

सम्यग्दर्शनमें २५ दोष नहीं हुआ करते हैं। पहिले तीन दोष हैं मूढ़ताके, जिसे आत्माका परिचय होता है—ऐसा पुरुष अन्यत्र कहीं देवबुद्धि नहीं कर सकता। अपने ही स्वरूपकी शक्तिकी तरह जिनका शुद्ध विकास हुआ है उनको ही देव माना गया, अपना आराध्य माना गया। यदि इस ज्ञानमय प्रभुके अतिरिक्त अन्य किसी जड़को अज्ञानसे देव मानले तो इसका अर्थ यह है कि अपने आपके सहजस्वरूप का उसे परिचय नहीं हुआ। इसी प्रकार जिसको आत्मपरिचय हो जाता है उसकी बुद्धि लोकमें अधिक नहीं फंसती है। किसी परिस्थितिमें कुछ थोड़ी बहुत बुद्धि जाये तो वह उपयोग अबुद्धिपूर्वक जाता है। सम्यग्दृष्टीको भोगविषयोंमें उपयोग लगाना पड़ता है, किन्तु अंतरंगमें यह भावना रहती है कि यह झंझट कब छूटे? जिसे अज्ञानी जीव बड़ा वैभव समझता है उसे सम्यग्दृष्टी जीव झंझट मानता है। ऐसे शुद्ध आत्मतत्त्वसे परिचित ज्ञानी पुरुष लोकरूढिमें अपनी मूढता नहीं करता है।

जैसे अनेक लोग मानते हैं कि अमुक नदीमें नहा लें तो पाप धुल जायेंगे अथवा अमुक समुद्रमें स्नान कर ले तो तिर जायेंगे, अमुक पर्वतसे गिरकर यदि प्राण छूटें तो सीधा बैकुण्ठमें जाता है अथवा कोई धूलका पुञ्ज मिले, पत्थरका ढेर मिले तो लोग उसे पूजते हैं, इस प्रकार यह आत्म-परिचयी आत्मा उनको आदर नहीं देता है। उसका तो केवल एक ही ध्येय है। उसकी दृष्टिमें है आत्मस्वभाव और भक्तिके विषयमें है परमात्मदेव। यह आत्मस्वभाव जिसका विकसित होता है ऐसा आत्मा दो के सिवाय उसका और कोई तीसरा लक्ष्य नहीं होता है।

ऐसे ज्ञानी पुरुषके लोकमूढ़ता नहीं होती है। साथ ही पाखण्डमूढ़ता भी नहीं होती। गुरुके नाम पर जिस चाहे को हितकारी मान ले, ऐसी बुद्धि सम्यग्दृष्टीमें नहीं जगती। यों तीन मूढ़तावोंसे रहित स्वस्थ जीवके सम्यग्दर्शन का विकास होता है। सम्यग्दृष्टी पुरुषमें मद नहीं होता है। उसके ज्ञानका मद

है। वह जानता है कि ज्ञानका अथाह पथ है समस्त विश्वको एक साथ जान लिया जाये, फिर भी ज्ञानमें ऐसी सामर्थ्य है कि ऐसे अनगिन्ते विश्व हों तो भी यह ज्ञान जानने को मना नहीं कर सकता है। इतने विशालज्ञानका निधान होकर क्या अपनेमें ज्ञानका गर्व करें ?

उस ज्ञानीके ज्ञान का गर्व करनेकी बुद्धि नहीं पैदा होती है। प्रतिष्ठा में, पूजामें, इज्जतमें उसके गर्व नहीं होता है। वह जानता है कि इज्जत, प्रतिष्ठा आदि कुछ चीजें नहीं हैं। कुछ थोड़ीसी इज्जत हैं, पर मरणके बाद कीड़ा बन गए, पशु बन गए तो वहां क्या यह इज्जत सधेगी ? यह इज्जत बिल्कुल व्यर्थ है। स्वय का स्वय के द्वारा यदि अनुभव है तो सही मायनेमें इज्जत हो सकती है। तो वह इज्जत होगी कि तीर्थंकर अरहतके समवशरणमें विराजमान होंगे।

यह मायामयी इज्जत और इस इज्जतका भी करने वाला कौन है ? दीन पुरुष जो स्वय अशरण हैं, जन्ममरणके चक्रमें लगे हुए हैं, उन जीवोंके द्वारा कोई इज्जत प्राप्त हो तो वह इज्जत बेकार है, वह इज्जत अस्थिर है। ज्ञानी जीवके इज्जत का मद नहीं होता है। सम्यग्दृष्टी पुरुष यद्यपि उच्च कुलमें ही पैदा होता है, पर उसे किसी भी कुलमें पैदा होने का मद नहीं होता है। वह जानता है कि यह कुल क्या है ? यह कर्मोंके उदयका विपाक है। जैसा उदय हो तैसा लोकमान्य अथवा लोकनिन्द्य कुल प्राप्त हो जाता है। यह कुल मेरी आत्माका कुछ नहीं है। मेरा कुल तो चैतन्यस्वरूप है। ऐसा समझने वाले ज्ञानी पुरुषके कुलका मद नहीं होता है। आत्मपरिचयी सम्यग्दृष्टी जीव जातिका मद नहीं करता है। हम बड़े ऊँचे कुलके हैं, बड़ी ऊँची जातिके हैं— ऐसा सोचकर वह ज्ञानी पुरुष अपनेमें मद नहीं आने देता है। वह जानता है कि जन्ममरण एक बला है, इससे छूटना है इसकी क्या तरकीब करें ?

ज्ञानी को अपने बलका भी मद नहीं होता है। काहे का बल हमारा बल तो अनन्त वीर्य है। तीर्थंकर प्रभुके शरीरबल अनन्त होता है, इसके लिए दृष्टान्त दिया है। नेमिनाथ भगवान्‌ने इतना ही कहा कि हमारी यह अगुली टेढ़ी कर दो तो कोई भी टेढ़ी न कर सका। उपमा दी जाती है तीर्थंकरके शरीर बलकी, इस प्रकार जैसे बीस बकरोंमें जितना बल है उतना बल एक घोड़ेमें हो सकता है। बीस घोड़ोंमे जितना बल है, उतना बल एक भैंसामें हो सकता है, बीस भैंसोंमे जितना बल है उतना बल एक हाथीमें हो सकता है। जितना बल बीस हाथियोंमें है उतना बल एक पराक्रमी सिंहमें हो सकता है, जितना बल २० सिंहोंमें है उतना बल एक साधारण देवमें

हो सकता, है, चक्रवर्ती मे हो सकता है, वीसो चक्रवर्तियोंमें जो बल है, उतना देवोंमें हो सकता है। उससे कई गुणा बल इन्द्रोंके हो सकता है और कितने ही इन्द्रो जैसा बल तीर्थकर भगवानकी अगुलीमे हो सकता है। ऐसा वह बल इस जीवको सहज अनायास प्राप्त होता है। ज्ञानी पुरुष शरीरको भी अपना नहीं मानता तो शरीरके बलका मद क्या करेगा?

ज्ञानी जीव अपने विशुद्ध परिणामके बलसे ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त कर लेता है। ऋद्धि-सिद्धिकी प्राप्ति शुद्ध ज्ञानसे ही होती है। अपने आपको मात्र ज्ञानस्वरूप लक्ष्यमें लेना, केवल ज्ञानज्योतिमात्र अनुभवना, इस अनुभव में ऐसा प्रताप है कि सिद्धि, ऋद्धि, अनाकुलता, निर्जरा आदि जो जो भी मंगलमय तत्व हैं, वे सब प्राप्त हो जाते हैं। कदाचित् सिद्धि भी हो जाये तो उसके भी उसका मद नहीं होता है।

ज्ञानीको तपस्यामें मद नहीं होता है। वह जानता है कि सर्वोत्कृष्ट तपस्या तो एक आत्मज्ञानानुभूति है। उसकी ही साधनाके लिये ये समस्त बाह्यतप हैं। इन बाह्यतपोंकी सिद्धि एक निज सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये है। एक तपस्या अतरग के लिये साधक है। वह अन्तरगमें ही स्वय है, होती है, उस तपका ज्ञानी पुरुषमें मद नहीं होता है। इस प्रकार मदोसे रहित ज्ञानी पुरुष अपने सम्यक्त्वकी साधनामे, ज्ञानकी आराधनामें लगे रहते हैं। सम्यग्दर्शन की दृष्टि ही इस जीव को भला कर सकने वाली है।

यह ज्ञानी जीव यत्र-तत्र अनायतनोंमें नहीं भटकता है। उसे अपने आपमें मालूम हो गया है कि यह मेरा एक आत्मप्रदेश ही है। मेरा परिवार मेरे आत्माके असाधारण गुण हैं। मेरा वैभव यह सब विशुद्ध परिणमन ही है। इस मेरेका मै ही बुरा कर सकता हूं, मैं ही भला कर सकता हू, मैं ही अपने आपको चाहे कुगतिमें ले जाऊँ, चाहे सुगतिमें ले जाऊ, इसमे किसी दूसरेका हाथ नहीं है- ऐसा जानकर वह अपने आपमें ही आश्रय और आलम्बन लेनेका यत्न करता है। वह अनायतनोंमें नहीं भटकता है। कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु आदि का वह सबन्ध नहीं बनाता है। ज्ञानी पुरुषका गुण विशुद्ध दर्शन है। उसे अन्तरगमे किसी भी प्रकारका भय नहीं है।

भय सात होते हैं— (१) इहलोकभय, (२) परलोकभय, (३) मरणभय, (४) आकस्मिकभय, (५) अरक्षाभय, (६) वेदनाभय, (७) अगुप्तिभय। मेरे लिये मेरा आत्मा ही लोकपरलोक है। जैसे किसी पुरुषके इष्टका वियोग हो जाता है, तो लोग कहते हैं कि इसकी दुनिया बुझ गई। इसकी दुनिया इसके ही पास है और इसकी दुनिया बिगड़ गई- ऐसा लोग

कहते हैं। मेरी दुनिया मेरा ही उपयोग है। इस उपयोगमें परका क्या भय है? परसे कोई आशा रखूँ, परसे कोई राग करूँ, परसे अपना हित मानूँ और परकी परिणति मेरी वाञ्छाके अनुकूल हो– ऐसी आशा करूँ तो भय और शंका हो सकती है।

जिसने वस्तुस्वरूपके ज्ञानके द्वारा सर्व कुछ यथार्थ निर्णय कर लिया, वह निर्भय रहता है। एकका दूसरेमें कर्त्तव्य भाव रच भी नहीं होता है। भले ही कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थका निमित्त पाकर किस ही रूप परिणम जाये, मगर उसका परिणमना उसके ही स्वभावसे, परिणतिसे प्रकट होता है। कोई दूसरा पदार्थ किसीका परिणमन नहीं बना देता है। इस कारण इसे इस लोकमें कोई भय नहीं है। क्या होगा अधिकसे अधिक? कुछ धन न रहेगा, कुछ वैभव न रहेगा तो भी इस आत्माका अस्तित्व तो नहीं मिटता। इसका डर क्या है? जैसा ही वही सही। क्या डर इस लोक में हुआ करता है? उसका इस लोकमें जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता है। कष्ट क्या है? शरीरका कष्ट। कष्ट नहीं कहलाता है, वह कल्पनाजन्य है। मैं अपनी कल्पनाको उलट लूँ तो इसमें कोई संकट नहीं हो सकता है। उसे इस लोकमें भय नहीं है, परन्तु लोक मायने उत्कृष्ट लोक। परका अर्थ है– उत्कृष्ट। वह उत्कृष्ट लोक मेरा मैं ही हू। एक भवका मरण होने के बाद भी जिसे परलोक कहते हैं, वह यही मैं ही तो हू। आज किसी स्थितिमें हो तो वह स्थिति टूटकर कल किसी दूसरी स्थितिमें आये तो उसे लोग परलोक कहने लगते है, पर यह तो वहीका वही है। यह दूसरा जीव नहीं हो सकता है। मेरा परलोक मैं ही हू और जो गुजरेगा वह मेरी ही परिणति तो गुजरेगी।

जैसे जिसके बुखार चढा है, तो वह अपने आपमें अपनी हिम्मत बना लेता है। जाडा लगता है तो वह जानता है कि यह तो बुखार है। इस बुखारमें तो ऐसा हुआ ही करता है। इतनी समझ होने पर वह अपने आपमें दृढ़ता बना लेता है और संकटोंका अनुभव नहीं करता है। जितने संकट आते हैं, वे आत्माके विकारपरिणमनसे आते हैं। जितने संकट मरनेके भयसे हुआ करते हैं, उतने संकट मरनेके समयमें नहीं हुआ करते हैं। परलोक यह मैं स्वयं ही हू। मेरे परलोकको कोई दूसरा बिगाड नहीं सकता। मैं अपने आपके इस उत्कृष्ट चैतन्यस्वरूपको निरखता रहू तो मेरा रच भी इसमें अलाभ नहीं है, वेदनाका भय नहीं है। वेदना विद धातुसे बनी है, जिसका सीधा अर्थ है वेदना अर्थात् जानना। जानना आत्माका स्वरूप है, वह भयके लिये नहीं होता है। यदि वस्तुका स्वरूप वस्तुके बिगाड़

के लिये हो जाये तो वस्तुका अभाव हो जायेगा। मैं जानता हूं कि शरीरमें भी पीड़ा हो तो वहां भी यह मैं जानता हू। शरीरकी पीड़ासे आत्माका अनुभव नहीं होता है, किन्तु शरीरमे कुछ हरकत हो जाने पर शरीर मैं हूं या मेरा है– ऐसी जाननमात्र दृष्टि रखते हैं, उतनेमे वह पीड़ाका अनुभव करता है।

गजकुमार मुनि जिसके सिर पर अगीठी रख दी गई, उस नौजवान का कल विवाह हुआ और आज विरक्त हो गया। तो उसके स्वसुरको क्रोध आ गया। इस दुष्टको यदि मेरी लड़कीको ऐसी तकलीफ देनी थी तो विवाह ही क्यों किया, सबन्ध ही क्यों किया ? उसके क्रोधका पारा तेज हो गया तो सिर पर मिट्टीका बाध-बांध कर कोयलेकी अंगीठी जलाई। कोयला डाल दिया, जल रहा है, किन्तु जिसने शरीरसे भिन्न आत्मस्वरूपका परिचय पाया, वह तो आनन्दमे ही तृप्त है।

यह आत्मपरिचय पाया जा सकता है। चीजें दो हैं– (१) चैतन्य, (२) शरीर। तो शरीरको न जानकर, शरीरको न देखकर केवल आत्मा को ही जाने तो ऐसा जाननेमे कोई दूसरा रुकावट नहीं डाल सकता है। यह ही स्वय अज्ञानवश अर्थात् विषय-कषायोंसे प्रेरित होकर अपने आपमें बाधा डालता है। कोई दूसरा पुरुष इस जीवके सम्यक्त्व और आचरणमें बाधा नहीं डाल सकता है। वह गजकुमार मुनि प्रथम तो शरीरका ध्यान ही न रखते होंगे कि मैं शरीरको लिये हू या शरीर मेरेमें चिपका है, वे इस शरीर पर ध्यान नहीं रखते होंगे। कदाचित् घटनाका भी ज्ञान होता होगा। तो जैसे कहीं बाहरमे अग्नि जल रही है, वैसी ही दृष्टि वे डालते होंगे। इस प्रकार भेदविज्ञानकी दृढताके बलसे देख रहे होंगे। सो यह ऐसा हो रहा है, पर मुझमें नहीं हो रहा है– ऐसे शुद्ध आत्माकी विभूति वाले संत पुरुषोंके वेदनाका क्या भय हो सकता है ?

इसी प्रकार ज्ञानीको मरणका भी भय नहीं होता है। मरणका भय उन्हें हुआ करता है, जिनके मोह और रागकी वर्तना है। मरते समय दुख नही होता किन्तु जिस वस्तुमें राग है, उसके छूटनेका दुख हुआ करता है। जिस प्राणीने मोहका विनाश कर लिया है– ऐसे प्राणीको मरणके समय दुख नहीं होता। हाय, मेरा मकान छूटा जा रहा है, यह घरकी दौलत छूटी जा रही है– ऐसी दृष्टि रखनेके कारण मरनेके समय क्लेश होता है। केवल आत्माको ही जो देख रहा हो, वह तो जानता है कि यह मैं आत्मा पूराका पूरा हू, सुरक्षित हूं। यह लो मै जा रहा हूं, इसमें कोई हानि नहीं है। हानि तो वही पुरुप देखता है, जिसे किसी परपदार्थमें ममताहै, परपदार्थोंमें जिसके

ममता नहीं है, उसके मरते समय दुःख नहीं होता। क्या हानि है ?

जैसे कोई बड़ा आफीसर किसी दूसरी जगह तबादले पर जाये, तो उसे कोई कष्ट नहीं होता है। जितना उसका सामान है, सबको धरन के लिये बहुतसे नकर मिल जाते हैं और जहां जायेगा, वहा अगवानी चलेगी। लोग उत्सुक हो रहे होंगे— ऐसे किसी विशिष्ट आफीसरको तबादले के समय क्लेश नहीं होता है— ऐसे ही ज्ञानी पुरुष जो जानता है कि मैं सर्वत्र अपने ही चतुष्टयस्वरूप हूं, यहां भी हूं, तो उतना हो। कहीं अन्यत्र जाऊं तो भी उतना ही हूं। वस्तु पूर्ण है, उसमें से कुछ हटता नहीं है अथवा किसी अन्य वस्तुसे कुछ मिलता भी नहीं है। प्रत्येक वस्तु स्वय सिद्ध है, अनादि सिद्ध है, वह जितना था, उतना ही है, उसमें से कुछ निकलता नहीं है और न उसमें कुछ जोड़ा जाता है। तब इसका मरण ही क्या क्षेत्रान्तर हो गया, ऐसा समझने वाले सम्यग्दृष्टी पुरुषके मरणका भय नहीं होता है।

इसे अरक्षाका भी भय नहीं है। हाय! मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है— ऐसा उसे भय नहीं होता। क्या होगा? वह स्वयं सुरक्षित है, सत् है, अपने आप परिपूर्ण है। यह अधूरे अस्तित्व वाला नहीं है कि मेरा आधा अस्तित्व हो गया, अब आधा और बनना है। यह मैं पूरा का पूरा हूं। इस पूरे मुझमें जो परिणति बनती है, वह भी पूरी की पूरी बनती है। पूरी परिणतिके बाद दूसरी जो परिणति बनती है, वह पूरी परिणति बनती है। पूरी बन जाने पर भी पूरी परिणति रहती। इस पूर्ण आत्मस्वरूपमें, इस पूर्ण पर्यायके निकल जाने पर भी यह पूर्णकी पूर्ण ही रहती है। ऐसे स्वत सिद्ध अपने आपमें सुरक्षित परिपूर्ण आत्मानुभूतिकी भावना करने वाले संत पुरुष मरणका भय नहीं किया करते हैं। इस जीवनमें सारभूत काम समाधिमरण है। जीवन भर धर्म कार्य किया और मरण समय अपने परिणाम न सभाल सके, सक्लेश किया, चित्त विचित्र बनाया, रागरूप बनाया तो इस जीवनमें जो कुछ किया है, वह सब हीन बलका हो गया। सम्यग्दृष्टी पुरुष समतापूर्वक ही मरणका यत्न करता है और रक्षाका, अरक्षाका रंच भी भय नहीं करता है।

कुछ भी स्थिति गुजरे पर आत्माका अनुभव हो। जैसे लोग शरीरके थक जाने पर विह्वल हो जाते हैं, घबड़ा जाते हैं। हाय! मेरी बुरी हालत हो गई, मैं थक गया, पर हिम्मती पुरुष थक जाने पर भी जानता है कि क्या होगा, आखिर अग ही तो थक गये हैं। वे हाथ पैर मेरे ही पास हैं, उनमें थकानका किया अनुभव किया जाये? कुछ भी परिस्थिति आये, पर यह तो मैं वही का वही हूं। इस मुझमें से तो कोई कुछ चुरा नहीं सकता है

और न कुछ इसमें भंग कर सकता है। ज्ञानी पुरुषको अरक्षाका भी भय नहीं होता है। हाय मैं अगुप्त हूं, मेरा मकान सुरक्षित किवाड़ वाला नहीं है, अथवा किसी जगहसे चोर डाकूका रास्ता बन सकता है, मैं तो बड़ा अगुप्त हूं—ऐसा भय सम्यग्दृष्टी पुरुषके नहीं होता है।

बनारसीदासके कथानकमे पढ़ा होगा कि चोर आया, बहुतसा माल इकट्ठा किया, चोर स्वयं उस मालको न उठा सका तो स्वयं बनारसीदासने उसको वह माल उठा दिया। कहा भाई! तुम्हें उठानेमें तकलीफ हो रही है तो हम तुम्हारी तकलीफको मिटा दें। फल क्या हुआ कि चोर जब घर पहुचा तो मांसे कहा कि आज तो ऐसे घरसे चोरी करके लाए हैं कि चोरी भी की है और उस बेवकूफने मेरे सिर पर लाद भी दिया। तो वह मा बोलती है कि बेटा वह बनारसीदास ही होगा, उसका माल नहीं पच सकता है। वह धर्मात्मा है। चोर वह माल वहीं दे जाता है व चरण छूता है।

वह एक दीन पुरुष है जो अपने आत्मस्वरूपका विश्वास नहीं करता है। वह बैठे ही बैठे, कितनी ही विपत्तियां बुला लेता है। इसमें उदयका ही तो अन्तर है। पुण्योदय वाला पुरुष कितना ही धनका नाश करे, खर्च करे पर उसके पुण्यका उदय है, वह व्यर्थ नहीं जा सकता है। और व्यर्थ जाये तो समझो के पापका उदय आनेका काल था। धनको गाड़कर रखनेसे [illegible] सभालो। परद्रव्यके अनुग्रह और निग्रहमें आत्माका पुरुषार्थ नहीं चल सकता है। यह आत्मा परमें क्या करेगा? कुछ भी परमें नहीं कर सकता है।

एक सेठ था। वह राजाका प्यारा था, गरीब हो गया। राजाने पहिले कहा था कि तुम पर कोई आपत्ति आयेगी तो हम तुम्हारे कष्टको मिटा देंगे। वह राजा के पास पहुचा। राजाने उसके रहने को कमरा दे दिया और साथमें बीस बकरियां दे दी। वह राजा २-४ दिन बादमें पूछता है कि आज कितनी बकरियां हैं। अब १८ बकरी रह गई, दो मर गई। फिर कभी पूछा तो १६ रह गई, १७ रह गई। इसी तरहसे ६ महीने गुजर गये। ६ महीने के बादमें एक दिन पूछा तो कहा अब २० बकरी हैं। तो राजा बोलता है कि तुम जितना धन चाहो ले लो और अपना व्यापार करो। सेठने पूछा कि ६ महीने क्यों हैरान किया? इतनी बात, पहिले ही दे देते तो हम कभी अपना काम शुरू कर देते। राजा बोलता है कि हम तुम्हारे भाग्यकी परीक्षा कर रहे थे कि कब भाग्य प्रबल होता है। जब भाग्य प्रबल हो तब दें अन्यथा पापके उदयमें तो सब नष्ट हो जायेगा। जब मैंने बकरियोंकी गिनती की

और यह समझ लिया कि अब उदय ठीक है तो जितना चाहे धन ले जावो। सेठ कहता है कि जब मेरा उदय अच्छा है तो मुझे कुछ न चाहिए।

भैया! सासारिक वार्तोंमें कर्मोंकी प्रधानता है और मोक्षके मार्गमें पुरुषार्थ की प्रधानता है। शुद्ध परिणामोंसे ही जीवका कल्याण सम्भव है। ऐसा जानकर अपने आपका शुद्ध परिणाम बनाये रखनेका यत्न करो। और यह यत्न- ज्ञानस्वभाव की दृष्टिसे ही सम्भव है अन्य पदार्थोंसे नहीं। इसलिए अपने को ज्ञानमात्र अनुभव करनेका यत्न करना ही श्रेयस्कर है।

सम्यग्दृष्टी जीवको आकस्मिक भय नहीं होता है अर्थात् अचानक मेरे अनिष्ट कोई न हो जाये—ऐसा कोई भय नहीं रहता है। इसका कारण यह है कि प्रथम तो इस जीवको यह श्रद्धा है कि किसी भी अन्य पदार्थसे मुझमें कुछ आता नहीं है। दूसरे एक सर्वज्ञके ज्ञानकी ओरसे यह कहा जायेगा कि जब जो होता है तब वह होता ही है। इस कारण आकस्मिक कुछ भी नहीं हुआ करता है--ऐसा ही निश्चल श्रद्धान् सम्यग्दृष्टी जीवके हुआ करता है। यों ७ प्रकारके भयोंसे रहित सम्यग्दर्शन एक ऐसा निर्मल पद है कि जिसके कारण इस जीवको ससारका कोई सकट नहीं रहता है। इस प्रकार यह जीव जीवादिक ७ तत्त्वोंका श्रद्धान् करता है, जीवादिक तत्त्वोंका ज्ञान करता है और अपने ही आत्मस्वरूपमें अविचल रूपसे रहता है। ऐसा जो यह सम्यक् जीव भाव है, वह ही इस जीवका वास्तविक शरण है।

इस अज्ञानी जीवने अज्ञानबलसे जगत्के सब जीवोंमें दुविधा भाव कर लिया है। किसीको इष्ट माना है और किसी को अनिष्ट माना है। जब मेरे स्वरूपसे बाहर वास्तवमें कोई पदार्थ मेरा हित नहीं कर सकता है, मेरी कुछ भी परिणति नहीं कर सकता है, तब मेरे लिए वस्तुत' इष्ट कौन है और अनिष्ट कौन है? जहा तक इस जीवमें इष्ट और अनिष्टकी बुद्धि रहती है वहा तक रागवश यह जीव कर्मोंका बध रहता है--ऐसा यह सम्यक्त्व सर्व सारभूत है। चिंतामणि यही है, कल्पवृक्ष यही है, कामधेनु यही है, ऐसा जानकर भोग आकाक्षा के समस्त विकल्पजाल त्यागनो चाहिए। चिंतामणि उसे कहते हैं कि जिसके रहते हुए जो विचारो सो मिल जाय। ऐसी चिंतामणि जड़ पदार्थोंमें कुछ भी नहीं है कि जिसके समीप आ जाने पर जो विचार करें वह मिल जाये, किन्तु आत्माका जो निर्मल, विपरीत आशयरहित परिणाम है उसमें यह सामर्थ्य है कि कुछ चिन्ता न आये तो वह सिद्ध होता है।

प्रथम तो यह बात है कि सम्यग्दृष्टी जीव किसी भी बातका चिंतन

नहीं किया करता है। जो अपने मोक्षमार्ग और संकट विनाशके योग्य उपाय हो उसको ही किया करता है। रत्नत्रयरूप कल्पवृक्ष एक ऐसा वृक्ष होता है कि जो मांगो सो तुमको मिल जायेगा। आत्माका निर्मल सम्यक्त्व परिणाम ऐसा समर्थ परिणाम है कि केवल मांगो ही। इस सम्यक्त्वके कारण उसको जो कुछ हितरूप है वह उसको प्राप्त हो जाता है।

कोई गाय कामधेनु कहलाती है। जितना चाहे दुहते जावो, लेकिन वास्तविक कामधेनु एक आत्मपरिणाम है। इस आत्मपरिणाम से जितना भी मंगल शुभ चाहो उतना प्राप्त होता जाता है। ऐसे उस सम्यक्त्व परिणामको हे मुमुक्षुजन! योगोंकी आकांक्षा छोड़कर ध्यान करो। अन्य ग्रन्थो में भी ऐसा ही कहा है कि जिसके हाथमें चिंतामणि है, जिसके कल्पवृक्ष है, जिसके एक कामधेनु है उसकी और क्या प्रार्थना कर सकते हैं। इस प्रकार सम्यक्त्वकी महिमा का वर्णन करके अब यह बतलाते हैं कि जिन ६ द्रव्योंके द्वारा जो कि सम्यक्त्वके विषयभुत है, तीन भुवनमे भरा हुआ ठहर रहा है उसको तुम इस प्रकार जानों ऐसा मनमें सकल्प करके इस सूत्रका कथन करते हैं।

दव्वइ जाणहि ताइँ छह तिहुयणु भरियउ जेहिं।
आइ-विणास-विवज्जियहिं णाणिहि पभणियएहिं ॥१६॥

हे प्रभाकर भट्ट! परमागममे प्रसिद्ध इस द्रव्य को जानों जिससे ये समस्त तीन लोक भरे हुए ठहर रहे हैं। द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाये तो किसी भी द्रव्यका न आदि है और न विनाश है। और फिर ज्ञानियोंके द्वारा यह कथित है कि इन ६ द्रव्योंसे यह लोक भरा हुआ है। इसके लिए न कोई हर्ता है, न कर्ता है, न रक्षक है। इन समस्त पदार्थोंके सम्बन्धमें जिसको यथार्थ जानकारी हुई है, ऐसा पुरुष समस्त सकटोंसे दूर हो जाता है। यह समस्त विश्व जब ज्ञात होता है तब यह पता पड़ता है कि ये हैं कितने पदार्थ, क्योंकि पदार्थोंके समूहका ही तो नाम विश्व है। पदार्थ कितने हैं? यह बात तब ज्ञात होती है जब यह ज्ञात हो कि एक-एक पदार्थ कितना हुआ करता है?

एक पदार्थ उतना होता है जितना कि एक परिणमन जितनेमे पूरेमे रहे और उससे बाहर न रहे, उसे एक पदार्थ कहते हैं। यह चौकी है एक खूँट जलता है तो दूसरा खूँट नहीं जलता है। मालूम होता है कि यह एक पदार्थ नहीं है, एक पदार्थका परिणमन हो और उसके कुछ अशोमे हो, यह नहीं हो सकता है। जिस जीवमें सुख होता है तो यह नहीं हो सकता है कि आधे प्रदेशमें सुखका परिणमन हो और आधे प्रदेशमें न हो। एक परिण-

मन जितना पूरेमें होना ही पडे और जिससे वाहर कुछ कभी न हो उसे कहते हैं एकपदार्थ। अब इस युक्तिसे जगत्के सब पदार्थोंको देखो। जीव जीव सब भिन्न-भिन्न एक-एक पदार्थ हैं क्योंकि एक जीवका अनुभव दूसरे जीवमें नहीं होता है और इस जीवमें वह अनुभव समस्त प्रदेशोंमें होता है। एक परिणमन, वही परिणमन सारे प्रदेशमें है। इसलिए जीव स्वय एक-एक पदार्थ है। इन भौतिक पदार्थोंमे एक एक पुद्गल अणु एक-एक पदार्थ है। वह अणुका रूप वदलेगा तो एक अणुमें ही वदलेगा, दूसरे अणुमें नहीं बदल सकता है। इसलिए एक-एक परमाणु एक-एक पुद्गल पदार्थ है।

इस प्रकार अनन्त तो इस लोकमें जीव हैं और उनसे भी अनन्तगुणे इस लोकमें पुद्गल हैं। मुक्त जीव जितने हैं उनसे अनन्तगुणे ससारी जीव हैं और एक-एक संसारी जीवके साथ अनन्त तो शरीरके परमाणु चिपके हैं और अनन्त शरीर परमाणुवोंके पिण्डरूप शरीर के साथ उससे भी अनन्त गुणे तैजस वर्गणाएँ लगी हैं और एक जीवके साथ तैजस वर्गणाके जितने परमाणु लगे हैं उससे भी अनन्तगुणे कार्माणवर्गणाओंके परमाणु लगे हैं और इतना ही नहीं किन्तु इस जीवके साथ ऐसे कर्मोंका विश्रसोपचय लगा हुआ है। जो अनन्त सख्यामे इस जीवके साथ उम्मीदवार रहकर लगे हुए हैं, वे विश्रसोपचय वर्तमानमें कर्मरूप नहीं हैं किन्तु इनके लिए तैयार रहता है कि यह जीव करे तो विभाव, उसी समय यह विश्रसोपचय कर्मरूप वन जाता है।

भैया! इस जीवको कर्मबध करनेके लिए कहीं वाहरसे नहीं टटोलना पड़ता है, कहीं वाहरसे कर्म नहीं लाने पड़ते हैं, किन्तु इस जीवके साथ एक-क्षेत्रावगाहरूपमे अनन्तविश्रसोपचय परमाणु लगे हैं, और जैसे कर्म वननेके उम्मीदवार अनन्तविश्रसोपचयके अणु है, इसी प्रकार शरीररूपी परिणमनके उम्मीदवार अनन्त शरीरके भी विश्रसोपचय लगे हैं। ऐसे एक जीवके साथ अनगिनते परमाणुवोंका पिण्ड लगा हुआ है। वह हाथी हो अथवा चींटी हो अथवा और भी सूक्ष्म निगोदिया जीव हो, प्रत्येक जीवके साथ अनन्तपरमाणु शरीर, परमाणु तैजस और विश्रसोपचय--ये सव लगे हुए हैं। यह जीव पर-उपाधिके वीच फसा हुआ है। और संकट कितने हैं जिनकी हद नहीं है। जब तक कर्म लगे हैं तब तक यह जीव सकटमें है। सुख भी सकट है और दु:ख भी सकट है। बल्कि दु:खमें तो आत्मसावधानी रह सकती है, पर सुखमें भी आत्मसावधानी रख सके ऐसा विरला ही ज्ञानी-पुरुष होता है। इष्टबुद्धिकी परिणति हुई कि वह अपने स्वरूपको भूलकर वाह्यपदार्थोंमें लग जाता है। और अपनेको एक अंधेरे के वातावरणमें

रखता है।

भैया ! जिसे अपने आपका ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञात नहीं होता, वह आनन्द कहांसे पायेगा ? वह सुखकी आकुलता पायेगा या दुःखकी आकुलता पायेगा ? जैसे दुःख भोगना क्षोभमें ही हो सकता है, इसी प्रकार संसारके सुख भोगना भी क्षोभ नहीं हो सकता है।

जो जीव सुख और दुःखको एक समान मान सकता है वह ज्ञानी जीव है। और इतना ही नहीं, सुख दुःख का कारण जो पुण्य और पाप है, कर्मोदय है उसको जो समान माने वह एक विशिष्ट ज्ञानी है और इतना ही नहीं, पुण्य और पापके कारणभूत शुभपरिणाम और अशुभपरिणाम को आत्महितके परिणामके मुकाबलेमें अभिन्न और एक समान माने—ऐसे ज्ञान स्वरूप विरले ही पुरुष होते हैं। जिनकी दृष्टिमें यथार्थ शुद्ध चैतन्यस्वरूप इष्ट होता है वह ही पुरुष ज्ञानी होता है और कर्मोंका क्षय कर सकता है। इस लोकमें कोई भी पदार्थ विश्वासके योग्य नहीं है, आज है, कल न रहे, वे अत्यन्त भिन्न हैं, इन परपदार्थोंसे कोई सिद्धि नहीं होती है—ऐसे जो सबसे निराले अपने चतुष्टयमात्र आत्मतत्त्वका अनुभव करता है, ऐसे ज्ञानी पुरुषमें ही परसे उदासीनताकी सामर्थ्य प्रकट होती है।

सर्व लोक छः द्रव्योंसे भरा हुआ है। जो जीव और पुद्गल है वह क्रियावान् भी है और भाववान् भी है। इसका विभाव कार्य अहेतुक नहीं है किन्तु परद्रव्योंका निमित्त पाकर होता है। धर्मद्रव्य सूक्ष्म है और जीव पुद्गलको हठात् चलाता नहीं है, किन्तु जैसे मछली तालावमें है और वह चले तो उसके चलनेमें जल निमित्त होता है इसी प्रकार यह जीव पुद्गल चले तो उसमें धर्मद्रव्य निमित्त होता है और अधर्मद्रव्य चलते हुए जीव पुद्गलको ठहरानेमें निमित्त होता है। जैसे पथिक चला जा रहा है, सूर्यकी गर्मीसे अत्यन्त दुखी हो रहा है, वह चाहता है कि रास्तेमें कोई छायादार वृक्ष मिले तो मैं उसके नीचे ठहर जाऊँ। मिलता है छाया वृक्ष तो वह उसके नीचे जाकर ठहर जाता है। उस पेडने उस मुसाफिरको नहीं बुलाया था, कोई जबरदस्ती नहीं की थी, फिर भी ठहरनेकी इच्छा वाला पुरुष ठहरना चाहता है तो वहां एक पेड़की छाया निमित्तरूप हो जाती है। इस प्रकार चलता हुआ यह जीव पुद्गल ठहरने के सन्मुख है तो उसके ठहरानेमें अधर्मद्रव्य निमित्तभूत है।

यों जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म—चार द्रव्य हुए किन्तु ये सभी द्रव्य निरन्तर परिणमते रहते हैं। उनके परिणमनका निमित्त है कालद्रव्य, जैसे मोटेरूपमें यह देखते हैं कि समय न गुजरे तो परिणति न हो। जैसे कोई

यहासे दिल्ली जाना चाहता है और यहा ८ घन्टेमें पहुचता है तो आठ घन्टे गुजरना उसके दिल्ली पहुचनेमें कारण हुआ। जो जितने समयमें जैसा परिणमन करता है उसके परिणमनमें वह उतना समय निमित्त होता है। सामान्यतया कालद्रव्य इस जीव और पुद्गलके और सभी द्रव्योंके परिणमन का निमित्तभूत है। ये ५ द्रव्य हुए, ये सब रहते कहां हैं ?

यों ६ द्रव्योंसे भरा हुआ यह समस्त लोक है। ऐसे ६ द्रव्योंसे निष्पन्न यह लोक है। इसका न कोई कर्ता है, न हर्ता है, न रक्षक है। ये ६ द्रव्य व्यवहारसम्यक्त्वके विषयभूत हैं। इसकी श्रद्धा व्यवहारसम्यग्दर्शन है। तो भी शुद्ध आत्माके अनुभवरूप जो वीतराग सम्यक्त्व है, उसका नित्य आनन्द एक स्वभाव वाला है। निजशुद्ध आत्मा ही विषय होता है। जो शुद्ध अनुभूति है उसमें विकल्प न हो और उनका एक निजी पदार्थ स्वय अनुभवमें आता हो, उस स्थितिमें सब विकल्पजाल बुझने लगते हैं। ये सब जगत्के विभिन्न पदार्थ एक सकुचित हो होकर शून्य हो जाते हैं। केवल एक ज्ञानज्योतिका ही अनुभव रहता है, ऐसा उपयोग बने तो यह सर्वोत्कृष्ट कल्याण है। ऐसा उपयोग जिन जीवोंके नहीं बन सकता, उन जीवोंके मायाजाल विकल्पजाल जन्ममरण भ्रमण ये सब चलते रहते हैं।

भैया ! सब कुछ पाया इस जीवने किन्तु अपने आपका यथार्थ सहज शुद्ध ज्ञान ज्योतिमात्र एक प्रकाशरूप अपनेको नहीं अनुभवा तो वह अपने को अनेक प्रकारकी विपत्तियोंमें डाल लेता है। वैभव किसका सदा साथ रहा है ? सम्पदा किसकी सदा साथ रही है ? इस जीवका शरण किसी भी प्रकारसे वैभव नहीं है। इसका शरणमात्र अपना आत्मानुभव ही है। ऐसा यह निज शुद्ध आत्मा ही निश्चय सम्यक्त्व है। अब व्यवहारसम्यक्त्वके विषयभूत इन ६ द्रव्योंमे कुछ चेतन है और कुछ अचेतन हैं, ऐसा विभाग दिखाते हैं।

जीउ सचेयणु दव्वु मुणि पच अचेयण अण्ण।
पोग्गलु धम्माहम्मु णहु कालें सहिया भिण्ण ॥१७॥

इन सब द्रव्योंमे एक जीवद्रव्यको तो सचेतन मानो और ५ द्रव्यों को अचेतन जानों। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये सभी द्रव्य परस्परमें एक दूसरेसे भिन्न हैं। यह विषय चल रहा है सम्यक्त्व का। सम्यक्त्व द्रव्यक यथार्थअवगमसे पैदा होता है, वस्तुत तो अपने आपका जो सहजस्वरूप, परकी उपाधि बिना अपने आप जैसा इसका अस्तित्व है उसरूप अनुभव होना सम्यक्त्व है, किन्तु उस यथार्थ आत्माका अनुभव तब हो सकता है जब आत्माके अतिरिक्त अन्य सब पदार्थोंको उपयोगसे बाहर

कर दे। जिनमें लगाव है उन्हें बाहर करना है। तो बाहर तब किया जा सकता है जब स्वरूपका यथार्थज्ञान हो। मौलिक बात तो यह है कि पर-पदार्थोंके स्वरूपास्तित्वका बोध दृढ़ होना चाहिए। प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से तन्मय है। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका बिगाड़ नहीं कर सकता। सब परिणमते हैं और परिणमते हुए उनको अन्य पदार्थ निमित्त होते हैं। इस ही प्रकार सर्वद्रव्योंकी यही व्यवस्था है।

प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे निरन्तर परिणमते रहते हैं। इसमें किसी दूसरेका कुछ गम्य नहीं है। ऐसी दृढ श्रद्धा जिस भावमें होती है उसे कहते हैं सम्यक्त्व। यह सम्यक्त्व एक ही प्रकारका है। किन्तु स्वामीके भेद से दो प्रकारका हो गया है। यदि कोई सराग जीव है और उसके सम्यग्दर्शन है तो ऐसे जीवको सराग सम्यग्दृष्टि कहते हैं। कोई जीव वीतरागी है या उसके सम्यग्दर्शन है तो उस जीवको वीतराग सम्यग्दृष्टि कहते हैं। राग भी है, सम्यक्त्व भी है तो उसे कहते हैं सराग सम्यक्त्व और राग नहीं है किन्तु सम्यक्त्व है, ऐसा जिसके एक अधिकरण नहीं रहता है उसे वीतराग सम्यक्त्व कहते हैं।

सम्यग्दृष्टिके चार गुण होते हैं—प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पा, आस्तिक। प्रशम उसे कहते हैं कि किसीने बहुत अपराध किया हो या तुरन्त ही अपराध कर रहा हो तो ऐसा अपराध करने वाले पुरुष पर प्रतिकारके बतलानेका भाव न हो उसे कहते हैं प्रशम। सम्वेद क्या है कि धर्ममें अनुराग जगे और देहविषयभोग वैभव धन आदि अथवा ससार सकटोंका भय रहे उस परिणामको कहते हैं सम्वेग। अनुकम्पा क्या है कि दूसरे जीवोंको दुखी देखकर उनमें व्यथित हो जाय और ऐसा अनुभव करने लगे कि मैं ही व्यथित हू, तो उसे कहते हैं अनुकम्पा। आस्तिक क्या है कि यह लोक है, परलोक है, आत्मा है, परमात्मा है और आत्मा सर्व प्रकारकी स्थितिमें रह सकता है, इस प्रकार जो जैसा पदार्थ है उस पदार्थको वैसा कहे सो यह है आस्तिक।

कुछ लोग कहते हैं कि जो वेदकी निन्दा करते हैं वे नास्तिक कहलाते हैं। नास्तिक शब्दमें क्या अर्थ भरा है? न अस्तिक। जो जैसा नहीं है उसे वैसा माने उसे कहते हैं नास्तिक। अथवा जो पदार्थ है उसे न मान सके, उसे कहते हैं नास्तिक। इस नास्तिक शब्दमें यह मर्म नहीं भरा हुआ है कि अमुक चीज न माने अथवा अमुकको निन्दा करे, उसे कहते हैं नास्तिक अथवा वेदका अर्थ है ज्ञान। जो वेदका निन्दक है, ज्ञानका निन्दक है, अपने को ज्ञानस्वरूप नहीं मान सकता है उसे कहा करते हैं नास्तिक। सम्यग्दृष्टि

जीवमें चारगुण सातिशय होते हैं-प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य। सराग, सम्यग्दर्शन व्यवहार है और यह व्यवहार सम्यक् होता है, किन्तु वीतराग सम्यक्त्व निज शुद्ध आत्माकी अनुभूतिरूप होता है। वह वीतराग चारित्र का अविनाभावी होता है और उसका नाम निश्चयसम्यक्त्व है।

इस प्रकार सम्यक्त्वके निश्चयको सुनकर प्रभाकर भट्ट एक प्रश्न कर रहे हैं, आप बराबर यह कह रहे हैं कि निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है। ऐसी रुचि होना सो निश्चय सम्यक्त्व है। यह कई बार कहा गया है और इसमें यह व्याख्यान किया जा रहा है कि वह सम्यक्त्व वीतराग चारित्रका अविनाभावी होता है, तो वीतराग चारित्रका अविनाभावी होना उसे सम्यक्त्व कहते हैं या शुद्ध आत्मतत्वकी रुचिके परिणामको सम्यक्त्व कहते हैं? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर दिया जा रहा है कि अपना शुद्ध आत्मस्वरूप उपादेय है, ऐसी रुचिरूप निश्चय सम्यक्त्व गृहस्थावस्थामें तीर्थंकर, परमदेव, राम, पाण्डव आदि महापुरुषोंमें रहता है। तब उनके वीतराग चारित्र नहीं होता है, ऐसा होना है तथा जब सकल सन्यास करके निर्विकल्प समाधि करते हैं तब वीतराग चारित्रका अविनाभावी निश्चयसम्यक्त्व होता है।

इनका परस्परमें विरोध नहीं है। तो असयमपना कैसे हुआ? उस ही प्रश्नको दुहराया जा रहा है। तुम कह रहे हो कि निश्चयसम्यक्त्व गृहस्थावस्थामें होता है, अविरतसम्यक्त्व नामक चतुर्थ गुणस्थानमें भी होता है और कहते हो कि वीतराग चारित्रका अविनाभावी है। सो वीतराग चारित्र होना चौथे गुणस्थानमें कैसे सम्भव है? उत्तर देते हैं कि इन जीवों के शुद्ध आत्माके उपादेयके अनुभवनरूप निश्चय सम्यक्त्व तो है, पर चारित्रमोहके उदयसे स्थिरता नहीं है, इसलिए असयत कहलाता है। पर निश्चय सम्यक्त्व जगने के साथ अपने स्वरूपकी ओर झुकाव है, इतने अशमें स्वरूपाचरण बोला जाता है। वह चौथे गुणस्थानसे है।

अथवा यों कहो कि सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र तीनों एक साथ उत्पन्न होते हैं, उनकी पूर्ति क्रमश होती है। अर्थात् सम्यक्त्वकी पूर्ति पहिले होती है। सम्यग्ज्ञानपूर्ति बादमें होती है और सम्यक्चारित्रकी पूर्ति अन्तमें होता है। सो वे तीनों ही अपने-अपने किन्हीं अंशोंके साथ अविनाभावी हैं। जो रत्नत्रयरूप परिणमन है वह हमारा हितकारी परिणमन है। रत्नत्रय धर्म आत्मासे कहीं अलग नहीं है। मैं किसरूप परिणमूँ तो मोक्षमार्गी कहलाऊँ और किस रूप परिणमूँ तो ससारी कहलाऊँ यह सब अपने परिणमन पर निर्भर है। इसलिए जैनसिद्धान्तके आदेशोंमें मौलिक पदार्थ स्वरूपका परिचय कर ले तो उद्धार हो जायेगा। प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र है,

अपने आपमें परिणमते रहते हैं। विभाव परिणमनमें कोई परपदार्थ निमित्त होता है—ऐसा स्वतन्त्रपरिणमन करने वाला अनन्तद्रव्योका समूह है। ऐसा ज्ञान होने पर अन्यपदार्थोंके प्रति मोह ममता परिणाम नहीं होता।

यहा इस प्रकरणमें सरागसम्यक्त्व और विरागसम्यक्त्वका विवरण है। सरागसम्यक्त्व को व्यवहारसम्यक्त्व बताया है और वीतराग सम्यक्त्व को निश्चयसम्यक्त्व बताया है। सम्यक्त्व जहा हुआ सो हुआ। सम्यक्त्वके साथ रागपरिणाम और लगा हो आत्मामें तो उसके संबन्धसे सरागसम्यक्त्व कहा जाता है और सम्यक्त्वके साथ यदि राग न लगा हो आत्मामे तो उसे वीतरागसम्यक्त्व कहा जाता है। इस प्रकरणमें वीतराग सम्यक्त्वको तो निश्चयसम्यक्त्व कहा है और सरागसम्यक्त्व को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है क्योंकि निश्चय और व्यवहारका प्रयोग मुकाबलेतन भी हुआ करता है।

जैसे अशुद्धनिश्चयसे जीवमे राग है, जीवमे रागपरिणमन है, जीव का है, इसे अशुद्ध निश्चय कहते हैं किन्तु इससे विशिष्ट शुद्धता की दृष्टि पहुंचनेपर अशुद्धनयको जो बताया है, उसे व्यवहार कह दिया जायेगा। और जिस निश्चयपर आ गया है उससे अधिक मर्मका अंतरंग तत्त्व दृष्ट हो तो व्यवहार कह दिया जाता है। एक इस पद्धतिसे तथा परमात्मप्रकाश प्रायोगिक ग्रन्थ होने के कारण ऐसा ध्यान रखकर कि जिस सम्यक्त्वसे उपयोग अनुभव विशद निर्मल निरंतर नहीं कर सकता, वह सम्यक्त्व व्यवहार है और जहा इसका अनुभव उपयोग निरंतर अभीक्ष्ण किया जा सके वह निश्चयसम्यक्त्व है। यह इस अपेक्षासे वर्णन चल रहा है।

ये भरत आदिक पुरुष शुद्ध आत्मासे च्युत होते हुए निर्दोष परमात्मा अरहत सिद्धका स्तवन आदिक करते हैं। चरित्र पुराण आदिक को सुनते हैं और उनके आराधक पुरुषको आचार्य, उपाध्याय साधुवोंकी विषयकषाय दुर्ध्यान आदिसे हटानेके लिए, संसारी स्थितिको छेद करने के लिए ये श्रावक जन पूजा करते हैं, उपासना सेवा करते हैं। इस कारणसे शुभ राग होने से यह सराग सम्यग्दृष्टी होता है। स्वानुभव का सीधा उपाय है कि मैं ज्ञान-मात्र हूं, ऐसा ज्ञानका अनुभव करें, जो कि ज्ञानका शुद्ध कार्य है याने जानन मात्र, इसमें विशिष्ट तर्कणा नहीं होती। विशिष्ट तर्कणाका कारण है रागकी प्रेरणा। इस अविशिष्ट तर्कणज्ञानके द्वारा जो जाननका स्वरूप है वह ज्ञात हो, यह स्वानुभवका अमोघ उपाय है। इस स्थितिमें जो शान्ति मिलती है वह आनन्द परिणमन है। उस आनन्दका निमित्तमात्र पाकर भव-भवके बंधे हुए कर्म क्षणभरमें ध्वस्त हो जाते हैं।

ज्ञानानुभवका प्रायोगिक उपाय ज्ञानका ही ज्ञान करना है- ऐसा होनेके लिये व्यवहारमें साधना, प्राणायाम अथवा एक लक्ष्य पर अपनी दृष्टि स्थिर रखना आदि किया जाता है, पर उनका प्रयोजन चित्तको जगह जगह न डुलाकर किसी ओर स्थिर रख लेना है, पर यह चित्त कहा स्थिर हो ? यदि निज सहजस्वभावका परिचय नहीं है। जिनके मनमें जिसकी वासना बनी होगी, उनका वहा चित्त स्थिर हो जायेगा, सो वह अस्थिर ही रहेगा। सो इस प्रयोगके यत्न वाले पुरुषको भी मूलभूत निज सहजस्वरूप का ज्ञान परिचय कर लेना चाहिये, ताकि अपने स्वभावमें बैठनेमें साहस जगे। इसके लिये मुख्य प्रयोग है- एकत्व भावनाका चिंतन।

भावनाएँ बारह हैं और उन सभी भावनाओंमें आत्माकी ओर उन्मुखता लानेका यत्न है, फिर भी उन सर्वभावनाओंमें एकत्वभावना भी बडे महत्त्वकी है। एकत्वभावनामें कितने ही पदार्थोमें एकत्व दृष्ट होना है। मोटे रूपमें यह मैं अकेला ही सुख दुःख भोगता हू, अकेले ही जन्मता हू, अकेले ही मरता हू, अकेले ही अपने पर बीतती है। जैसे कि लोकव्यवहारमें सभी सोच सकते हैं- इस प्रकारका एकत्व सोचा गया।

उसके और अन्तरमें चलें तो सुख-दुःख, रागद्वेष आदि परिणमन ज्ञानदृष्टिसे दृष्टिगत करते हुये पाया जा रहा है कि लो संकट तो सबका यह विकार ही है। इस विकारको यह मैं अकेला ही करता हू। जो इस विकारका निमित्तभूत है, वह कर्म भी मानों खडे-खडे देखता है, पर मुझसे भिड़कर कुछ करनेकी सामर्थ्य नहीं रखता है और आश्रयभूत पदार्थोंका तो यहा कुछ भी सबन्ध नहीं है- ऐसा यह मैं केवल इन सब परिणमनोंको करता हू, भोगता हू- ऐसा एकत्व दृष्ट होता है।

जब मैं इनकी असलियत समझ जाता हू, इस स्थितिमें भी यह मैं अकेला ही सावधान बनता हू, अकेला ही यह मैं एक ज्ञानप्रकाशमें आता हू और सर्वविशुद्ध एकत्व तो आत्माका सहजस्वभाव है। मैं सहजस्वभावरूप अपने आपको अनुभवता हू, जो कि एकत्वभावनामें परमार्थ मर्म है। इस एकत्वभावनाका तब ध्यान होता है, जब अपना उपयोग किसी बाहरी पदार्थमें न अटके, न आकुलित हो। यह बात बनती है और जैसा-जैसा अपने आपमें प्रवेश हो जाता है, वैसे ही एकत्वभावकी भावनाजन्य शुद्ध आनन्द प्रकट होता है। अपने आपको अकेला सोच लेनेमें कितने सकट दूर हो जाते हैं।

भैया, किसीने गालियां दीं, निन्दा की तो भी इन ज्ञानी सतोंमें इतना बल होता है कि यह दो एक तो क्या, सारा जहान भी यदि कुछ

विरोध करना चाहे तो उसका कोई कुछ नहीं कर सकता है। वह अपना एकत्व परिणमन करता है और अपने आपमें ही परिणम कर समाप्त हो जाता है। एकत्वभावनाके अतिशयोंको देखिये। बडे-बडे अपराध हो जाने पर परमार्थ प्रतिक्रमण तब होता है, दोषोंका शुद्ध निराकरण तब होता है, जब निरपराध सहजस्वभाव अपनेको दृष्ट होता है। इसका अवलोकन करने वालेके 'मिच्छा मे दुक्कड होज्ज' पद ही हैं।

मेरे पाप मिथ्या हो जाएँ, भला बताओ कि क्या ऐसा कह देनेसे पाप मिथ्या हो जायेंगे। जैसे किसीको कुछ कह दिया और अपना ही कान पकड़कर कहता है कि भैया मेरी बात मुझे लौटा दो, वापिस दे दो। यदि मर्म भेदी शब्द कहे गये हैं तो आपके कहने से भी बात लौट नहीं आती है। जब जो परिणमन हुआ, सो हुआ। क्षमा भी हो जाये, मित्रता भी हो जाये, तो यह एक नया परिणमन हुआ है। गुजरी हुई बात उल्टी आ सके– ऐसा नहीं होता है। तो मेरे पाप मिथ्या हों, इस प्रकारके शब्द कह देनेसे पाप मिथ्या नहीं हो जाते, नष्ट नहीं हो जाते, किन्तु निष्पाप केवल ज्ञानस्वरूप सहजस्वभावको जब लखा जाता है, तब ज्ञानमात्र मैं हूं– इस दृष्टिसे यहां एक अनुपम आशयसे यों तका जा रहा है कि यहां तो कोई पाप ही नहीं है। यह पापरहित है– ऐसी स्वभावदृष्टि बने, तब की यह चर्चा है। कथनमात्रसे बात उल्टी नहीं हो जाती है। इस दृष्टिमें ऐसा बल प्रकट होता है और एक अनुपम आनन्द अनुभूत होता है कि इस स्थितिके प्रतापसे वे पाप मिथ्या हो जाते हैं, संक्रान्त हो जाते हैं। उनका स्थिति-अनुभाग घट जाता है। यह सब प्रताप इस शुद्ध एकत्वस्वरूपके आलम्बनका है।

भैया, अल्पकालकी शांति तो किन्हीं भी उपायोंसे प्राप्त की जा सकती है किन्तु शाश्वत सत्य परमार्थ शान्ति की प्राप्ति शुद्ध ज्ञानमात्र अपने आपके अनुभवसे प्राप्त होती है। एकत्वभावनाका सर्वत्र स्थान है और अपने जीवनको ज्ञान और वैराग्यमें सुवासित करनेके लिये इन बारह भावनाओंका यथार्थचिन्तन बहुत बडा कार्यकारी है। जैसे अनित्यभावना का विचार ज्ञानीने किया कि यह सब दृश्यमान जगत् अनित्य है। सब जान रहे हैं कि विनाशीक है। लो यह नष्ट हो गया, वह नष्ट हो गया, ये नष्ट होते चले जा रहे हैं। यहां तो एक यह ही देखा जा रहा है, सो ठीक है किन्तु अपने लिये अपना नित्य भी कुछ है– ऐसा दृष्टिमें आये बिना अनित्य भावनाका प्रयोजन फलीभूत नहीं होता है। सबको अनित्य समझ-समझ कर अब हम क्या करें, यह मार्ग तो कुछ नहीं मिलता है। सब पदार्थ पर्याय

से अनित्य हैं, किन्तु द्रव्यदृष्टिसे वे सब ध्रुव हैं। यह मैं आत्मा भी अपने स्वरूपमें ध्रुव हूं—ऐसा निज नित्यका ज्ञान अन्तरमें बसा हो तो यह अनित्य भावना काम करती है।

अनित्य भावनाका काम क्या है कि नित्यकी ओर मोड़ दे। अनित्य अनित्यमें फस रहा था, विचर रहा था, उनके ही संस्कारमें बस रहा था, सो उन अनित्योंसे हटकर अपने नित्यमें आना यह अनित्यभावन का प्रयोजन है। ज्ञानी संत आचार्यदेवके उपदेश का कुछ इतना ही अनित्यभावनाका मर्म न था कि लोगोंको दिखाते रहें कि सब अनित्य हैं। उनका प्रयोजन निज नित्यतत्त्वमें निवास करानेका है। सो अनित्यसे हटकर नित्यमें अपने आपको पहुचाया जाये तो हमारी अनित्यभावना कार्यकारिणी होगी। ये बारह भावनाएँ सीधे इस जीवको हितका मार्ग दिखाने वाली हैं और गिरते हुए साहस को बढ़ाने वाली हैं।

अशरण भावनामें तका जा रहा है कि सब कुछ मेरा शरण नहीं है। यों तो घरमें कोई दुःखी पुरुष भी झल्लाता है और कहता है कि तुम कोई मेरे शरण नहीं हो, मा, पिता, पुत्र, स्त्री, मित्र कोई मेरे शरण नहीं। पर इतना देखने मात्रसे ध्येयकी पूर्ति तो नहीं होती। शांति और आनन्दका अनुभव हो जाये, सो नहीं होता। जान गए कौन है? सब पराये हैं, सब स्वार्थी हैं, तकते जावो, क्या होता है ऐसे अवलोकनसे और अपने आपको भ्रमा दिया। पर यह भावना उसकी कार्यकारी होती हैं, जिसको निज शरण का परिचय है, जो उसकी ओर झुकना है। अशरणभावनाका प्रयोजन परमार्थ शरणमें ले जाना है। यह सब कुछ कोई मेरा शरण नहीं है क्योंकि परद्रव्य हैं, इनका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मुझमें नहीं आता है। इनका असर भी मुझमें नहीं आता है।

भैया! किसी द्रव्य का प्रभाव किसी दूसरे द्रव्यपर नहीं पड़ता, क्यों कि वह प्रभावनामक चीज क्या है? द्रव्य तो है नहीं, गुण भी नहीं है क्योंकि गुण अविनाशी होता है। पर्यायका नाम प्रभाव है। प्रभाव कुछ परिणमन है। सो यह प्रभाव परिणमने वालेका है या अन्य निमित्त का है। निमित्तका प्रभाव निमित्तमें ही रहा करता है, सम्बन्ध हुआ करता है। उपादानका प्रभाव उपादानमें हुआ करता है। प्रत्येक वस्तुका परिणमन अपने आधारभूत द्रव्यमें होकर वहा ही समाप्त हो जाया करता है। अतः किसी द्रव्यका किसी दूसरे द्रव्यपर प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु उस योग्यता वाला द्रव्य परका निमित्तमात्र पाकर अपने इस प्रभावसे युक्त हो जाता है, परिणत हो जाता है। इस ही मर्मको शीघ्र प्रकट करने के लिए इस भाषामें बोला

जाता है कि अमुक द्रव्य का प्रभाव अमुक पर पड़ा है।

कोई देहाती पुरुष किसी बड़े आफीसर मनुष्यके समक्ष पहुंचा, तो वह घबड़ाने लगा, भयभीत हुआ। तो उस देहाती पुरुषमें जो यह घबड़ाहट उत्पन्न हुई है— ऐसा जो प्रभाव उस पर पड़ा है, वह प्रभाव उस आफीसर का नहीं है; किन्तु वह पढ़ा लिखा न था, इस बातका अनुभव उसे न था, उसे स्वयं अपने आपमें इतनी हिम्मत न थी। सो उसने स्वयं उसे देखकर अपने में विकल्प बनाकर जैसा किसी बड़ेके प्रति सोचा जा सकता है, विकल्प बनाकर स्वयं अपने आपमें इस प्रकारका प्रभाव उसने उत्पन्न कर लिया।

जब समस्त पदार्थोंका परस्परमें अत्यन्ताभाव है तो कोई परद्रव्य मेरे लिये कैसे शरण हो सकता है? कोई शरण नहीं है। इस अशरण भावना मानने वाले के अन्तरमें अपनी शरणका पता है, तो स्वयंके शरण माने गये पदार्थोंसे हटकर वह परमार्थ शरणमें पहुंचता है।

भैया, गिरते हुये चारित्रको रोकनेमें समर्थ ज्ञानबल ही है और उस ज्ञानबलमें सीधा, सुगम, साफ तो ज्ञान यह है कि सहज ज्ञानमात्र याने जाननका जो स्वरूप है, जो सामान्यतया कार्य है, उसे दृष्टिमें रखते हुये यह मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूं— ऐसा अनुभव करें। मैं परिवार वाला हूं, मैं अमुक पोजीशन वाला हूं, मैं इतने बाल-बच्चों वाला हूं— इस दृष्टिमें तो आकुलता भरी हुई है, क्योंकि आश्रय परपदार्थ मिल गया; किन्तु जहां यह स्व ही हितैषी है, हितनियता है, हितज्ञाता है तो वहां आकुलता नहीं होती है; किन्तु एक विशिष्ट आनन्द जगता है। जिस आनन्दमें यह सामर्थ्य है कि भव-भवके बांधे हुये कर्म भी छूट सकते हैं— ऐसा तत्त्व जिस मूलसे प्रकट होता है, उस मूलको कहते हैं— सम्यक्त्व। कैसा भी उपद्रव आवे, जिसमें कि जगतके जीव अपना पथ छोड़कर अन्य पथों में भी चलित हो सकें— ऐसी प्रतिकूल परिस्थितिमें भी सम्यग्दृष्टि जीव निःशंक और निर्भय रहता है; क्योंकि उसने अपने आपका स्वरूप विभक्त ज्ञानमात्र अनुभूत कर लिया।

ऐसा जीव गृहस्थावस्थामें बीच भी यदि वर्तता रहता है, तो उसे इस रागके संबन्धमें सराग सम्यक्त्व कहा है। यह जीव सराग सम्यग्दृष्टि होता है और जो उसके सम्यक्त्वकी निश्चयसम्यक्त्व संज्ञा है वह वीतराग चारित्रके अविनाभावी निश्चय सम्यक्त्वका परमार्थसे साधक होनेसे ही है। वस्तुतः तो उसके सराग सम्यक्त्व ही है, व्यवहार सम्यक्त्व ही है।

जैसे अरहदास सेठकी कथामें अष्टाहिकाके दिनों में जब सेठने अपनी कथा सभी सेठानियों को सुनाई तो सब सेठानियोंने कहा ठीक, किन्तु छोटी सेठानीने कहा सब झूठ। सब रानियोंकी और राजाकी कथाएँ हो चुकीं, सबने कहा सही, पर छोटी सेठानीने कहा सब झूठ। ये सब बातें राजा घरके पीछे खड़ा-खड़ा सुन रहा था। जब दिन हुआ, दरबारका समय हुआ तो छोटी सेठानीको बड़े आदरसे पालकी सजाकर बुलाया और पूछा कि आपने यह कैसे कहा था रात्रिमें कि सेठ और सेठानी की ये सम्यक्त्वविषयक सब कथाएँ झूठ हैं। वहां सेठानीका चित्त भर आया और कुछ वैराग्यकी वासना विशेष जगी तो वहा से ही सब कुछ गहने आदिक वस्त्रोंको उतार कर केवल साड़ी मात्र पहिने हुए वहासे चल दी, यह कहते हुए कि सत्य तो यह है।

सो साधुजनोंकी अन्तरकी समीचीनता निरखने पर वीतराग चारित्र के अविनाभावी इस सम्यक्त्वके परिणमनको जानकर कहा जा रहा है कि निश्चय सम्यक्त्व तो उन निर्विकल्प समाधिमें स्थित पुरुषोंके होता है। अब इसके बाद जीवादिक ६ द्रव्योंके क्रमसे लक्षण कहे जावेंगे। उसमें यहा आत्माका लक्षण कहा जाता है।

मुत्ति-विहूणउ णाणमउ परमाणंद-सहाउ।

णियमिं जोइय अप्पु मुणि णिच्चु णिरंजणु भाउ ॥१८॥

हे योगी! निश्चय करके तू आत्माको ऐसा जान। कैसा कि मूर्ति विहीन है, रूप रस गंध स्पर्शमयतासे रहित है, ज्ञानमय है, परमआनन्द स्वभाववाला है, नित्य है, निरंजन है—ऐसे इन भावों स्वरूप जीवको तू आत्मा जान।

पदार्थोंके देखनेकी चार पद्धतिया होती हैं। द्रव्यदृष्टिसे देखना, क्षेत्रदृष्टिसे देखना, कालदृष्टिसे देखना और भाव दृष्टिसे देखना। यहा द्रव्यके मायने हैं, पिण्ड, समुदाय या गुण पर्याय वाला। इस समुदाय या पिण्डरूप में एक पुद्गल स्पष्ट दिखा करता है। देखो ना यह पुस्तक है, यह चौकी है, यह घड़ी है, हाथमें लेकर दूसरेको बता सकते हैं। अत द्रव्यदृष्टिसे पुद्गल का परिचय विशद होता है और क्षेत्रदृष्टिसे आकाशका परिचय विशद है। किसी भी पदार्थके निज प्रदेशका भी वर्णन करें तो चूँ कि प्रदेश कहो या क्षेत्र कहो एक ही बात है। दोनोंका क्षेत्र आत्मामें है, आकाशका क्षेत्र आत्मामें है, पर उन सब द्रव्योंमें क्षेत्रका जब बोध करनेमें उतरते हैं तो आकाशमें स्थित हैं, अवगाहित है—ऐसी दृष्टि उसकी हो जाती है। क्षेत्रदृष्टि से कैसा सुगम समझमें आता है। कालदृष्टिसे काल समझमें आता है

अथवा पर्यायदृष्टिसे यह आत्मा समझमें नहीं आता है, किन्तु भावदृष्टिसे यह आत्मा ज्ञात होता है। जो ज्ञान और आनन्द भाव हैं वही तो आत्मा है।

भैया! इस जीवने अपने को किस-किस रूप नहीं माना? गधा सूकर हुआ, उस रूप अपनेको माना ही तो था, वैसा ही आचरण किया था, कीड़ा मकौड़ा हुआ तो उस रूप अपने को माना ही तो था। आज मनुष्य हुए हैं तो प्रायः यह मनुष्य अपनेको किन-किन रूपोंसे मानता है। मैं वैश्य हूं, मैं क्षत्रिय हूं, मैं अमुक कुलका हूं, अमुक जातिका हूं। कितना अभिमान है? कितना पर्यायमें अहंकार है? कोई अपनेको छोटे कुलका नहीं समझ सकता। छोटी श्रेणीका नहीं समझ सकता। जो जिस जातिमें उत्पन्न हुआ वह उस जातिकी प्रशंसा करनेमें लग रहा है। कैसा वासित हृदय है इन बाह्यनरत्नोंका कि अनादि अनन्त ध्रुव ज्ञायक स्वभावमय निज प्रभुकी प्रभुताको छू नहीं सकते--ऐसा दृष्टिविष लगा हुआ है।

हम अपने को कैसा मानें कि झंझटोंसे छूट सकें उसका सीधा उपाय है कि जहां अपना आत्मा यह स्वीकार करले कि लो यह मैं तो यों ज्ञानमात्र हूं, शरीर भी चिपका है यह भी उपयोगमें न रहे, कहां बैठे हैं यह भी उपयोगमें न रहे, हमको अब इसके बाद क्या काम करना है, इसका भी उपयोग न रहे, केवल ज्ञानमात्र अपने आपको जाने, देखे तो ऐसा जानना समझना स्वानुभूतिका सीधा सुगम उपाय है। यह स्वाधीन काम है, जानन ही तो है। ऐसा अपने स्वरूपका ज्ञान ही हमारी शान्तिका कारण है और शेष सब धर्मके कार्य इस अपने आपके स्वरूपके जाननेके लिए ही किए जाते हैं। ऐसा अपने आपके आत्माका ज्ञान एक बड़े महत्त्व को रखता है।

यहां जीव आदिक ६ द्रव्योंसे आत्माका लक्षण कहा जा रहा है। यह सर्व विश्व अनन्तपदार्थोंका समूह है। उन अनन्तपदार्थोंमें जो ऐसे गुण पाये जाते हैं कि जो किसी वर्गमें हों और अन्यमें न हों ऐसे लक्षणके द्वारा ६ प्रकारकी जातियां पहिचानी जाती हैं, और उस दृष्टिमें, सिद्धान्तमें द्रव्य की संख्या ६ कही गई है। वास्तवमें द्रव्योंकी संख्या ६ नहीं है, किन्तु जातियां ६ हैं। उनमें से प्रथम जीवद्रव्यको यहां बताया है।

यह आत्मा मूर्तिकतासे रहित है। मूर्तिकता उसे कहते हैं जो रूप, रस, गंध, स्पर्शमय हो। जिसमें रूप हो, रस हो, गंध हो, स्पर्श हो उसे मूर्तिक कहते हैं। यह मूर्तिकता आत्मद्रव्यमें नहीं पाई जाती है। मूर्तिक तो पुद्गलद्रव्य है। मूर्तिकता शुद्धआत्मतत्त्वसे विलक्षण तत्त्व है, उस मूर्ति से यह आत्मा रहित है। यह अपने आत्माकी बात चल रही है कि यह मेरा

आत्मा कैसा है ? संसारमें सबसे अधिक प्रिय निज आत्मा है।

देखो भैया, जन्मसे लेकर बड़ी-बड़ी अवस्था तक अवस्थाके अनुसार बाहरमें कुछ-कुछ प्रिय बनता चला जाता है। जब छोटा बच्चा होता है तो उसे माकी गोद सबसे अधिक प्रिय चीज है। उसे माकी गोदसे बढ़कर और कुछ प्रिय नहीं है। उसे कोई भय दिखाये तो माकी गोद ही उसकी शरण है। चिपक जाता है गोदसे। किसी प्रकारका उसे कोई संकट हो तो उसे मांकी गोद ही प्रिय है। जब वह कुछ बड़ा होता है, ४-५ वर्षका हो जाता है, तो उसे खेल-खिलौने प्रिय हो जाते हैं। उसे अब माकी गोद प्रिय नहीं रहती है। अब उसे खेल खिलौने प्रिय होते हैं। मा अपनी गोदमें जबरदस्ती बच्चेको बुलाती है, बैठालती है, तो बच्चा रोता है और कहता है कि मुझे छोड़ो, अमुक खेल खेलना है। कुछ और बड़ा होता है, १०-१२ वर्षका होता है, तो उसे पढ़ना प्रिय हो जाता है। अच्छे नम्बर आने चाहियें, बढ़िया रिजल्ट निकलना उसे प्रिय हो जाता है। देखो जीवनमें एक भी चीज प्रिय बनकर नहीं रह पाती। और बड़ा हुआ तो उसे विद्या भी प्रिय नहीं लगती, उसे तो डिग्री प्रिय लगती है। विद्या और डिग्रीमें अन्तर है। जब २०,२२ वर्षका हुआ तो विद्या प्रिय नहीं लगती, मुझे तो डिग्री मिल जानी चाहिये। उसे डिग्री प्रिय हो जाती है। देखो जन्मसे लेकर अब तक कोई एक चीज प्रिय नहीं रही। सर्वप्रथम माकी गोद प्रिय थी, फिर खेल-खिलौने प्रिय हो गये, तत्पश्चात् विद्या पढ़ना प्रिय हो गया और अब वह विद्यासे भी प्यार नहीं करता, उसे डिग्री प्रिय हो गई।

अब २५ वर्षका हो गया। डिग्री भी २-१ मिल गईं, उनका कई वर्ष सुख भोग लिया, लोगोंने कुछ स्वागत किया, कुछ लोग पासमें बैठने आये। हा, साहब हो गये ग्रेजुएट। अब उसे स्त्रीकी धुन लगी। अब उसे सबसे अधिक प्रिय स्त्री है, लेकिन स्त्री प्रिय होने पर द्रव्य बिना तो कुछ काम नहीं चलता और आवश्यकता भी है। स्त्री वाले होकर जनसमुदायमें अपने को विशेष धनवान् कहलाने में एक पोजीशन मान लेते हैं। तो लो अब स्त्री से भी हटकर उसे धन प्रिय हो गया। यह जीव किसी एक बात पर अड़कर ही नहीं रहता है कि हमको तो यह प्रिय है और प्रिय ही एकान्ततः कुछ नही है। कुछ समय गुजरता है तो नई चीज प्रिय हो जाती है और पहिले वालीको छोड़ देता है। अब अच्छी सर्विस भी लग गई। धन भी अच्छा हो गया। अब इसके बाद बहुत दिन तक यदि संतान पैदा नहीं हुई तो धन भी उसे अप्रिय लग रहा है, स्त्री भी अप्रिय है, सब कुछ अप्रिय है। अब उसे बच्चे प्रिय हो गये। लो चलो दो या तीन बच्चे हो गये। उम्र हो गई ४०

४५ वर्षकी। काम अच्छा चल रहा है, नौकरी भी खूब बढिया कर रहे हैं।

वे ही बाबू साहब आफिसमें बैठे हैं। टेलीफोन आया, सुनते ही विह्वलता हो गई। क्या घटना हो गई ? अभी मालूम हो जायेगा। घबडा कर आफिस से चला। जिन सज्जनोंसे मिले विना न जाता था, आज वे भी अप्रिय हो गए। ५ मिनट बैठता था जहां, वहां २ सेकेण्ड भी खड़ा न हुआ, घवडाता हुआ चला जा रहा है। घर पहुचा। वहां देखा ओह घर आगसे जल रहा है। फोन यही पहुचा था कि घरमें आग लग गई है। तुरन्त ही धन निकाला अब धनको छोड़ो, बच्चोंको सबको निकाला, बहुत कुछ तो निकाल लिया पर एक बच्चा रह गया मकानके अन्दर। आग इतनेमें बहुत बढ चुकी थी। अब घुसने की हिम्मत नहीं रही। बच्चेका मकान के अन्दर रह जाना बड़ा दु खदायी था। तो पासमे खड़े हुए किसी हृष्टपुष्ट मनुष्यसे या सिपाहीसे कहता है कि अरे भैया मेरे बच्चेको निकाल दो, हम तुम्हें दस हजार देंगे। देखो अब इतनी उम्र तक क्या क्या प्रिय चीजें छोड़कर कौनसी चीज प्रिय हो गई थी। दो सालका बच्चा था तो मा की गोद प्रिय थी। ४-६ वर्षका हुआ तो खेल खिलौने प्रिय हो गए थे। १०-१२ वर्षका हुआ तो विद्या प्रिय हो गई। २०-२२ वर्षका हुआ तो डिग्री प्रिय हो गई। वे सब खत्म होकर जब २५ वर्षका हो गया तो स्त्री प्रिय हो गई। जब ३०-३५ वर्षका हुआ तो धन प्रिय हो गया। इसके बाद धन भी हटा। अब धनसे अधिक बच्चे प्रिय हो गए। अब उसे अपना बच्चा भी प्यारा नहीं रहा, किन्तु उसे अब अपनी जान प्यारी हो गई। नहीं तो जल्दी आगमें घुस जाये और बच्चे को निकाल ले। तो अब उसे अपनी जान प्रिय हो गई।

इसका रग देखो, जब से यह मनुष्य पैदा हुआ तबसे यह किन-किन से प्यार करता आया है और छोड़ता आया है ? किसी एक जगह पर नहीं टिक सका। लो कुछ दिनों बाद सच्चा ज्ञान जग जाये, वैराग्य हो जाये और भवितव्य उत्तम हो, अपने ज्ञानका भी परिचय हो जाये तो इस साधुतामें अब उसे ज्ञान प्रिय हो गया। जान भी प्रिय नहीं रही। देखिये ना, तभी तो सुकौशल, सुकुमाल, गजकुमार इत्यादि कितने ही महापुरुषोंने मुनिराजने उपसर्ग सहन कर लिया। गजकुमार पर जब उनके स्वसुर ने सर पर सिगड़ी जलाई थी तो गजकुमारमें क्या इतनी हिम्मत न थी कि स्वसुरके २ मुक्के लगाते और फिर आनन्दसे पालथी मारकर अपना ध्यान करते। पर इतना विकल्प करना भी उस ज्ञानी योगी सतको पसंद न था। वर्तमानमें निर्विकल्प स्थितिके लिए विकल्प करके कोई भविष्यमें निर्विकल्पताकी आशा बनाये तो सफलताके चिन्ह नहीं हैं।

जैसे कोई गृहस्थ सोचता है कि मैं २० हजारकी स्थिति बना लूँ फिर तो और नहीं तो १०० रु० मासिक तो व्याज मिलेगा ही। इतना धन होने पर फिर परवाह नहीं है। फिर सब छोडकर सत्संगमें ही रहा करूँगा। अच्छा जिनकी इतनी स्थिति है वे सोचते हैं इतना तो क्या ५० हजार अपने पल्ले कर लिए जायें और दो सौ, ढाई सौ रुपया व्याज हो तो सब काम चल जायेगा। फिर आनन्दसे सत्सगका और धर्मका लाभ लेंगे। ऐसी स्थिति पानेके लिए जो ऐसे विकल्प बसाये चले जा रहे हैं। यह इस बातका अनुमान कराता है कि आगे वे यह स्थिति न पा सकेंगे।

यदि इनके आत्महित की तीव्र रुचि है तो वर्तमानमें जो स्थिति है उस स्थितिमें ही अपने विभाग बनाकर जितनेमें अपने गुजारेका काम निकल सकता हो उससे गुजारा करे। इससे भावी प्रगति भी है। इससे विषयोंमें मोह न होगा। यों अब ज्ञानी सत होने पर उसे जान भी प्रिय नहीं रही, किन्तु ज्ञान प्रिय रहा। तब सबसे प्रिय चीज क्या हुई? ज्ञान। ज्ञान कहो या स्वात्मा कहो एक ही बात है किन्तु आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। इसी विशेषणको यहा कह रहे हैं कि यह आत्मा ज्ञानमय है। इसका ज्ञानस्वरूप है। इसमें क्रमका और इन्द्रियोंका कोई व्यवधान नहीं है। अपने स्वरूपको क्रमसे जाननेमें अथवा केवलको जाननेमें कोई कलक नहीं है। स्वरूप मेरा वही है जो प्रभु अरहत देवका है। लोक और अलोकमें प्रकाश करने वाला केवल ज्ञानसे रचा हुआ होने से यह आत्मा ज्ञानमय है।

भैया! बतावो, सबसे प्यारी चीज क्या हुई? अधिक प्रिय चीजका यह लक्षण है कि औरोंको मना करके जिसको चाहा जाये उसको ही समझना चाहिये कि यह सबसे अधिक प्रिय है। देखो इस मनुष्यने मा की गोदको भी मना कर दिया, खेल खिलौनों को भी मना कर दिया, विद्याको भी मना कर दिया, डिग्रियोंको भी मना कर दिया। स्त्रीसे प्यार हटा, धनसे प्यार हटा, बच्चोंसे प्यार हटा, अपनी जानसे भी प्यार हटा और अतमें प्यार कहा थमा? ज्ञानमें, निज आत्मामें। इससे यह जानना चाहिए कि संसारमें सबसे अधिक प्रिय है तो एक निज आत्मा है। धनके लिए धन कोई नहीं चाहता। आत्माके लिए धन चाहता है अर्थात् आत्मसतोषके लिए आत्मानन्दके लिए धन चाहता है। पुत्रके लिए पुत्र कोई नहीं चाहता किन्तु आत्माके लिए पुत्र चाहता है। अर्थात् जिस स्थितिमें अपना सुख और हित मान रखा है उस स्थितिके लिए पुत्रको चाहता है। सर्वाधिक प्रिय है तो वह ज्ञान ही है। सो यह ज्ञान आत्माका स्वरूप ही है।

यहां अपनी चर्चा चल रही है कि मैं कौन हू? अपने आपके घरका

पता न होने पर यह पर-घर फिरता रहा किन्तु इसे कोई सहारा न मिला। सो भैया! निर्भय और निःशंक होकर अपने घरमे ही रहो। ये समस्त परपदार्थ हैं, इनमे उपयोगका जाना पर-घरमें फिरना है। पर-घरमें फिरते हुए अनन्तकाल व्यतीत हो गया, निजघरमे यह नहीं आया। परपदार्थोंकी व्यवस्थामें इस जीवने अपना जीवन लगा दिया, पर निजकी व्यवस्था के लिए क्या किया?

एक बाबू साहब थे। वे व्यवस्थाप्रिय थे। वे एक दिन अपना कमरा सजानेमें लग गए। बड़ा कमरा था। सजाना इसीको कहते हैं कि सफाई रखना, कमसे कम वस्तुवे रखना और यथास्थान रखना। तो बाबू जी व्यवस्था कर रहे थे। जिस स्थान पर जो चीज रख रहे थे उस स्थानपर नाम भी लिखते जाते थे। बढ़िया भींत पर हुक लगा दिया, हुक पर कोट टांग दिया और उस पर लिख दिया कोट, दूस हुक पर कमीज टांग दिया और उस पर लिख दिया कमीज। एक जगह कुर्ता टांग दिया, वहा लिख दिया कुर्ता। इसी प्रकार टोपीकी जगह टोपी लिख दिया, घड़ी की जगह घड़ी लिख दिया। अब उनके लिखनेकी धुन बन गई। चीजोंको रखता जाय और लिखता जाये। लिखते-लिखते नींद आ गई। पलग पर लेट गया और लेटे ही लेटे पाटी पर लिख दिया मैं, याने यहां मैं धरा हूं। वहां कोट, वहां कमीज, वहा कुर्ता, ठीक। यहा मैं धरा हू। ऐसी व्यवस्था करते-करते नींद आ गई। सो गए।

जब सुबह ६ बजे जगा तो देखने लगा कि हमारी रक्खी हुई चीजें ठीक-ठीक रखी हैं या नहीं। कोटकी जगह कोट, ठीक। कमीज की जगह कमीज, ठीक। घड़ीकी जगह घडी, ठीक। सब चीजें देखता जाये, ठीक। पर पाटी पर लिखा हुआ देखा "मैं" उसे खोजने लगा। "मैं" न मिला तो छेदों में देखने लगा कि कहीं "मैं" अटक तो न गया हो। वहां न मिला तो पलगमे एक लाठी लेकर मारा पर "मै" कहीं फंसा हो तो गिरे। जब किसी तरह 'मैं' न मिला तो विह्वल होकर अपने नौकरको बुलाने लगा। अरे मनुवा यहा आ। आ गया, क्या है बाबू जी? मेरा 'मैं' गुम गया। अब नौकर सोचता है कि ऐसा तो अटपट कभी बाबूजी न बोला करते थे, आज यह हालत है कि इनका 'मैं' गुम हो गया। बोला, अरे बाबूजी आपका 'मैं' गुम हो गया तो मिल जायेगा आप क्यो परेशान होते हैं? आप थके हुए हैं, लेटो, आराम करो, चिंता न करो। आपका मैं मिल जायेगा। नौकर पुराना था, उसे विश्वास आ गया नौकर की बात पर सो वह थका था ही, लेट गया। १०-१५ मिनट बाद नौकर कहता है कि देखो अब है 'मै' कि नहीं?

पलंग पर ही 'मैं' लिखा था, सो उस पलग पर हाथ फेरा तो उसका 'मैं' मिल गया।

तो भाई बाहरकी व्यवस्था कर ली जाये और अपने अन्तरकी सारी व्यवस्था का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खे, तो उससे पूरा किस प्रकार पडेगा ?

अभी एक चर्चा हुई थी कि दार्शनिकताके नाते बडी-बडी बातें बोली जाती हैं, लिखी जाती हैं। क्या यह एक धुन ही है या वस्तुत: कोई सारभूत तत्त्व भी है ? कोई आत्मा ज्ञानमय हो और उसके निरखनेसे आनन्द मिलता हो- ऐसा भी कुछ है क्या ? है। वह चीज जो कुछ है, ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानी अपने ज्ञानस्वरूपको ही देखनेमे लगाता है। अज्ञानस्वरूपके जाननेमें तो इसे कुछ हाथ न लगेगा। विकल्प रहेगा, निराशा रहेगी, असतोप होगा, अशाति रहेगी, किन्तु यह ज्ञान जब ज्ञानस्वरूपको निहारे, तब स्वय अनुभावात्मक निर्णय हो जाता है। जब हम बहुतसी बातोंका विचार और ध्यान बनाये रहते हैं, तो ज्ञानका जो स्वरूप है, क्या हम उसका विचार ध्यान नहीं बना सकते ?

क्या कहलाता है जानन ? केवल जानन क्या है ? रागद्वेष नहीं, केवल अर्थग्रहण। ओह, रागद्वेषकी तरगोंसे निकलकर केवल जाननस्वरूप को तकनेके लिये घुसते हैं तो वहां ऐसा लगता है कि लो मैं स्वय बुझा जा रहा हू। यह जानने वाला मैं ही बुझा जा रहा हू। ओह, कोई प्राणोंका व्यामोह ही तो है। आशकासे कहीं मैं ही न समाप्त हो जाऊँ। लौट आता है और कोई सत्यके रुचिया जन अगर वहा बुझते हैं तो बुझने दो, हमें एक जानना है। मैं मात्र जाननके स्वरूपमे प्रवेश करता हू, मैं केवल जाननस्वरूप हू। रागद्वेप, इष्ट-अनिष्ट, संकल्प-विकल्पोंसे रहित इनका एकमात्र जाननहार हू, अभेदज्योतिमात्र हू। उसमें कुछ पते वाली, कुछ मालोमाल वाली बात नहीं होती है, वहा तो एकमात्र जाननस्वरूपका अनुभव अथवा परिणमन चलता है।

यह ज्ञान अपनेसे बाहरकी चीजोंको जाननेका उद्यम न करके केवल स्वयके जाननस्वरूपके जाननेका उद्यम करे तो इसे वह सारभूत परमार्थ शरण उपयोगगत होना है, किन्तु जैसे नमककी डली पर रहने वाली चींटी को जबरदस्ती शक्कर वाली चींटी अपने शक्करके घरमें ले जाये और वह नमक वाली चींटी अपनी चोचमें नमककी डली दबाकर चले तो शक्करकी जगह बसकर भी उसे रच भी शक्करका स्वाद नहीं आ सकता है। कितना ही पूछें, वह तो स्वाद नमकका ही कहेगी। यदि हिम्मत करके उस डलीको

अलग फेंकें, शक्करका स्वाद ले तो उसे मिठासका अनुभव होगा। यों ही विषयकषायों के रुचिया जन मन्दिर में जाये और विषयकषाय की डली को अपने उपयोग में बसाकर आयेंगे तो धर्म के स्वादका तो लाभ मिलेगा ही नहीं।

मोही जीवोंको ऐसा श्रद्धान् है कि पूजासे मेरा थोडे ही पूरा पडेगा। उनका विश्वास है कि मेरे लिये जिन्होंने धनार्जन किया, उनसे ही तो पूरा पड़ेगा। सो संस्कार ऐसा बस हुआ है, वासना ऐसी पड़ी हुई है कि धर्मके क्षेत्रमें आकर भी गृह और धनकी वासनाको छोड़कर धर्म करनेका साहस न करेंगे तो अब बतलाओ कि वह धर्मकी झलक ज्ञानानुभवमें प्रकट कैसे विराजेगी ? कुछ धर्मकी बात भी हम कहें सुनें, उसकी भी कुछ उत्सुकता रहे और यहांके विषयकषायोंकी डोरको काटना भी न चाहें और दोनों हाथ मुझे लड्डू मिलें- ऐसी सिद्धि कैसे हो सकती है ?

भैया, स्वहितके लिये कुछ क्षण तो ऐसा बिताना ही होगा कि जहां सबकी रस्सी कटी हुई हो, केवल ज्ञानमात्रके लिये ही अपनी कमर कसी हुई हो - ऐसा उद्यम केवल ज्ञानका अनुभव चखनेके लिये याने इस प्रयोजनके लिये सर्व कुछ न्यौछावर, सर्व कुछ त्याग कर सकने और केवल निज शुद्ध ज्ञायकस्वरूपकी ही रुचि जग सके तो वहां झलक कैसे न आयेगी ? अवश्य आयेगी।

धर्म चाहो तो धर्म मिलेगा और धर्म न चाहो तो अधर्म मिलेगा; पर धर्म अथवा ज्ञानानुभवकी प्राप्ति करनेके लिये हमें बड़ा सन्यास करना होगा और न बन सके तो किसी क्षण अपनी श्रद्धामें तो सर्वका संन्यास कर दो और गुप्त ही गुप्त, गुप्त ही उपायके द्वारा, गुप्तका ही लक्ष्य रखकर गुप्तकी प्राप्ति कर लो, गुप्तरूप से ही देखे तो वहां कैसे संतोष होगा ? जो शुद्ध उपलब्धि है, वह देखने, बनाने, सजाने से नहीं होती है, वह तो अपने अन्तर में अपने आपके ही अनुभवमें उत्पन्न होती है।

यह आत्मा ज्ञानमय है। यह जीव सब चीजोंको प्यारा प्यारा मानकर झुकता चला जाता है और नवीन नवीन चीजें इसे प्रिय होती चली जाती हैं। पुरानी छोड़ना नवीनका ग्रहण करना, इस शैलीमें अन्तमें जब ज्ञान तत्त्वको प्राप्त करता है तब वहां छोड़ना और नवीनपनेकी धुन खत्म हो जाती है; क्योंकि सर्वोत्कृष्ट वैभव तो वह ज्ञानपरिणमन है। सर्वविकल्प समाप्त हो जाते हैं, नई-नई चीजोंको प्रिय माननेकी धुनके; किन्तु इस मोही जीवकी कहानी तो देखो कि यह शरीर अनादि कालसे पीछे चला आ रहा है, अतिपरिचित हो रहा है; फिर भी इस शरीरमें अवज्ञा नहीं करी

जाती है, यह खेदकी बात है। अपनेको अपनेमें निहारें अपने लिए अपना कार्य करने मे—यही एक अध्यात्मका मर्म है,। इस आत्मस्वरूपके दर्शन करलें तो इसके बाद फिर हमारा सर्व मार्ग हल हो जाता है। यह ज्ञानमय आत्मतत्त्व है।

इसमें आत्माका स्वरूप बताया जा रहा है कि आत्मा ज्ञानमय है। इसमे पहिले यह बताया है कि आत्मा अमूर्त है, जैसे कि आकाश इसकी कोई मूर्ति नहीं है। रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित है। इस प्रकार यह आत्मा भी आकाशकी तरह है, अमूर्तिक है। यदि यह मान हो कि आत्मा पिण्ड-रूप है तो आत्माके फिर ज्ञान नहीं हो सकता है। जैसे यह चौकी वगैरा है, यह पिण्डरूप है। हाथसे उठा सकते हैं, रख सकते हैं। ऐसा ही अगर आत्मा हो तो फिर आत्माके ज्ञान कहां विराजेगा? यह आत्मा अमूर्तिक है और ज्ञानमय है और ज्ञान भी ऐसा है कि न तो ज्ञानमें कोई क्रम है कि इसको जानें, फिर इसको जाने। न इसमें कोई इन्द्रियोंकी आधीनता है। स्वभाव इस ज्ञानका ऐसा है कि सर्व जगतको यह जाने, ऐसे केवलज्ञानसे यह जीव कषायवश दूर होता है। जीव तो स्वयं ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानको छोड़ कर जीवका और कुछ स्वरूप समझमें नहीं आता।

इन्द्रियोंको सयत करके, आखोंको बद करके कुछ भीतर अपने को देखें तो यह निज आत्मा कैसा मालूम होता है? इसको अगर लम्बाई चौड़ाई से देखें कि यह मैं आत्मा तीन चार हाथका लम्बा हू, जितना कि यह शरीर है, ऐसा चौड़ा है तो इससे आत्मा समझमें नहीं आ सकता और जब यों देखेंगे कि यह जाननस्वरूप आत्मा है, केवल जानन ही इसका स्वरूप है, स्वभाव है तो यह समझमें झट आ जायगा कि यह ज्ञानमय है, और केवल ज्ञानमय है। इतना ही नहीं है, किन्तु अनन्त आनन्दस्वभाव वाला है। वीतरागता का जो उत्कृष्ट आनन्द है वही सुख एक अमृत रस है। उसका स्वाद लेने से समता रसमें परिणति हो गई है, ऐसे स्वरूप वाला है, अर्थात् जीव का स्वरूप ज्ञान और आनन्द है।

जैसे तख्तको देखते हो तो क्या दिखता है? रूप कैसा है? लम्बा कितना है? जैसे तख्तमें ये लक्षण पाये जाते हैं ऐसे ही जीवमें कुछ लक्षण तकना चाहें तो वहां मिलेगा ज्ञान और आनन्द। ज्ञान और आनन्दके सिवाय जीवके स्वरूपको जानने का और कोई तरीका नहीं है। निश्चयसे, तुम ऐसा समझो कि यह ज्ञानस्वभावी है और आनन्दस्वभावी है। इस जीव का किसी दूसरे से कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह भ्रमवश मानता है कि यह मेरा है, पर वह नहीं है इसका, केवल कल्पना ही करता है।

भैया ! कोई एक सेठ था। वह गरीब हो गया तो उसने सोचा कि कहीं बाहर जाएँ और कमाई कुछ करें। तो हजारों मील दूर वह चला गया। और एक वर्ष के बच्चे को वह घर छोडकर गया। अकेले गया, वहां रोजगार किया। रोजगार अच्छा लग गया। अब उसको १४ वर्ष हो गए। घर न आ पाया। १४ वर्ष बाद उसकी स्त्री ने अपने बेटे से कहा कि अमुक नगरमें तुम्हारे पिताजी रहते हैं-जावो और लिवा लावो। सो बेटा अपने पिताको लिवाने चला और उसी समय सेठ अपने घरको चला। अब रास्ते में एक ही धर्मशालामें दोनों ठहरे पास-पास के कमरेमें। रात्रिका समय था। बच्चेके पेटमें बडा दर्द हुआ। अब वह चिल्लाता है, उसकी चिल्लाहटको सुनकर सेठ धर्मशालाके मैनेजरसे कहता है कि इस लड़केको इस धर्मशाला से बाहर निकाल दो, इसकी चिल्लाहटसे हमें नींद नहीं आती है। कुछ देर बादमें उस लड़के का पेट दर्द और बढ़ गया और वहीं गुजर गया। हार्ट फैल हो गया।

अब वह सेठ अपने घर गया। तीन दिनके बादमें घर पहुंचा तो स्त्रीसे कहता है कि बच्चा कहा है? तो स्त्री कहती है कि बच्चा तो तुम्हें ही लिवाने गया है। अब ढूँढ़ने चला सेठ बच्चेको। तो चलते चलते उसी धर्मशालामें पहुचा जहां ठहरा था। सेठ मैनेजरसे पूछता है कि अमुक नामका बच्चा यहां आया था? उसने रजिस्टरमें देखा तो कहा, हा ५-६ दिन पहिले आया था। कहीं जा रहा था? वह अपने पिताको लिवाने जा रहा था। अब उसके थोड़ा-थोड़ा ख्याल आने लगा। फिर गया कहां वह? भाई गया कहां, उसके पेटमें इतना दर्द हुआ कि वह मर गया। अब मरनेका नाम सुनकर वह सेठ बेहोश होकर गिर गया। अब यह बतलावो कि जब लड़का सामने था और आंखों देखता था, तब तो उसे दया नहीं आई। तब तो उसे राग न आया। और आज सामने नहीं है, केवल सुन ही रहा है कि उसके दर्द हुआ और मर गया। इतना सुनकर ही वह बेहोश हो गिर पड़ा। तो अब यह बतलावो कि लड़का यदि उसका होता तो देखते ही प्रेम कर लेता, पर कोई किसीका नहीं है। वह तो केवल कल्पनामें आया कि मेरा है। न कल्पनामें आवो तो कुछ नहीं है। अर्थात् कोई किसीका होता नहीं है। सब अपनी-अपनी कल्पना करके और अपनेको कुछ मान करके कि मैं ऐसा हूं, मेरा यह है सुखी दुखी होता है, पर है किसीका कुछ नहीं।

जैनसिद्धान्तमें आनन्दका पद पानेकी तरकीब यह बताई कि मोह छोड़ो। भगवान् की भक्ति वही करता है तो रागद्वेष मोह छोड़े। भगवान्का उपदेश है कि कोई हमारी कितनी ही भक्ति करे, पर यदि वह रागद्वेष, मोह

नहीं छोड़ सकता तो वह पार नहीं हो सकता है। तो उद्धार तो हमें अपने आप करना है। जैसे इस लालटेनका काम है कि रोशनी हो जाये। सूर्यका काम है कि प्रकाश हो जाये। सूर्य प्रकाशित भी हो जाये लेकिन चलना तो तुम्हें ही पडेगा। इसी तरह भगवंतोंका उपदेश है कि मोह रागद्वेष छोड़ो और इस आत्माकी ओर आओ। यदि रागद्वेष न छोड़ोगे तो आत्माकी ओर न आ सकोगे। तो यहां आत्माका स्वरूप बतला रहे हैं इसलिए कि तुम अपना स्वरूप जानकर परवस्तुका तो मोह छोड़ दो और अपने स्वरूप का आदर करो। क्योंकि आदर उसका करना अच्छा होता है जो सदा अपने पास रहे और सुख देवे।

भैया ! ऐसी चीजका नाम बतलावो जो सदा अपने पास रहे और सुख देवे। घर ऐसा नहीं है, धन वैभव ऐसा नहीं है। ज्ञान है ऐसा। ऐसा जो जानन चल रहा है वह भी अपने पास नहीं रहता है। जैसे आज यहां धर्मशालामें बैठे हैं तो इस धर्मशालाको जान रहे हैं, इस धर्मशालाका जानन सदा न रहेगा। जो भी जाननकी शक्ति है, जो स्वभाव है वह ज्ञान-स्वभाव अपने पास रहेगा। इसलिए उपासना करो तो ज्ञानकी करो। भगवान्के आगे दीपक जलाते हैं तो क्यों जलाते हैं कि एक तो भगवान्को देखकर यह ख्याल करते कि मेरा स्वरूप ऐसा है जैसा प्रभुका है, और फिर दूसरे दीपकको देखकर ख्याल कर लिया कि जैसे यह दीपक जल रहा है, यह प्रकाशवान् है, इसमें सर्वत्र प्रकाश है, इसी तरह इस मेरे आत्मामें सर्वत्र ज्ञान ही ज्ञान है। ज्ञानके सिवाय और कोई स्वरूप नहीं है। ऐसे अमूर्तिक ज्ञानमय और आनन्दघन अपने आत्माको जानों। इसमें छांट-छांट कर विशेषण दिए हैं।

अपने आत्माको जब तक आकाशकी तरह एक शून्यरूपसे न तकें तब तक ज्ञान और आनन्दका भी अनुभव नहीं हो सकता। कुछ पिण्ड जैसा भीतरमें देखें तो वहां न ज्ञानका पता पडेगा, न आनन्द का पता पडेगा वहां एक जड़ता आ जायेगी। इसलिए सर्वप्रथम विशेषण दिया है कि यह आत्मा मूर्तिसे रहित है, आकाश जैसा है, इसे कोई रुकावट नहीं है, यह आत्मा केवल जाननरूप है, आनन्दस्वभावी है। इस आत्माको निरञ्जन तको। शरीरसे भी दूर, रागादिक विकारोंसे भी दूर, कर्मोंसे भी दूर–ऐसा निरञ्जन देखो और फिर आत्मा कैसा है कि भावमय है। ऐसे सबसे न्यारे अपने अपने ज्ञानस्वरूपमात्र इस शुद्ध आत्माका ही ध्यान करो और सबको हेय समझो।

अपने जीवनमें एक बात पकड़ कर रह जावो कि सब चीजें मात्र

जानने देखने लायक हैं, मगर अपना जो ज्ञानस्वरूप है यह ग्रहण करने लायक है क्योंकि इसकी रक्षा करने वाला कोई दूसरा न होगा। न स्त्री होगी, न पुत्र होगा, न रिश्तेदार होंगे। ये सब चीजें भिन्न हैं, इन सबको छोड़कर जाना होगा। यहां कोई रक्षा करने वाला नहीं है। मेरी रक्षा तो मेरे ज्ञानसे होगी। कैसा ही दुःख हो, यदि अपने ज्ञानको ठीक बना लिया तो दुःख नहीं होगा और यदि ज्ञानको प्रतिकूल बना लिया तो वह दुःख दूना बढ़ जायेगा। अब जैसे मान लो कि तुम आज भूखे रह गए और ऐसी दृष्टि हो जाये कि इन लोगोंने खूब खाया और हम भूखे रह गए तो इससे चौगुना दुःख बढ़ जायेगा और अगर यह जाना कि रोज-रोज बारहों महीने खाते ही हैं अगर एक दिन न खाया तो क्या होगा? ऐसा सोच लेने से दुःख न होगा। इनके भी तो उपवास है, कल खा लेंगे - ऐसा ज्ञान जगा लेने पर दुःख न रहेगा। कम हो जायेगा दुःख।

इष्ट वियोग हो गया। घरमें जो प्यारा था वह चला गया या कुछ हुआ, और अगर ऐसी दृष्टि बनाली कि वह तो मेरा बड़ा प्यारा था, वह मर गया। क्या किया जाये? अब किसका सहारा मिलेगा, ऐसी कल्पनाएँ बनाते जावो और दुःखी होते जावो। और अगर ऐसा ज्ञान बना लिया कि वह भिन्न ही पदार्थ तो है, मेरा तो कुछ नहीं है। मैं तो केवल अपने स्वरूपमात्र हूं। आनन्द पाता हूं तो मैं अपनेस्वरूपमें, रहता हूं तो अपने स्वरूपमें, बिगड़ता हू तो अपने में। जो कुछ भी होता है वह सब मुझमें अपने आप ही होता है -ऐसा ज्ञान कर लो तो लो दुःख कम हो जायेगा। क्लेश कैसा भी हो उसको घटाना बढ़ाना और मिटाना यह अपने ज्ञानके आधीन बात है। सत्संग कहते हो उसे हैं कि जहां ज्ञानके वर्तते रहने का अवसर मिले और हम संकट और दुःखोंसे पार हो सकें और अपने आनन्दरूपमें समा सकें।

इस जगत्में किसे दुःख नहीं हैं बताओ। जब तक कर्म साथ लगे हैं, दुःखसे कौन दूर है? अरे अमुक स्थितिमें ऐसा कार्य करके दुःख मानते हो तो इस स्थितिको छोड़कर अन्य स्थितिमें जावो। तो वहां दूसरी कल्पना करने लगोगे। जब अज्ञानभाव बना हुआ है तो जीव कहीं भी हो वह कल्पनाएँ करेगा और उसका दुःख बढ़ेगा और स्थिति कोई बनी रहे। यदि ज्ञान बना जागरूक है, ऐसा स्थिति अपने अन्तरंगमें हो तो दुःख महसूस न होगा। दुःख मिटाने के लिए, शान्ति चाहने के लिए जो दूसरोंके मनाने के अथवा राजी करने के या दूसरोंसे अपने को अच्छा कहलवाने के जो यत्न किए जाते हैं, वे सब व्यर्थ हैं।

देखो भैया! सबसे बड़ा विकट संकट है कि सभी अपनी इज्जतकी

चाह करते हैं। यह तो बतलावो कि यशका लोभ बुरी बात है कि नहीं? बुरी बात है। पैसेका लोभ करो तो कुछ काम देगा, अपने काम आयेगा, पेट भरेगा और अगर यश फैल गया तो उस यशसे क्या मिलता है? लोभ तो किसी भी तरह अच्छा नहीं, वह तो व्यर्थकी चीज है। बच्चोंसे लेकर बूढ़ों तक थोड़े रूपमें या बड़े रूपमें, सभी इस लोभके जालमें आ गए। मनुष्य क्या पशु पक्षी भी अपना अपमान महसूस करते हैं। यदि कोई बैल किसी जाते हुए बैलको गर्दन हिलाकर जाता हुआ देखले तो वह अपना अपमान महसूस करता है। अपनी ताकत दिखानेके लिए वह अपनी गर्दन टेढ़ी करके उस बैलके सामने आ जाता है और दोनोंमें लड़ाई छिड़ जाती है। यह अपमानकी बात चाहे पशु हो, चाहे पक्षी हो, चाहे मनुष्य हो सबके है।

ये जीव पर्यायबुद्धिके कारण इस लोकमें भ्रमण करते हैं। जिस शरीरमें यह जीव गया उसको ही अपना मान लिया। यह जीव अगर चिड़िया हो गया तो मनुष्यके शरीरको न कुछ देखता है। मनुष्य हो गया तो पशु पक्षी को न कुछ देखता है। पशु पक्षी इस मनुष्य शरीरको न कुछ देखते हैं, दीन हीन देखते हैं। उन्हें तो अपना ही शरीर प्यारा है। तो इस जीवकी यह टेक रह आई अब तक कि जिस शरीर में गया उसको ही मान लिया कि यह मैं हूं। पर है क्या? केवलज्ञान और आनन्दस्वभाव। शरीर भी छूट जाये। ऐसे ज्ञानानन्दरूपमें तका गया, समस्त वस्तुवोंसे न्यारा देखा गया निज शुद्धआत्मा ही उपादेय है और बाकी सभी चीजें हेय हैं, त्यागने योग्य हैं। और यदि नहीं इनसे छूट सकते तो बात तो सच्ची मानते रहो। भीतरमें श्रद्धा ठीक है तो उसका भी फल आपको अच्छा मिलेगा। अब वह कौनसी चीज है जो हेय है, न्यारी है? उसका वर्णन करते हैं।

पुग्गलु छव्विहु मुत्तु वढ़ इयर अमुत्त वियाणि।
धम्माधम्मु वि गयठियहँ कारणु पभणहिं णाणि ॥१६॥

पुद्गलद्रव्य ६ तरहके हैं। अब वे पराई चीजें बतला रहे हैं कि जिनसे अपनेको न्यारा समझना है। वैसे ५ अचेतन पदार्थ हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। सब जानते हैं। देखो जैनसिद्धान्तमें कैसा सूक्ष्मतत्त्वका वर्णन है? पुद्गल और जीवके बारेमें तो प्रायः सभी जान लेते हैं कि तू यह चीज है, जीव भी कोई चीज है और पुद्गल भी कोई चीज है। चाहे किन्हीं शब्दोंसे कोई कहे, मगर पहिचाने जाते हैं और थोड़ा थोड़ा आकाशके बारेमें भी लोगोंका ख्याल पहुंचता है। हां, आकाश ऐसा है। देखो यह जो पोला है, जहां कुछ नहीं है इसीको तो आकाश कहते हैं। सो थोड़ा उस आकाशकी ओर भी दिमाग जाता है; पर धर्म, अधर्म और

कालद्रव्य इनमें किसी की गति नहीं होती। इनमें भी कुछ कुछ कालका ख्याल आता है, मगर कालका ख्याल आता है समयके रूपसे घंटा दो घटा हो गया, वर्ष हो गया। उपादानभूत कोई कालद्रव्य है और वह समस्त लोक में एक एक परद्रव्यों पर अवस्थित है, इस रूपसे नहीं जाना जा रहा है। धर्म और अधर्मद्रव्यके बारेमें तो किसीका रंच भी ख्याल नहीं है। पर युक्ति से सोचो बतलावो तो कुछ अनुमान होता है। ये जीव पुद्गल चलते हैं ना तो जो विभिन्न कार्य होते हैं, अन्य प्रकारके जो परिणमन होते हैं उनमे कुछ न कुछ अन्य पदार्थ कारण है और ऐसा जो गमनका कारण हो वह धर्मद्रव्य है और चलते हुए के ठहरानेका जो कारण हो वह अधर्मद्रव्य है। इस प्रकार द्रव्यके ६ प्रकार हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन ६ द्रव्योंमें से अपन ५ अचेतनोंमें तो हैं ही नहीं। जीव जातिमे हैं, सो इन पांचोंसे तो अत्यन्त न्यारे हैं ही, पर जीव-जीवमें भी प्रत्येक जीव दूसरे जीवसे जुदा सुख है, जुदा है। जुदा अनुभव है, जुदा परिणमन है। सो मैं सब जीवोंसे जुदा हू और अपने स्वरूप मात्र हूं। जो बीतती है वह केवल खुद पर ही बीतती है। ऐसा यह मैं आत्मतत्त्व सबसे न्यारा हू। उन्हींकी परद्रव्योंमें पुद्गलद्रव्यकी चर्चा की जा रही है। पुद्गल ६ प्रकार के होते हैं।

कोई पुद्गल तो बहुत मोटे हैं जो धरने उठानेमें आ सकते हैं। जैसे चौकी, लालटेन आदि। इनको धर सकें, उठा सकें इसे तो कहते हैं बादर। यों ही मोटे-मोटे बहुतसे स्थूल पुद्गल ऐसे भी हैं, जो इन पत्थर ढेलोंकी तरह पूरे पकड़में आ नहीं सकते, मगर छूनेमें आते हैं, रोकनेमे आते हैं। ऐसा है जल। वह बादर है, मोटा जरूर है मगर पत्थरकी तरह मोटा नहीं है। तो कोई पुद्गल ऐसा होता है जो उससे भी बारीक होता है जैसे छाया। यह हाथकी छाया पड़ रही है। क्या बात हो गई? हां, लो यह छाया पड़ गई। यद्यपि यह छाया है, हम इसे देखते हैं मगर कोई पकड़े इसे। अरे! इसे नहीं। यह तो हाथ पकड़ा, छाया तो नहीं पकड़ सके। तो यह छाया तो पानीसे भी पतली है। मगर वह छाया पुद्गल है। अच्छा और ऐसी भी चीजें हैं जो छायासे भी पतली हैं। जैसे रूप, ये पीला, नील, लाल, सफेद जो रूप हैं, ये जो दिख रहे हैं, शरीर पर दिखता, चौकी पर दिखता, ये जो रूप रंग दिखते हैं ये छायासे भी सूक्ष्म हैं। और इससे भी सूक्ष्म चीजें होती हैं, जैसे कर्म जीवके साथ लगे हैं, पर ये कर्म किसीको दिखते हैं क्या? नहीं दिखते।

बोलते हैं ना भैया! अपन लोग स्तुतियोंमें कि न कर्म दुखदायी हैं।

उन ८ कर्मोंमें से एक को भी तका है क्या ? ज्ञानावरण किसीको मिला हो तो बतलावो। शायद चलते फिरते कहीं मिल गया हो, वह अत्यन्त सूक्ष्म हैं। पुद्गल ६ प्रकारके हैं। सभी रूप, रस, गध, स्पर्श करि सहित हैं। ज्ञान नहीं है, आनन्द नहीं है। ये जड़ हैं। इन पुद्गल पदार्थोंमे मोही जीव प्रीति करते हैं। मगर प्रीति करने लायक थे पदार्थ नहीं हैं। इनसे अपना कोई हित नहीं है। अतः पुद्गलकी प्रीति छोड़ो। इन पुद्गल पदार्थोंसे प्रीति छोड़नेमें ही कल्याण है। जिन पुद्गलोंकी प्रीति छोड़ना है उनका यह स्वरूप है कि ये पुद्गल ६ प्रकारके होते हैं। ये सभी पुद्गलतत्त्व इस जीवके लिए हेय हैं, उनको छोड़ो और अपने ज्ञानानन्दस्वरूपको ग्रहण कर लो। जैसा प्रभुका स्वभाव है तैसा ही अपना स्वभाव निरखो, इसीमें ही अपना हित है।

अपने जीवको सबसे न्यारा तकना। सबसे पृथक् तो यह है स्वयं, मगर स्वयंका जो स्वरूप है उस स्वरूपमें तकना अर्थात् ज्ञानस्वरूप देखना। ज्ञानस्वरूप तब देखा जा सकता है जब अपने को यों तका जाये कि यह जो जानन है, बस यही मैं हू ऐसा समझने के लिए समस्त परद्रव्योंसे न्यारा देखना है। वे परद्रव्य क्या क्या है ? उनका वर्णन इस दोहेमें हो रहा है। ६ प्रकारके पुद्गल ये जीवसे न्यारे हैं और अमूर्तिक होकर भी धर्म, अधर्म आकाश और कालसे भी न्यारे हैं। जीव वह कहलाता है जो जाने देखे। पुद्गल वह कहलाता है जहा रूप पाया जाये। धर्मद्रव्य वह पदार्थ है जो चलता हो, जीव पुद्गलके गमनका कारण हो। धर्मद्रव्य वह कहलाता है जो चलकर ठहरता हो। जीव पुद्गलके ठहरनेका कारण हो। इन द्रव्योंसे भी यह जीव जुदा है—ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं अर्थात् वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानसे रत पुरुष कहते हैं।

यद्यपि वज्र वृषभ नाराचसहननेकरूपसे पुद्गलद्रव्य मुक्तिके गमन के कालमें व्यवहारसे सहकारी कारण होते हैं तो भी धर्मद्रव्य गतिका सहकारी कारण होता है। यों हम चलते हैं तो अपनी शक्तिसे चलते हैं, किन्तु सब जगह भरे जो धर्मद्रव्य हैं, वे हमारे चलनेमें कारण हैं। यहां सिद्ध भगवान्का दृष्टान्त दिया है कि सिद्ध भगवान् मोक्ष जाते हैं तो वे स्वय ही चलते हैं, किन्तु उनकी इस गतिका कारण धर्मद्रव्य है। और लोकके उस भागमें ठहर जाता है तो उसका कारण अधर्मद्रव्य है। मुक्त आत्माके प्रदेशों में ये धर्म अधर्म द्रव्य ही एक क्षेत्रमें ठहरते हैं तो भी निश्चयसे दर्शनज्ञान स्वभावात्मक परमात्मासे ये सब भिन्नरूपसे मुक्तिमें विराजे हैं। इस प्रकार ससार-अवस्थामें इन अचेतनके विभिन्न परिणमनोंके कारणभूत जो बाकी ५ प्रकारके द्रव्य हैं, वे द्रव्य हेय कहलाते हैं। सबसे न्यारा समझो। उनसे भी

जुदा, घरसे भी जुदा, परिवारसे जुदा, शरीरसे जुदा, कर्मोंसे जुदा, धर्म अधर्म, आकाश, काल इन पदार्थोंसे भी जुदा और अपने आपके विरुद्ध जो परिणमन हैं, रागादिक विकार हैं उनसे भी न्यारा शुद्ध ज्ञानस्वरूप मात्र अपने आपको अनुभव करो।

दव्वइँ सयलइँ वरि ठियइँ णियमे जासु वसंति।
तं णहु दव्वु वियाणि तुहु, जिणवर एउ भणंति ॥२०॥

अब आकाशद्रव्यका वर्णन करते हैं कि जिसके उदरमें ये समस्त द्रव्य स्थित हैं, वसते हैं, उसको तुम आकाशद्रव्य जानो—ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। ये समस्त द्रव्य जो कि ५ जातिके हैं, ये आकाशमे वसते हैं। आकाश आधार है और वे पदार्थ आधेय हैं। जहां ये वसते हैं उसे आकाशद्रव्य कहते हैं और वैसे आकाशमे आकाश है और उन पदार्थोंमें वे पदार्थ है। जैसे ये अगुलियां कहा हैं? तो देखनेमे ऐसा आयेगा कि आकाशमे हैं, पर ज्ञानी पुरुष जो द्रव्यका स्वरूप जानता है वह यों देखता है कि आकाशमे तो आकाश है और अगुलीमे अंगुली है। यद्यपि आकाशको छोडकर अगुली कहीं विना आकाशमें नहीं पहुच सकती, फिर भी अगुली अपने ही स्वरूपमें है, आकाश अपने ही स्वरूपमे है। सो परस्पर एकक्षेत्र रूपसे ये सब फैलते हैं आकाशमे। यह जीव भी ठहरा है आकाशमे, मगर मेरा आत्मा मेरे ही स्वरूपमे है, आकाशके स्वरूपमें नहीं चला गया। साक्षात् उपादेयभूत अनन्त सुख स्वरूप यह परमात्मद्रव्य है। इससे यह आकाश जुदा है। इस कारण यह आकाशद्रव्य भी हेय है। और जैसे आकाशद्रव्य हेय है इसी तरह यह कालद्रव्य भी हेय है। उस कालके स्वरूपके सम्बन्धमें यह दोहा कहा जा रहा है।

कालु मुणिज्जहि दव्वु तुहु वट्टण लक्खणु एउ।
रयणहँ रासि विभिण्ण जिम तसु अणु यहँ तह भेउ ॥२१॥

तुम काल उसे मानो जो समस्तद्रव्योंके परिवर्तनमें कारण हो। एक वहन ७ वर्षकी है और एक है १० वर्षकी, तो १० वर्षकी वह बन गई, इसका कारण क्या है कि वह तीन वर्ष पहिले उत्पन्न हुई। तो व्यवहारमे यह छोटा है, यह वड़ा है, यह व्यवहार समयके फेरसे चलता है। यहा से कोई अलीगढ़ जाना चाहता है तो अलीगड़ १५ मिनटसे पहिले कोइ पहुच नहीं सकता, चाहे कितनी ही तेज कार हो, तो १५ मिनट वीते तो अलीगढ़ पहुचे। मनमें इच्छा हुई उसी समय यह शरीर अलीगढ़ पहुच जाये ऐसी बात नहीं हो सकती है। तो समय व्यतीत हुआ यह कालको सिद्ध करता है। सो काल द्रव्य भी हमारे परिवर्तनका कारण है। किन्तु काल अपने स्वरूपमें है और मैं अपने स्वरूपमें हू। जिनको पदार्थोंके सच्चे सुखका पता नहीं है, वे मोह

में ही मरे जा रहे हैं। उनके मोह ही लगा हुआ है और जिनको द्रव्यकी स्वरूपताका परिचय है उनको परिस्थितिवश कुछ भी करना पडे पर सच्चा ज्ञान जब होगा तो फिर झूठा नहीं पड सकता।

जैसे कुछ अंधेरे उजेलेमें एक रस्सी पड़ी हुई हो और यह भ्रम हो कि यह साप है तब तक तो बड़ा भय लगता है और हिम्मत करके देखा और यह पता पड़ा कि यह तो कोरी रस्सी है। तो जब सही ज्ञान हो गया तो घबड़ाहट खत्म हो गई। फिर कोई ताकत ऐसी नहीं कि उसे घबड़ाहट पैदा करे। कोई कहे कि भले ही तुमने जान लिया कि यह रस्सी है, मगर एक मिनट भी वैसे ही बन जाओ जैसे पहिले घबड़ाते थे। तो वह कैसे वैसे ही घबड़ाये? उसके तो मिथ्याज्ञान ही नहीं रहा। सम्यग्ज्ञान होने पर मिथ्या ज्ञान होनेका नाटक अन्तरमें नहीं बन सकता और मिथ्याज्ञान होने पर सम्यग्ज्ञान जैसा विलास अन्तरमें नहीं बन सकता। ज्ञानी जीव मोहकी कला नहीं खेल सकता और अज्ञानी जीव वैराग्यकी कला नहीं खेल सकता। अज्ञानी वैराग्यका भेष बनाए, मुद्रा बनाए मगर अंतरंगमें वैराग्यकी कला नहीं आ सकती और ज्ञानी जीवको परिस्थितिवश हर बातमें लगना पडे, राग करना पडे, पर उसके अन्दर रागकी कला नहीं हो सकती। ज्ञानी अज्ञानका काम नहीं कर सकता और अज्ञानी ज्ञानका काम नहीं कर सकता। अज्ञानी बनकर लाभ कुछ न पावोगे। मोहमें रहकर मिलेगा कुछ नहीं। जीवन ही व्यर्थ जायेगा। इससे मोह न करना, सोई अपनी रक्षा है और मोह करना सोई अपना बिगाड है।

भैया! मोह चाहे धनका हो, चाहे बालकोंका हो, चाहे चार आदमियोंमें शान रखनेका हो चाहे बातका हो कि मुझे ऐसा कह आदि इसलिए ऐसा करके ही रहूगा अथवा इन्होंने मेरी बात नहीं मानी, यह मेरे विरुद्ध हो गया आदि किसी प्रकारका मोह हो, इनसे लाभ न पावोगे। ज्ञानी जीवको तो यही सूझता है कि कहीं मेरी ज्ञानदृष्टिका रत्न न लुट जाये। जैसे कोई लोभी पुरुष एक बडे रत्नकी रक्षाके लिए हजारों रुपया खर्च कर सकता है क्योंकि रत्न मिल रहा है, वह तो सब कुछ त्यागकर श्रम कर सकता है क्योंकि रत्न मिल रहा है। ऐसे ही ज्ञानका लोभी, ज्ञानका रुचिया, मोक्षमार्गका प्रेमी अपने ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिके लिए सबकी उपेक्षा कर देता है। ज्ञानका प्रेमी होना अत्यन्त दुर्लभ परिणति है। यथार्थतया उसे शुद्ध ज्ञानका स्वरूप ही दृष्टिमें चाहिए, अन्य कुछ उसे न चाहिए, दृढ प्रत्यय और यत्न होना, यह बहुत ही ऊचे भवितव्यकी बात है। और गृहस्थावस्थामें जब सामने ही बालक हैं, वैभव है, ठाठ बाट है—ऐसी यह सत्सगति उस सगमें

समझे, राग भी करता जाये, पालन पोषण भी करे और अपने ज्ञानकी रक्षा भी करे, ऐसा महान् पुरुषार्थ हो तो यह बहुत ही बड़े भवितव्यकी बात है।

यह प्रकरण चल रहा है कालद्रव्यका। कालद्रव्य सब वस्तुवोंके परिणमनका कारण है। जैसे कि कुम्हारके चाकके नीचे लगी रहने वाली कील उस चाकके परिणमनके परिभ्रमणका कारण है, इसी प्रकार यह कालद्रव्य भी अपने प्रदेशोंपर स्थित पदार्थोंके परिणमनका कारण है। यह कालद्रव्य असंख्यात है। रत्नोंकी राशिकी तरह भिन्न-भिन्न है। ऐसा काल भी इस जीवसे जुदा है। जैसे पुराणोंकी कथावोंमें सारांश यह बताया जाता है कि सब पुराणोंका सार इतना ही है कि परोपकार तो पुण्यका कारण है और दूसरोंको पीडा देना पापका कारण है। इसी प्रकार करुणानुयोग द्रव्यलिंगी की समस्त कथावोंका साराश यह है कि जीव जुदा है और अजीव जुदा है। इतनी बात समझमें आनी चाहिए। इतना समझनेके लिए आवश्यक धर्म है व्रत विधान है, ध्यान है। सब कुछ इतनेके लिए ही कि मैं जुदा हू और दूसरे स्वरूपमात्र हू।

एक बार किसी राजाने एक राजा पर चढाई कर दी और उसमें वह जीत गया और इस जीतने में उसके परिवारके सभी लोग मारे गए। जीतने वाले राजाको बहुत अफसोस हुआ कि इतने राज्यके लिए हमने इतना विनाश किया। सो सोचा कि अब मुझे यह राज्य न चाहिए। सोचा कि उस वंशमें कोई बचा हो तो उसको राज्य दिया जाये। ढूँढ़ा कि कोई मिल जाये उस वंशमें। पता लगाते-लगाते मालूम हुआ कि इस राजाका छोटा चचा बचा है, जो श्मशानमे रहता है। श्मशानमे राजा पहुचा। राजाने प्रणाम करके विनय किया और कहा कि जो आप मांगोगे सो मिलेगा। उसने सोचा कि यह राज्य ही तो मांगेगा ज्यादासे ज्यादा और क्या मागेगा? सो कह दिया कि जो मागोगे सो मिलेगा।

वह चचा बोलता है कि हमको तुम ऐसी जवानी दो जिसके बाद बुढापा न आए। अब है क्या दुनियामें कोई ऐसी जवानी जिसके बाद बुढापा न आए? भले ही बच्चे लोगोंको लगता होगा कि हम बूढ़े न होंगे, हम ऐसे ही रहेंगे। भले ही कुछ नवयुवकोंको लगता होगा कि बूढे तो और लोग हुआ करते हैं, हम बूढे न होंगे। पर समय गुजरता है और उन पर खुद बीतती है। आज जो बूढ़े हैं, क्या वे अच्छे न थे बालकसे कभी? वे भी कभी बालक थे, पर आ गया बुढापा। तो ऐसी जवानी दो जिसके बाद बुढ़ापा न आए। राजा बोलता है कि महाराज! हम तो यह देनेमें असमर्थ हैं और कुछ मांगो।

पहुच जावोगे। ऐसा ही मार्ग वताने वाले तीर्थंकर महापुरुप हुए हैं। इस जगत्में अनन्त द्रव्योंका प्रसार है। विश्व कहते किसे हैं? जिसमें अनन्त द्रव्य हों, उसी का नाम विश्व है। उन अनन्त द्रव्योंकी ६ जातिया हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमे से चार द्रव्य तो सदा स्वभावमें रहते हैं—धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन द्रव्योंमें जन-साधारण को खवर भी नहीं है। विशेप व्यवहारमें आने वाले पदार्थ दो तरह के हैं—जीव और पुद्गल। ये दोनों द्रव्य उपाधि पाकर विगडते हैं और उपाधिके अभावसे सुधरते हैं।

हम आप सभी जीव हैं और जो ज्ञानी पुरुप हैं वे भी जीव हैं और जो परमात्मा हुए हैं, वे भी जीव हैं। तीन प्रकारके जीव पाये जाते हैं- वहिरात्मा, अतरात्मा और परमात्मा। जिसका उपयोग वाहर की ओर है उसे कहते हैं वहिरात्मा और जिसका उपयोग अतरकी ओर है उसे कहते हैं अतरात्मा और जो अन्तरात्मा और वहिरात्माको त्यागकर वीतराग निर्ग्रन्थ साधु होकर घातिया कर्मोका नाश कर चुके हैं, किम्वा आठों ही कर्मोका नाश कर चुके हैं उन्हें परमात्मा कहते हैं। पर जीवमें इन तीनों प्रकारके वननेकी शक्ति है। जो आज परमात्मा हुए हैं वे भी कभी वहिरात्मा थे, अतरात्मा थे और परमात्मा वने। ये ससारी जीव जो कि वहिरात्मा हैं उनमें अन्तरात्मा और परमात्मा होनेकी सामर्थ्य है। ये जीव हम आप सभी अनादिसे अनेक प्रकारके जन्ममरण पाते हुए, भटकते हुए चले आ रहे हैं। जो पदार्थ हुए हैं वे अनादिसिद्ध हैं। कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो किसी भी रूपसे न था और हो गया हो। प्रत्येक पदार्थ अनादिसे ही हैं और वह अनादि से ही परिणमता चला आ रहा है। हम हैं तव हमारे यह अनेक परिणमन चलते जा रहे हैं।

इन मुसाफिरोंका आज हम आपको कुछ समागम मिला है। कुछ तो धर्मका समागम मिला है और कुछ रागद्वेषोंको करनेका भी समागम मिला है, किन्तु ये सभी समागम विछुड जायेंगे। जैसे अपने बुजुर्गोंको विछुड़ते हुए देखा है। यह रीति सवपर घटित होगी। ये सव विछुड़ जायेंगे। इस वर्तमान मे जो रुचि करते हैं, आसक्ति करते हैं वे विकट अधेरे में हैं और इसके फल में उन्हें संसारके क्लेश प्राप्त करना और भटकना वना रहता है। जिन्होंने अपने आपको सभाला, अपने आपको सवसे न्यारा केवलज्ञानमात्र परखा वे तो भव्य जीव हैं, ससारसे तिरने वाले हैं और जिन्होंने सवसे निराले अपने ज्ञानस्वरूपको नहीं परखा, वे कितना ही पुण्यके उदय वाले हों, वैभवके वीचमें हों लेकिन अधेरे में हैं। वे शाति नहीं पा सकते हैं। उन्हें मोक्षमार्ग

नहीं मिल सकता है। इस कारण इस मनुष्यपर्यायमें सबसे महान् प्रथम कर्तव्य है अपने आत्मस्वरूपको पहिचानना और अंतरंगसे सबसे विरक्त रहकर अपने आपमें आना। यदि इतना काम कर सके तो मनुष्यजन्म सफल है।

भैया! धन वगैरह का सचय करनेमे आत्माका परिणाम काम नहीं दे रहा है, किन्तु पूर्वसमयमे जो पुण्य बध किया उसका उदय काम दे रहा है। तब वर्तमानमें जो कुछ मिला है वह सब मुफ्त मिला है क्योंकि वर्तमान परिणामपर पदार्थोंका सचय निर्भर नहीं है। यह जो पुण्योदयवश वैभव मिला है, निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। सो उस मिले हुए वैभवको मुफ्तका समझो। आत्माका इसमें कुछ परिणमन नहीं चल रहा है। ये तो पुण्यसे मिले हुए समागम हैं। इनमें पर्यायबुद्धि करनेसे मिलेगा क्या? केवल पाप ही हाथ लगेगा। चीजें तो जा रही हैं, जायेंगी, मगर मिली हुई चीजोंमें ममता रहनेसे केवल पाप ही हाथ रहता है। और इस भवसे जाने पर केवल पाप ही हाथ रहता है। जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने यह विवेक किया था कि समागमोंके बीच रहते हुए भी समागमोंसे अलिप्त रहे।

अब अपनी-अपनी बात अपनेमें देखो कि इन समागमोंके बीच रहकर अलिप्त रह सकते हैं या नहीं। घरमें जो चार छः जीव आए हैं उन्हें ही तो अपना सब कुछ मानना और जीवों को बिलकुल गैर समझना, ऐसी जो द्वैत बुद्धि है यह मेरे मोहका परिणाम है। सो मोह करके इस जीवनमें भी देख लिया होगा कि इस समय कुछ हाथ नहीं है इस मोहके फलमें। लेकिन अंतमें भी कुछ न रहेगा।

एक चोर था। वह सोचने लगा कि किसकी चोरी करें। छोटे गरीबों को क्या सतायें, चलो राजाके किसी विभागमें पहुचें। वहांसे कोई बढ़ी चीज चुरा लायें। लो वह चला चोरी करने, पहुचा राजाके घुड़सालेमे। वहा एक से एक बढ़िया घोड़ा खडे थे। वहासे एक सुन्दर घोड़ा चुराकर ले आया और बहुत दूर जाकर एक बाजारमें खड़ा कर दिया बेचनेके लिए। अब घोड़ा तो था ४०० रुपये का और उससे कोई ग्राहक पूछे कि क्या घोड़ा बेचोगे? कितने का दोगे? तो वह तिगुने दाम बताता था। सो जो भी ग्राहक आए, मूल्य पूछे तो वह १२०० रुपया बताये। इस तरहसे दस ग्राहक निकल गए। ग्यारहवीं बार एक बहुत पुराना अभ्यस्त चोर, ऐक्सपर्ट चोर आया, जिसका इतना जीवन चोरी करते ही व्यतीत हो गया था, उसने पूछा घोड़ा बेचोगे, बोला हां बेचेंगे। कितनेमें? १२०० रुपयेमें। उसे उसकी आवाज से मालूम हो गया कि यह घोड़ा चोरीका है। बोला, इसमे कौनसी कला है

जो इतना मूल्य है ? कहा कि इस घोडे की चाल इतनी अच्छी है कि इस पर बैठा हुआ पुरुष हिल नहीं सकता है। कहा अच्छा देखें चलाकर, अगर बढ़िया होगा तो हम १२००) ही देंगे। तो वह ऐक्सपर्ट चोर हाथमें एक चवन्नीका मिट्टीका हुक्का लिए था, सो उसने घोडे वाले से कहा सभालो और वह स्वयं घोडे पर बैठकर घोडेको भगा ले गया। बादमें लौटकर आये वे पुराने ग्राहक। पूछा कि तुम्हारा घोडा बिक गया। बोला हा बिक गया। कितनेमें ? जितनेमें लाये थे उतनेमें बिक गया। अरे मुनाफा कुछ नहीं मिला। हा, मुनाफेमें मिला यह चवन्नीका मिट्टीका हुक्का। सो समझो कि जितने समागम मिले हैं वे सब मुफ्तमें मिले हैं।

एक बालक रईस घरानेमें पैदा होता है तो बतावो उसने क्या कमाया पर बिना कमाये ही करोडपति लखपति कहलाता है और जो कुछ उसे मिला है सब मुफ्त ही तो मिला है। और कोई उससे पूछे अतमे कि मुनाफेमें कुछ मिला है ? तो वह यह बतायेगा कि मुनाफेमे मिला है पाप। चीज कुछ हाथ नहीं आई। समस्त परद्रव्योंका इस आत्मामें अत्यन्ताभाव है। कोई वस्तु हाथ नहीं आती। तो यह मनुष्यभव एक आखिरी फैसला होनेका भव है। यह मनुष्य मनुष्यभवमे उत्पन्न हो सकता है, निगोदमे, नर्कमें जा सकता है, तिर्यञ्चमे उत्पन्न हो सकता है। मनुष्यको छोडकर बाकी जीव सब जगह उत्पन्न नहीं हो सकते। किसी को कहा रुकावट है, किसीको कहीं रुकावट है।

देव मरकर देव नहीं बन सकते, नारकी नहीं बन सकते। नारकी मरकर नारकी नहीं बन सकते, देव नहीं बन सकते। इसी प्रकार और जीवोंमे भी रुकावट है, पर मनुष्य एक ऐसा भव है और मनुष्यमें भी कर्मभूमिया मनुष्य भोगभूमिया मनुष्य तो मरकर पहिले या दूसरे स्वर्गमें देव ही होंगे। उससे सब रुकावट हैं, पर इस कर्मभूमि मनुष्यको कहीं रुकावट नहीं है। निगोद चला जाये, नारकी हो जाये, देव बन जाये, किसी भी गतिमें चला जाये, मनुष्य हो जाये यह सब कुछ बन सकता है। ऐसी दुर्लभ मनुष्यपर्याय पाकर वहा हम मोक्षका मार्ग भी पा सकते हैं। यदि हमने कुटुम्ब और जिनमें मोह है उन-उनका ही ख्याल रखा, उनकी ओर ही हम मुख किए रहे, अपने आपका वैभव हमने न सभाला तो समझो कि क्या किया ? जैसे कहावत है कि कहा गए थे ? दिल्ली गए थे। वहा कितने वर्ष रहे ? बारह वर्ष काम किया। क्या किया ? भाड झोंका। अरे भाई भाड़ झोंकनेके लिए दिल्ली कोई जाये तो उसे कोई बुद्धिमान् न कहेगा। अरे भाड़ ही झोंकना था तो पास पड़ौस के देहातमें ही कहीं चले जाते।

इसी प्रकार कहां गये थे ? मनुष्यभवमें आए। कितने वर्ष रहे ? ५० वर्ष रहे। क्या काम किया ? विषय और कषाय किया। अरे तो विषय और कषाय ही करना था तो तिर्यंच आदिक भव कहा गए थे ? पशु पक्षी आदिक बनकर कर लेते। इस मनुष्यपर्याय में आकर दो, चार, दस हजार मनुष्योंने कुछ वाहवाही कर दिया तो प्रथम तो ये वाहवाही करने वाले मनुष्य मायामय हैं, विनाशीक हैं, अशरण हैं, कर्मोके भारसे दुखी हैं। उनकी वाहवाहीसे मिलेगा क्या ? और फिर यह बतलाओ कि यश और प्रतिष्ठा पानेकी धुनसे तुम्हें लाभ क्या होना है ? चार दिनकी चांदनी, फिर अन्धरी रात।

यह बात कह रहे हैं आपके आत्मकल्याणकी। इसके मायने यह नहीं है कि हम गृहस्थीमे रहकर अपना जीवन एक रूखा-सूखा बिताए। धन कमाओ, यश भी रखो, प्रतिष्ठा भी होने दो, सब कुछ हो गृहस्थावस्थामें, पर रात दिनमें से आधा घटा समय ऐसा भी सबका रहना चाहिए कि जिस समयमे सर्व सकल्प विकल्प त्यागकर इस यशको और वैभवको हेय मानकर सबसे छुट्टी पाकर अपने आपमे बसे ज्ञानमात्र प्रभुका दर्शन किया करें। बाकी सर्वसमय गृहस्थीमें यही तो किया जाता है– धन कमाना, पालन पोषण करना, यहा वहा की खबर रखना, सारे काम किए जाते हैं, पर आधा घटा, एक घटा, १० मिनट, ५ मिनट भी उन चौबीस घटोंमें ऐसे व्यतीत होने चाहिये कि जिस समय यह अनुभव रहे कि मेरा दूसरा कोई नहीं है, मेरा तो मात्र मैं ही हू। यदि ५ मिनटको भी ऐसी भावना जग सके तो रात दिन आपको आकुलताए नहीं सतायेंगी।

भैया ! विपत्तियां आयेंगी तो विपत्तियोंके सहन करनेमें ज्ञानाभ्यासके बलसे साहस रहेगा। सम्पदा आ गई तो सम्पदामें फूलकर अंधे बन सकोगे, पर गृहस्थको अपनी शांतिके अर्थ ऐसा चाहिए कि वे अपने आपको सबसे निराला केवल ज्ञान ज्योतिमात्र समझ सकें। सबको अपने उपयोगसे हटा दीजिए। यदि एक ऐसा पुरुषार्थ न रहेगा, आसक्ति बनी रहेगी तो जो ज्ञानमयतत्त्व है, उसका अनुभव न हो सकेगा। और बाहरी बातोंमें रखा क्या है ? किसीने आपको अच्छा कह दिया तो वे परमात्मा तो नहीं हैं, उनके ही हाथोंमें तुम्हारी चोटी नहीं है। तुम्हारे ही सरीखे तो वे भी कर्मोके भार से दुखी है। अपने कल्याणका यत्न करना चाहिए और वह यत्न इतना ही तो है कि अपनेको सबसे न्यारा ज्ञानानन्दस्वरूप अनुभव कर सकें और उसका उपाय एक यही है कि उस १० मिनटमें ऐसा अपने उपयोगकी तैयारी करो कि कोई भी दूसरा पदार्थ मेरे ज्ञानमें आता हो तो उसे अलग कर

दीजिये। जब हमारे ज्ञान-आसनको प्रभु रीता तकेंगे, तो वे आकर उस पर विराज जायेंगे और अगर उद्दण्ड लोग ऊधम मचा रहे होंगे तो वहां यह प्रभु तकता भी नहीं है।

इसलिए अपने रात दिनमें १० मिनटमें अपने उपयोगरूपी सिंहासन को बिल्कुल खाली छोड दीजिए, ताकि प्रभु आकर यहां विराजमान् हों। ऐसा संकल्प करके ऐसा न्याय करनेका कुछ ख्याल आता हो तो इसको अहित जान करके भिन्न जानकर, व्यर्थदा जानकर इसे हटाओ। मत आवो यहां, घरकी याद आती हो तो सबको अपने उपयोगसे हटाओ। हट जावो यहांसे। तुमसे मेरा पूरा न पडेगा– ऐसा साहस बन सके तो अपने आपके ज्ञानमें आनन्दमय प्रभु स्थित होगा और स्वयं ही आनन्दका अनुभव करने लगेगा। इस असली आनन्दमें यह सामर्थ्य है कि भव भवके बांधे हुए कर्म क्षण भरमें ही ध्वस्त हो सकते हैं।

हम प्रभु-दरबारमें आते हैं, प्रभुभक्तिमें, दर्शनमें, पूजनमें अपना समय लगाते हैं तो अच्छा है, पर आधा घंटा, एक घंटा बिल्कुल निर्विघ्न होकर व्यतीत हो, किसी दूसरे आरम्भ परिग्रहकी बात न सोच सकें, प्रभुके स्वरूप को अपने ज्ञानको देखें और उस समय अपने स्वरूपमें समता देखें एक-रस होकर सभी परम विश्राम पायें।

देखिए प्रत्येक पदार्थके सम्बंधमें तीन बातें होती हैं। यह बहुत ध्यान से सुनने की बात है। ज्ञान, अर्थ और शब्द। जैसे चौकी, इसके सम्बन्धमें ३ बातें हैं– ज्ञानचौकी, अर्थचौकी और शब्दचौकी। जो कुछ भी है, वह इन तीन रूपोंमें है। अर्थचौकी तो यह है कि जो चार कोनों वाली है, जो कि सामने रखी है। जिससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं अपनी जगहमें हूं और यह चौकी अपनी जगह खड़ी है। शब्दचौकी वह है– चौ और की– ऐसे शब्द चाहे कागज पर लिखे जाएं या बोले जाएं। ऐसी चौकीका नाम है शब्दचौकी। मगर ज्ञानचौकी क्या कहलाती है? इस चौकीके सम्बन्धमें जो यह ज्ञान हो रहा है, उस ज्ञानका नाम है ज्ञानचौकी। अब यह बतलाओ कि हम अर्थचौकी का कुछ कर सकते हैं क्या? नहीं। शब्द-चौकी का हम कुछ कर सकते हैं क्या? नहीं। हम ज्ञानचौकी का ही कुछ कर सकते हैं और ज्ञानचौकीसे ही हमारा सम्बन्ध है। अर्थचौकीसे संबंध नहीं है और शब्दचौकीसे संबंध नहीं है।

इसी प्रकार प्रत्येक चीजमें लगाते जाओ। पुत्र है जैसे, पुत्र तीन रूपों में है– अर्थपुत्र, शब्दपुत्र और ज्ञानपुत्र। अर्थपुत्र तो वह है जो घरमें रहने वाला है। घर का बेटा तो आपका अर्थपुत्र है। सो वह अर्थपुत्र

आपसे बिल्कुल न्यारा है। आपसे अर्थपुत्र भिन्न जगहमें है। आपका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है और शब्दपुत्र क्या है? कागज पर लिख दिया पु और त्र या मुख से बोल दिया पु त्र। तो यह हुआ शब्दपुत्र। तो शब्द-पुत्र भी आपका कुछ नहीं है। जड़ है, पुद्गल है, आपसे कुछ नाता नहीं है, पर अर्थपुत्रके बारेमें जो कल्पना बनायी, यह मेरा है और जो ज्ञान जगा पुत्रके सम्बन्धमें उसका नाम है ज्ञानपुत्र। आप अर्थपुत्रसे राग कर सकते हैं क्या? नहीं। आपका आत्मा आपके असख्यात प्रदेशमें है। आपका राग आपके आत्मामे ही फैलकर समाप्त होता है। आप अर्थपुत्रमें कुछ नहीं किया करते हैं और शब्दपुत्रमें तो कुछ करते ही नहीं हैं। परपदार्थोंके बारे मे जो यह कल्पना होती है, जिसका नाम ज्ञानपुत्र है। आप ज्ञानपुत्रमे ही राग कर सकते हैं। शब्दपुत्रमे राग नहीं कर सकते और अर्थपुत्रमें भी राग नहीं कर सकते।

भगवान्को तीन रूपोंमे निरखो— अर्थभगवान्, शब्दभगवान् और ज्ञानभगवान्। अर्थभगवान् और शब्दभगवानसे आपका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह अपनी जगह पर है, हम अपने प्रदेशोंमे हैं। आप हम यहा चिल्लाते रहें तो उससे उस भगवान् पर कुछ नहीं गुजरता है। वह प्रभु रागमें आकर, अपने उत्तम पदसे आकर हम आप जैसे लटोरे खचोरोंको हाथ पकड़ कर तारने नहीं आता है। वह सकल ज्ञेय ज्ञायक और निजानन्दरसलीन है और शब्दभगवान् 'भगवान' लिखा हो अथवा बोला गया हो तो उस सम्बन्धमें जो हमने ज्ञान बनाया, जो कुछ समझा, वह है मेरा ज्ञानभगवान्। तो हम अर्थभगवान्की भक्ति नहीं करते हैं। वह अन्यत्र है, हम यहा हैं। हम शब्दभगवान्की भी भक्ति नहीं करते हैं, किन्तु ज्ञानभगवान् की भक्ति करते हैं।

भगवान्की मूर्तिके सामने खडे होकर भी यदि अपने हृदयमें, ज्ञानमें, घर वैभव बसा हुआ हो तो हम वहां किसकी भक्ति कर रहे हैं? ज्ञानकी। ज्ञानपुत्रकी, ज्ञानजड़की भक्ति कर रहे हैं। भगवद् भक्ति नहीं कर रहे हैं। इस कारण जो थोडे मिनट भी प्रभुकी भक्तिमें आवें तो यथार्थ मायनेमे आवे। अर्थात् उस ज्ञानमें भगवान्के गुण बस रहे हों। उनके गुणोंका स्मरण कर रहे हों— ऐसी शुद्ध स्थितिमें यदि हम रहते हैं तो हमने भगवान् की भक्तिका अन्यथा जो भी बस रहा हो, उसकी पूजा हो रही है। जो हृदयमें बसा हुआ हो, उसकी ही चाह कर रहे हैं। जिनमें मोह बस रहा है, वे खुश रहें— ऐसी बुद्धिसहित पूजा है तो भगवान्को कुछ नहीं चढ़ रहा है, वह उनको ही चढ़ रहा है।

यदि हम अपने २४ घंटेमें से आधा घंटा अपना ऐसा समय बनाएं कमसे कम कि सत्संग हो, ज्ञानार्जन हो, चिंतन हो, केवल एक आत्मस्वरूप से नाता हो और बाकी सबको भूल जायें- ऐसी तैयारीसे यदि अपने आप को जानें तो हम उत्तरोत्तर मुक्तिके निकट पहुंच जायेंगे। ज्ञानार्जन सबसे महान कर्तव्य है। सब कुछ करते हुए भी हम अपने शुद्ध ज्ञानार्जनमें लगें तो इससे ही हम आपकी पात्रता है। हम प्रभुके दर्शन तभी कर सकते हैं जब कि हमारी प्रवृत्ति मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्यसे दूर हो। कुछ मिथ्यात्व अपने हृदयमें बस रहा है और चाहें कि हम ज्ञानकी अनुभूतिमें आयें तो यह कैसे हो सकता है? दूसरे जीवों पर हम अन्याय करते चले जा रहे हैं, दूसरोंका अकल्याण करते चले जा रहे हैं तो इससे ज्ञानानुभूति नहीं हो सकती है। खानेकी इतनी तीव्र आसक्ति हो कि भक्ष्य अभक्ष्यका विवेक न कर सके। ऐसी आसक्तिमें ज्ञानका अनुभव नहीं जग सकता है। जब तक ज्ञानका अनुभव न जगेगा, तब तक आत्माको शांति नहीं मिल सकती। मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्यका त्याग करो और ज्ञानकी दृष्टि बनानेमें अपना यत्न रखो, यही तुम्हारे हितका उपाय है।

यह जीव अनादिकालसे आहार, भय, मैथुन, परिग्रह- चार संज्ञाओंके ज्वरसे पीड़ित हुआ नाना योनियोंमें भ्रमण कर दुःख भोग रहा है। हम आप इन जीवोंका स्वरूप स्वयं अपने आप कैसा है? इसको यदि समझना चाहें तो सीधे परमात्मप्रभु पर दृष्टि दीजिए। जो परमात्मप्रभुका स्वरूप है, तैसा ही मेरा स्वभाव है, पर क्या हुआ कि यह जीव अपने घरको नहीं पहिचान सका और पराये घरमें आया। इसने कितनी आफतें मचायीं। अपना घर इसके आत्माका निजी क्षेत्र है, जिन प्रदेशोंमें यह आत्मा बसता है। वह समस्त प्रदेश क्षेत्र जीव अस्तिकाय कैसा स्वयं स्वच्छ और उत्कृष्ट है। ऐसे निज घरको न पहिचाननेके कारण परघर अर्थात परद्रव्योंके प्रदेशमें, क्षेत्र में हम उपयोग लिए फिरते हैं। यही कारण है कि हमने अब तक आकुलताएं सही हैं।

बड़ी दुर्लभतासे यह मनुष्य जीवन पाया है तो यहां आहार, निद्रा, भय, मैथुन में ही वशीभूत रहे। अपने आप अन्तरमें सोच लीजिए कि हमने वैभवको बढाकर क्या काम किया? आहार पशु भी लेते हैं, मनुष्य भी लेते हैं, फर्क यह है कि पशुओंका आहार दुगना चौगुना है मनुष्योंकी अपेक्षा, मगर कीमतमें मनुष्योंके आहारमें पशुओंके आहारसे तिगुना चौगुना खर्च है। पशु तो पेट भर जाने के बाद एक तृण भी खानेकी चाह नहीं करते, किन्तु मनुष्य पेट भरनेके बाद भी पता नहीं यह इच्छा कहासे

जगह कर लेती है कि दो आने की चाट खानेकी तो जगह निकल ही आती है।

इस आहारकी इच्छाने मनुष्यको ऐसा विवश कर दिया है कि न तो दिन गिनता, न रात गिनता, न भक्ष्य गिनता, न अभक्ष्य गिनता और न एक वार दो वार गिनता, न दस वार गिनता। कोई वारोंकी गिनती भी नहीं। इस तरह आसक्त होकर आहारके लिए मनुष्य टूट पड़ता है। कहा तो इस जीवका स्वभाव निराहार रहना है, आहार इसके स्वभावमें ही नहीं है और कहा आहारकी इतनी तीव्र आसक्ति वासनाएँ हैं कि वही जीवनका एक लक्ष्य बना लिया। यह तो आहारसज्ञाके सम्बन्धमें मनुष्योंकी हालत है। हा, आहार किए बिना चलती नहीं है, पर तय तो करलो कि कितने वार भोजन करनेमें हम जिन्दा रह सकते हैं? कल्पनाओंका तो कुछ ठिकाना नहीं। कोई कह सकता है कि अजी मेरी तो चार बार खाये बिना नहीं चलती, ६ वार खाये बिना नहीं चलती। और सही मायने मे देखो तो एक बार खाने से जीवन चलता है। एक वार नहीं, दो वार, तीन वार कुछ तो तय रखिये पर इस मनुष्यने न वारोंका ख्याल है और न भक्ष्याभक्ष्यका ख्याल रखा है, न दिन रात का ख्याल रखा है।

व्यवहारमें कोई एक ऐसी विलक्षण बात भी लगा रखी है कि इसके लिए सम्मान चाहिए। छोटेसे भी छोटा पुरुष हो असन्मानसे भोजन करना नहीं चाहता। सन्मानपूर्वक रूखा सूखा भोजन भी कितना मनोरम लगता है। तो मालूम होता है कि खाना कोई बहुत हल्की बात है, जिसका संतुलन करने के लिए बड़े सन्मानकी आवश्यकता होती है। तो सन्मानके व्यवहार की और खाना जैसी कितनी तुच्छ बात है? आहारकी बात देखो, जिसे विवश होकर करना चाहिए उसे स्वच्छन्दतापूर्वक किया जाये तो इसमें हम लोगोंको आगेका मार्ग सही नहीं मिल सकता।

जैनधर्म पालनेमें व्यवहारमें प्रथम ही तीन बातें बताई गई हैं। देव दर्शन करना, रात्रिभोजन न करना और जल छानकर पीना। देवदर्शन करना हृदयमें पवित्रताका उपाय मिला। मन स्वच्छ रहेगा तो हमारा व्यवहार भी उत्तम रहेगा। दिनको भी खाया, रात्रिको भी खाया, खाने से विराम न लिया तो ऐसी स्थितिमें आत्मध्यानकी पात्रता नहीं रहती और विशेषतया रात्रिमें भक्षण करनेसे पात्रता रहती ही नहीं और अहिंसाव्रत भी नहीं पलता है। जल छानकर पीने से सर्व अभक्ष्य चीजोंका त्याग स्वत आ गया। यह प्रवृत्ति थी जैनसिद्धान्तमें व्यवहारमार्गमें सबसे पहिले। हम इस ओर यदि उपेक्षा कर जायें तो हमारे आगेकी संतान तो और विशेष उपेक्षा करके

इससे बिल्कुल अनभिज्ञ हो जायेगी।

देखिये मुखमें हाथसे ग्रास लेते हुए फोटो कैमरासे लिया जाये, मुख में कौर दे रहा हो तो कितना खराब फोटो होगा। एक खाते हुए और न खाते हुए दोनों आदमियोंकी फोटोमें तुलना करो तो आपको कौनसी फोटो सुन्दर लगती है और कौनसी फोटो असुन्दर लगती है? खाने जैसी चीज बहुत कम बार हो और वह भी विवेकपूर्ण हो, अभक्ष्यके त्यागपूर्वक हो। अभक्ष्यके त्यागमें और अधिक त्याग न हो सके, खराब चीजोंका तो त्याग करना ही चाहिये। दो एक चीजें तो ऐसी हैं कि जिनका नाम लेनेमें संकोच होता है। ऐसी चीजोंमें प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। वे कुछ चीजें ऐसी हैं जो ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। खैर, उनका नाम ले ही ले जैसे अंडा, शराब मांस इत्यादि। ये चीजें छूनेके योग्य भी नहीं, अगर अपन लोगोंमें एक दो की ऐसी प्रवृत्ति हो तो प्रेमपूर्वक उन्हें समझावो। अपन वीतराग प्रभुकी संतान हैं। उनकी परम्परासे चले आए हुए हैं। अपना व्यवहार शुद्ध और निर्दोष होना चाहिए। कितने दिनोंकी यह उमर है? थोड़े दिनोंका सब मामला है। इसमें भी न चेते तो फिर ठिकाने कब आवोगे? हमारे जीवनका अगला आधा समय तो पछतानेमें ही व्यतीत होता है। यह बड़ा अच्छा समय मिला है। ऐसे समयमें अपन लोगोंको विवेक रखना चाहिए।

एक किम्वदन्ती है कि ब्रह्माने चार जीव बनाए उल्लू, कुत्ता, गधा और मनुष्य। सबको ४०, ४० वर्षकी उमर दी। उल्लूसे कहा जावो तुम्हें पैदा किया। उल्लू बोला, महाराज मेरा काम क्या है? अजी! अंधे बने बैठे रहना, जो कुछ मिल जाये सो खा लेना और संतोष करना। बोला, महाराज बुरा काम दिया। उम्र कितनी है? ४० वर्ष। ४० वर्ष तो महाराज बहुत हैं, और नहीं तो उम्र तो कम कर दो। अच्छा तुम्हारी आधी उम्र कर दी। आधी काटकर तिजोरीमें रखली। ऐसा कोई ब्रह्मा था ऐसा ख्याल न करो, इसमें रहस्य बताया गया है। एक कथा है चलती फिरती। फिर कुत्तेसे कहा जावो पैदा किया। महाराज काम क्या है? जो तुम्हें रोटीका टुकड़ा दे दे उसकी भक्ति करना, चाकरी करना, यही तेरा काम है। महाराज, उम्र कितनी है? चालीस वर्ष। उम्र तो कम कर दो। अच्छा तेरी आधी उम्र कर दी। बीस वर्ष काटकर तिजोरीमें रख लिया। फिर गधेसे कहा जावो पैदा किया। महाराज, काम क्या? दूसरोंका बोझ लादना और जो रूखा सूखा भुस मिल जाये सो खा लेना। काम तो महाराज बुरा है। उम्र महाराज कितनी? ४० वर्ष। उम्र तो महाराज बहुत कर दिया। अच्छा तुम्हारी उम्र आधी रख दिया। २० वर्ष तिजोरीमें रख लिया। अब बच गई ६० वर्षकी उम्र। अब

मनुष्यसे कहा जावो तुम्हें पैदा किया। महाराज मेरा काम क्या होगा ? देखो खेलना, पढना, विवाह करना, बच्चे खिलाना और पशुवों पर, पक्षियों पर और मनुष्यों पर राज्य करना। अच्छा महाराज बढ़िया काम दिया। उम्र कितनी है ? ४० वर्ष। महाराज उम्र बहुत कम है, बढ़ा दीजिए। अरे जावो, बस, मत बढ़वावो उमर। वह हठ करने लगा। ब्रह्माने कहा अच्छा देखता हू। अगर तिजोरीमें उमर बच रही होगी सो दे दूंगा। देखा तो निकल आई ६० वर्षकी उमर तीनोंकी कटी हुई। ब्रह्माने कहा लो, तेरा काम बन गया, ६० वर्षकी उम्र और ले लीजिए।

अब हो गया मनुष्य १०० वर्ष का। तो ४० वर्ष तक तो ईमानदारीकी उमर है सो खूब मौजसे रहे। केवल एक रहस्य पर जाना, कुत्ता और गधों पर न जाना। बादमें २० वर्षकी उमर गधे की काटी हुई मिली, सो लड़कीका विवाह होगा, खर्चा अधिक होगा, लड़के को पढ़ाया, लडकीको पढाया। यहां वहा भागा। गधेका जैसा बोझा ढोने लगा। इधर उधर जाने लगा और रूखा सूखा टाइम गैरटाइम खाने को मिलता, जल्दी खाया फिर भगे, यों ६० वर्ष बीत गए। अब हो गए लड़के बडे, काम सभालने वाले लड़के हो गए और यह हो गए रिटायर। लो अब वह हो गया वहू बेटोंके आधीन। देहातों में ऐसा ही होता है। शहरोंमें तो ऐसा होता है कि जिसके नाम जायदाद है उसकी कदर है, मगर देहातोंमें जायदाद नहीं चला करती। वहा तो लड़के बड़े हो गए तो बाप लड़कोंके आधीन हो गया। तो अब तो यह हो गया रिटायर। ६० वर्ष व्यतीत हो गए, कुत्ते की उमर आगई। सो जिस लड़केने खिलाया उसीके गीत गाने लगे। अब आंखोंसे कम दीखता है, कानों से सुनाई कम पड़ता है, चलते नहीं बनता है, किसी बहूको खिला दिया तो कुछ खाने को मिल गया। जो कुछ मिल गया सूखा रूखा खा लिया और उसीमें संतोष किया। यह आ गई ना उल्लूकी उमर, सो एक स्थान पर अधे बने बैठे हैं। जो कुछ रूखा सूखा मिल गया, खा लिया।

इसमें ग्रहण करनेकी बात केवल इतनी है कि हम अपनी उम्रमे जल्दी जल्दी चेत जायें तब तो हमारा भला है अन्यथा समर्थ हालतमें हमने विवेक न बनाया तो क्या हालत होगी ? असमर्थ हालतमें वही अपनी प्रगति करता है जिसने समर्थ हालतमें की। यदि कोई मनुष्य समर्थ उम्रमें तृष्णा और मोह ही किये जाता है तो बुढापेमें तृष्णा मोह बढ़ जाता है। हमने कर्तव्य मुख्यरूपसे दो ही हैं। एक प्रभुकी भक्ति और दूसरे आत्माकी उपासना। और कोई तीसरा काम किसी को भी करने का नहीं पडा है। यों तो बहुतसे काम है, पर जहां आत्मशान्तिका मार्ग मिले ऐसे कार्य दो ही हैं।

उन दो मे मुख्य तो आत्मउपासना है और आत्मउपासनाकी इच्छा वाले पुरुषोंको भेद स्थित रहने पर प्रभुभक्ति होती ही है। व्यवहारसे पञ्चपरमगुरुका शरण है और निश्चयसे अपने आपके आत्माका शरण है। आत्मउपासनाका अर्थ है कि अपने आपका ऐसा अनुभव करो कि यह मैं केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हू। उपयोगसे तो इतना यह अपनेको चाहे नानारूप अनुभव करले, चाहे एकरूप अनुभव करले। दोनों बातें कर सकता है। तो यह अपने को नानारूप अनुभव करता है कि मैं पुरुष हू, मैं अमुक हू, मैं ऐसी प्रतिष्ठा वाला हू, मैं अमुक नाम वाला हू, किसी भी रूप नाना अनुभव करे तो उसमें अपने प्रभुका स्वरूप ढक जाता है। प्रभुका दर्शन नहीं होता है।

यदि अपनेको एक ही रूप अनुभव किया, मैं ज्ञानमात्र हू, केवल जाननमात्र अपनेको माना तो इससे अपने प्रभुके दर्शन होते हैं। प्रभुका अर्थ है उत्कृष्ट ज्ञानानन्दस्वरूप। उत्कृष्ट ज्ञानानन्दका जो स्वरूप है, वह अनुभवमें उतरता है और यही स्थिति आनन्दकी है। बाकी सब परावलम्बी स्थितिया केवल आसक्तिके लिए हैं। परिवारसे राग करके किसका पूरा पड़ा ? बड़े पुरुषोंके भी चरित्र देखो कि उन्होंने अपने जीवनमें राज्य भी किया, प्रतिष्ठा भी बढ़ाई, परिवारसे प्रेम रहा, पर अन्तमें बिछुड़ना ही सब को पड़ा। चाहे वह तीर्थंकरका घर ना हो, चाहे किसी अन्य महापुरुषका घराना हो, किन्तु बिछुड़ना सबको पड़ा। कोई साधु बनकर चला गया तो कोई भोगोंमें रमकर चल बसा, पर सदा किन्हीं का साथ नहीं रहा। इन समागमोंसे मिले हुऐ पदार्थोंसे किसीका साथ न रहेगा। सब बिछुड जाएगे, कोई काम न आयेगा।

जब सब बिछुड़ेंगे ही तो इन पदार्थोंका सकल्प विकल्प करके पाप बसाकर विकल्प क्यों किया जाए ? केवल अपनी दृष्टि की जाए। हम ऐसा वातावरण रखें न्यायका कि जिससे हम अपने आत्माका अनुभव करनेके योग्य बने रहें। अन्याय करनेमें भी पात्रता नहीं रहती, जिससे हम अपने आपके और प्रभुके अनुरागी बन सकें। चरित्रवान् पुरुषोंको, शुद्ध श्रद्धावान पुरुषोंको, न्यायनीतिवान् पुरुषोंको कोई सकट भी आ जाए तो उसमें भी ये प्रसन्न रहते हैं। मैंने कुछ न कमाया तो गँवार तो नहीं। और न्याय नीति से रहित होकर लाखोंका वैभव सचित कर लें तो भी उन्हें प्रसन्नता नहीं रहती, शाति नहीं रहती, क्योंकि उन्होंने अपना सब कुछ गवा दिया। सब कुछ जो मिला है उसे जोड़ा है। उससे आत्मामें न ज्ञान आता है और न आनन्द आता है। ऐसी कमाई को कमाई नहीं कहते। कमाई तो कम आई

है। कमानेका अर्थ है कम आना। सन्धि-विच्छेद कर लीजिए। असली कमाई तो वही है कि जो मनुष्यभव मिला है, उसकी रक्षा कर लीजिए।

मनुष्यका चारित्र और श्रद्धान् यदि प्रबल है तो कर्मोंके उदयसे अनेक ठोकरें भी मिले तो भी उसकी प्रसन्नताको कोई छीन नहीं सकता। दूसरो पर आफत ढाकर, दूसरोंको पीड़ित करके अथवा अपनी अनीति का विषय बनाकर और कुछ लौकिक विभूतिमें हम बढ़ भी जाए तो भी जीवनमें संतोष पाना तो दूर रहा, दिल बुझा बुझासा रहता है, क्योंकि हमने अपना शुद्ध निधान खो दिया। इसलिए वैभव से भी बढ़कर अपने श्रद्धान् और चारित्र को तुम जानों। श्रद्धान् कैसा हो? इसकी कई सीढिया हैं। हमारा देव शास्त्र गुरुके प्रति श्रद्धान् होना चाहिए।

मेरा अतिम विकास जो हो सकता है, वह है अरहत सिद्धदेव। मेरे संतोषके लिए कोई आदर्शरूप है तो वह है परमात्मप्रभु। उसके सिवाय अन्य के लिए देवरूपमें मेरे हृदयमें स्थान नहीं है। हमारा दृढ श्रद्धान् हो, जहा वस्तु मिल सकती है। धन चाहिए तो धनिकका श्रद्धान् चाहिए और यदि संतोष चाहिए, आनन्द चाहिए, निर्मलता, स्वच्छता, परमपद चाहिए, अपना सर्वस्व चाहिए तो उसमें जो उत्कृष्ट है, अरहंत और सिद्धदेव, ज्ञानानन्दमय परमात्मा उसकी ही भक्ति चाहिए। देवभक्ति, देवश्रद्धान् दूसरे शास्त्र श्रद्धान् ऐसा देव बननेका उपाय जहां कहा गया है, उन वचनोंका आदर करना, यह ही वचन हितकारी है, सत्य है। यह हुआ शास्त्रका श्रद्धान्। और गुरु वह है जो देव बननेके उपायमें लग रहा हो अर्थात् जो सहज वैराग्य और ज्ञानमें बढ रहा हो, जिसको ससारकी मायासे कोई प्रयोजन नहीं है, जो केवल ज्ञानानन्दस्वरूप पर ही मुग्ध है, उसका श्रद्धान् करिए।

आत्म-उपासक महान् आत्मगुरु कहलाता है—ऐसे गुरुओंके सत्संगसे ही मेरा हित हो सकता है। यों देव शास्त्रगुरुका श्रद्धान् चाहिए और इस श्रद्धान्का प्रयोजन है कि हम भी उस वैभवको प्राप्त करें। उसका उपाय है भेदविज्ञान। इसके लिए आत्मा और अनात्माके स्वरूपका श्रद्धान् चाहिए। यह ज्ञानानन्द मात्र तो मै हू और ये धन दौलत, मकान सर्वरागादिक विकार ये सब आपसे न्यारे हैं। यों आत्मा और अनात्मा का श्रद्धान् चाहिए। फिर इसके बाद समस्त आत्माओंका विकल्प तोड़कर केवल ज्ञानस्वरूप ही मेरी दृष्टिमें रहे—ऐसी समाधि चाहिए। यदि यह मेरा पुरुषार्थ मेरेसे बन सके तो यह दुर्लभ जीवन हमारा सफल है अन्यथा आहार, निद्रा, भय, मैथुनमें रहे तो पशुसे हमारी विशेषता कुछ नहीं है। आहारकी बात तो कही ही गयी थी।

निद्राकी बात देखो कि पशु जल्दी जग जाते हैं, पर मनुष्यको जगाने के लिए एलार्म घड़ी चाहिए और फिर थोड़ी घण्टी बजनी चाहिए। इतने पर भी न जगे तो झकझोर कर उठानेकी जरूरत पड़ती है। निद्रामें भी मनुष्य पशुसे गया बीता है। भयकी बात देखो कि जब पशुओं पर डण्डे लगते हैं, तब उन्हें भय लगता है, पर इन मनुष्योंको तो सम्पदा भी मिली, तब भी निरन्तर भय रहता है। कैसे-कैसे कानून बन रहे हैं? यह धन रहेगा या न रहेगा? कैसे-कैसे चीजों पर कण्ट्रोल हो रहा है? कहीं स्वामित्व मेरा नष्ट न कर दिया जाए? और जमींदारी मिटनेके बाद भय और बढ रहा है, पर पशुओंको कहां इतना भय है? भयमें पशुओंसे भी गए बीते मनुष्य हो रहे हैं।

मैथुनकी बात सब जानते हैं। पशुओंके बारहों महीन कामविकार नहीं जागता है। उन सबके ऋतुबँधी रहती है। पर मनुष्य तो बारहों माह कामविकार करते हैं।

एक ज्ञानस्वरूप निज भगवान्‌की श्रद्धा नहीं की, इसकी उपासना नहीं की तो हमारा जन्म पशुओंसे अच्छा है, यह कोई नहीं कह सकता। कवियोंने बताया है कि 'धर्मेण हीन' पशुभि' समान'। धर्मसे रहित मनुष्य पशुके समान है। कवि मनुष्य था, इसलिए मनुष्यका पक्ष लिया है, पर यथार्थसे बिना धर्मके मनुष्य पशुसे भी गया बीता है। आप ही कहो कि पशुसे भी गया बीता है या नहीं? अच्छा सुनिए— धर्मरहित मनुष्य पशुसे भी हीन है, क्योंकि मनुष्योंकी पशुओंसे उपमा दी जाती है। इसका स्वर कोयलके समान है, इसकी कमर सिंहके समान है, इसकी चाल हंसकी तरह है, इसकी नाक सुवाकी तरह है। तो यह बतलाओ कि जिसकी उपमा दी जाती है। वह बड़ा है या जिसके लिए उपमा दी जाए वह बड़ा है। जिससे उपमा दी जाए, वही बड़ा है।

धर्मका याने आत्मदृष्टिका व प्रभु भक्तिका और जीवोंके परोपकारका हिसाब यदि हटा दिया जाए और फिर मनुष्य और पशुकी तुलना की जाए तो हम मनुष्योंको पशुओंसे बढ़कर नहीं पा सकते हैं। हमारी श्रेष्ठता और सफलता ज्ञानार्जनमें, धर्मदृष्टिमें, तत्त्वचिंतनमें, ज्ञानानुभवमें, सब जीवोंके स्वरूपमें, एकरस मिलाकर फैल जानेमें हम लोगोंकी सफलता है। हमें बडा काम करनेको पडा है। संसारके अन्दर मोही प्राणियोंको देखकर हम उनका आदर करने लग जाते हैं। सो उनको न तकें, हम आप आदर्श संतोंको तकें या अपनेको देखें। यहां वोटिंगसे काम न चलेगा। अनन्त जीवोंसे भी बढ कर एक ज्ञानी पुरुष होता है। उस ज्ञानी विरक्तका वोट लें। उन अनन्त

मोही जीवोंका वोट न लें। यह अंधेरनगरी है, यहां मोहियोंकी वोटसे काम न चलेगा।

कहते है ना कि 'अंधेर नगरी बेवकूफ राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।' पहुच गए गुरु शिष्य अंधेरनगरीमे। गुरुने शिष्यको भेजा कुछ खानेका सामान लेने। वह गया, पूछा कि आटा क्या भाव ? टके सेर। भाजी क्या भाव ? टके सेर। उसने सोचा कि वहुत अच्छा वाजार हैं। टके सेर मिठाई विकती हैं तो मिठाई ही क्यों न खाये ? तो खूब मिठाई ले आया। स्वयने खाया और गुरुजी को खिलाया। गुरुजीसे कहा कि महार ज इस नगरीमें ६ महीने ठहर जाओ। यहां रहकर खूब मिठाई खाकर मोटे हो जाएगे। गुरुजीने कहा यहा मत ठहरो, यह अंधेरनगरी है। लेकिन उसकी हठसे ठहर गए।

कई दिनोंके वाद एक ऐसा मामला फंसा कि एक वावू साहवने न्यायालयमें एक केस दायरकर दिया। सेठके विरुद्ध मामला किया कि सड़क के दूसरे किनारेसे वावूजी जा रहे थे और कोई ४० फुट दूसरे किनारे पर एक मकानकी ईंट खिसक गई। सो मुकदमा दायर कर दिया कि इस वनिये ने ऐसी कच्ची भींत वनाई कि ईंट गिर गई। यदि मैं यहासे न जाता और उसके पाससे जाता तो मेरे सिर पर लगती। कहा ठीक है। वह वनिया बुलाया गया और पूछा कि तुमने कच्चा मकान क्यों वनाया कि ईंट खिसक गई। कहा कि महाराज ! मैंने वड़ा पैसा खर्च किया, मेरा कसूर नहीं है, कारीगरका कसूर है। कारीगरको बुलवाया, पूछा कि तूने ऐसा मकान क्यो वनाया कि ईंट गिर गई। कारीगरने कहा कि महाराज ! आप सूतसे नाप लो, अगर दीवाल सही न निकले तो हमारा कसूर है। इसमें तो गारा गीला कर देने वालेका कसूर है। उसे बुलाया तो कहा कि गारेमें पानी डालने वालेका कसूर है। पानी डालने वालेको बुलाया गया और पूछा कि तूने पानी क्यों अधिक डाल दिया कि गारा गीला हो गया ? कहा महाराज! मेरा कसूर कुछ नहीं है। यह मसक वनाने वालेका कसूर है। इतना वड़ा मसक क्यों वनाया ? यह चल रहा है अंधेरनगरीका मुकदमा। मसक वाला वुलाया गया और राजाने पूछा कि तूने इतनी वड़ी मसक क्यों वनाई कि गारा गीला हो गया ? कहा महाराज ! हमारा कोई दोष नहीं है। इसमे तो पशु वेचने वाले का दोष है। उसने छोटा पशु क्यों न वेचा ? अब पशु वेचने वाले को वुलाया गया। उसके पास कोई उत्तर न था। सो राजाने कहा कि इसे फांसी दे दीजिए। यदि इसने वड़ा न वेचा होता तो न वड़ी मसक वनती और न गारा गीला होता और न ईंट खिसकती। सो उसे

फासीका हुक्म दे दिया। चढा दिया गया फासीके तख्त पर वह पशु बेचने वाले का गला बडा पतला था और फासीका फंदा बडा था, सो उसका गला फंदेसे न कसे। राजासे यह बात फासी देने वालोंने कही। तो राजा ने कहा जावो जल्दी करो फासी दो। किसी मोटे गले वाले को बाहर से पकड़कर ले आवो। सो वे मोटा आदमी लेने गए तो वहा पर वही शिष्य मिल गया। वही टके सेर भाजी वाले महाशय। सो उसे ही पकड कर वे ले जाने लगे। शिष्य कहता है कि गुरु जी क्या करें, फासीके फंदेसे कैसे छूटें? गुरु जी ने कहा कि एक उपाय है। तू फासी पर चढ जाना। फिर मैं तुझसे फासी पर चढ़नेके लिए झगडूँ, तो तू मुझसे पहिले फासी पर चढ़नेके लिए लडाई करना। यह कहना कि पहिले मैं चढूँगा।

अब वह शिष्य फासीके तख्त पर चढ़ाया गया, तो गुरुजी कहते हैं कि अबे हट, मैं चढूँगा। दोनों लडने लगे। राजा ने पूछा कि कौनसी ऐसी बात है जिससे फासीके तख्त पर चढने को लडते हो? कहता है साधु राजासे कि तू चुप रह, तुझे पता नहीं है। इस समय ऐसा मुहूर्त है कि जो फासी पर चढ जाये वह सीधा वैकुण्ठ जाये। तो राजा कहता है कि महाराज मैं पहले फासीके तख्त पर चढूँगा। सो जैसे अंधेरनगरीमे कौन किसकी सलाह माने? इसी प्रकार इन ससारी लोगोंके बहुमतसे काम न चलेगा, किन्तु जो अपने ऋषियोंने बताया है, गुरुजनों ने उपदेश दिया है उसमें अपना निर्णय बनाओ।

भैया! देखो सभी चाहते हैं कि मेरी शोभा बढे, पर आप बतलावो लोकव्यवहारमें भी शोभा अच्छे गहने पहिननेसे बनती है क्या? यह तो आजकल स्त्रिया भी न मानेंगी। पहिले जरूर ऐसा रिवाज था कि सरमें मढक कानमे ततैया, नाकमें मकड़ी खूब लटकाते थे। वह रिवाज अब कम हो गया है। क्या गहनोंसे मनुष्यकी शोभा है, क्या अच्छे कपडे पहिनने से मनुष्यकी शोभा है? बढिया चमकदार रेशमी कपडे पहिनकर आज भी कोई निकले तो लोग यह कह देंगे कि यह तो गुण्डोंका फैशन बनाये है। तो कपड़ोंसे भी शोभा नहीं होती। सादे मोटे खादीके कपडे पहिने और परोपकारमें तत्पर रहे, उससे मनुष्यकी शोभा है।

मनुष्यकी शोभा वैभवसे नहीं, शरीरकी सजावटसे नहीं, मनुष्यकी शोभा ज्ञानसे है। और फिर यदि यथार्थ वस्तुस्वरूप का ज्ञान जगे तब तो उसकी शोभाका कहना ही क्या है? अब भी सुख रहेगा और अगले भवमें भी सुख रहेगा। इसलिए एक ही बात मिल जाये कि धार्मिक ज्ञान बढाना है। जैनसिद्धान्तमे वस्तुका स्वरूप बताया है। वस्तुस्वरूपको पहिचानना

मोहके नष्ट करने अचूक औषधिका काम देता है। मोह ही एक पिशाच है जो जीवको कुपथमें ले जाने वाला है। यह मोह भाव हटे तो इसमें ही जीव का कल्याण है। इन सर्वसंकटोंको दूर करने के लिए एक ज्ञानार्जनका सहारा लीजिए और एक घन्टे, डेढ़ घन्टा कमसे कम विशिष्टरूपसे श्रम-पूर्वक ग्रन्थोंका अध्ययन कीजिए तो यह प्रयत्न अपने लिए संतोषकारक होगा।

भैया! ऐसा अनुभव करो कि जो भी चीजें मिली हैं, वे सब बिछुड़ने के लिए हैं, किसी भी भवमें साथ नहीं जाने वाली हैं। उनसे स्नेह करनेसे लाभ नहीं है। अतः परको पर जानकर अपने आपका निदान देखो, अपने आपमें संतोष करो। तब यह बुद्धि हो जायेगी "कि होता स्वय जगत् परिणाम मैं जगका करता क्या काम?" ऐसा परम निज आत्माको परम विश्राम प्राप्त होगा। सो भैया अपने हितके लिए कहना किसीसे नहीं है। चुपचाप ही अपनेमें गुप्त रहकर गुप्तमर्मके गुप्त ही दर्शन कर अपने धर्मको पूर्ण करो, इस ही उपायसे हमारा और आपका जीवन सफल है।

जितने भी जीव हैं वे सब एक समान स्वरूप वाले हैं। कर्मोंके भेदसे भले ही भेद हो गया है मनुष्योंमें या पशु पक्षियोंमें। भेद माना जाता है कि यह पशु है, यह पक्षी है, यह मनुष्य है और मनुष्योंमें भी यह अमुक परिस्थितिका है, ऐसी हालतका है आदिक भेद मान लिए गए हैं, पर जो जीवस्वरूप है, तत्त्व है वह सब एक समान है। उस जीवस्वरूपमें रंच भी अन्तर नहीं है। चाहे पशु हो, चाहे मनुष्य हो, चाहे हरिजन हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे ब्राह्मण हो, प्रत्येक जीवका स्वरूप बिल्कुल एक समान है। रंच भी अन्तर नहीं है पर कर्म इनके साथ लगे हैं, इस वजहसे थोड़ासा आचरणकी वजहसे श्रद्धान् ज्ञान व चारित्रके विविध विकासके कारण अन्तर आ गया है; पर अंतरगमें देखो तो सब जीवोंका स्वरूप एक समान है। जो इस तरहसे सब जीवोंको देखता है वह ज्ञानी पुरुष है।

चाहे देहातका हो, चाहे शहरका हो, चाहे छोटी बिरादरी का हो चाहे बड़ी बिरादरी का हो, जो सब जीवोंको स्वरूप एक समान मान सकता है वह तो है ज्ञानीपुरुष और जिसने ऊपरकी माया पर ही दृष्टि दी, रंगरूप पर ही दृष्टि दी और भिन्न-भिन्न जीव पहिचाने, वह है मिथ्यात्व बुद्धि वाला जीव। जो ज्ञानी पुरुष होता है उसकी सब जीवोंके प्रति कैसी प्रवृत्ति होती है कि उसकी चाह है कि मेरे कारणसे किसी जीवको कोई कष्ट न हो। जिसने सब जीवोंको अपने जीवके समान मान लिया, उसका नियमसे यह भाव होगा कि किसी दूसरे जीवको मेरे कारण कष्ट न हो। और जिनको

सब जीव अपने समान नहीं नजर आते हैं उनकी बुद्धि दूषित है और वे अन्य जीवोंको दु खी भी करते हैं। जिसको अपना सुख चाहिए उसका प्रथम कर्तव्य यह है कि वह सब जीवोंको अपने जीवके समान मान ले। यह जड यदि न पकड पाई तो प्रवृत्ति हमारी सही नहीं हो सकती। कुछ न कुछ विरोधकी, विवादकी, दूसरोंको नीचा दिखानेकी, लडने झगड़ने की, कितनी ही तरहकी प्रवृत्ति खोटी हो जायेगी। और जब सबको अपने समान माना तो अन्तरसे खोटी बुद्धि अपनी न आयेगी। सो उसका व्यवहार भला होगा।

भैया! जिसको सही ज्ञान है वह पुरुष ५ पापोंसे दूर रहता है। ५ पाप हैं—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह। किसी दूसरे जीवको सताना, उसके प्राण लेना यह सब हिंसा है। जैसे मुर्गी मारे, बकरा बकरी मारे अथवा छोटे बडे गाय भैंस कुछ भी हों उनकी हत्या करे, सताये, चिड़ियोंको पकडे, उनको सताये यह सब हिंसामें शामिल है। भावोंकी बात देखो कि एक गृहस्थ खेती करता है और खेती करते हुएमे पक्षियोंको भी भगाया जाता है, सूकर आदि कुछ आ जाते हैं जमीन को खराब करने वाले और फसलको उखाड़ने वाले तो ऐसे जीवों को भी भगाते हैं। और वे उद्दण्ड ही हो जाये और उनको भगाते हुएमे उनको पीडा भी पहुचे या किसी तरहका उनका नुक्सान भी हो तो उस किसान का भाव खराब नहीं है। किसानका भाव ऐसा है कि हमारी फसलकी रक्षा बनी रहे, हमारा जीवन भी अच्छी तरह चले और दूसरोंका भी चले।

एक गृहस्थ पर यदि कोई डाकू, चोर, दुश्मन जान लेने आ जाये, धन लूटने आ जाये या अपनी स्त्री, बहू बेटियों पर कोई बुरी दृष्टि करे तो ऐसी हालतमें गृहस्थके पास लाठी हो, तलवार हो, भाला हो, सब शस्त्रोंसे उसका मुकाबला करता है और वे चोर, डाकू, शत्रु उद्दण्ड होकर उस गृहस्थ पर चढ ही आए हों तो वह गृहस्थ वीरतासे मुकाबला करेगा और वह मर भी जाये तो भी इस गृहस्थका आशय खराब नहीं है। और निरपराध मुर्गी पकडे, मारे, बकरा बकरीका कत्ल करदे, चींटी मारे तो इनमें उसे हिंसाका दोष लगता है और उद्दण्ड शत्रुवों, डाकुवोंका मुकाबिला करे और उनमेंसे कोई वह गृहस्थ जानसे भी मारे तो उसमें गृहस्थके कर्तव्यमें दोष नहीं लगता है। तो अब समझ लीजिए कि जो लोग हिंसा करते हैं, निरपराध जीवोंको मारते हैं उनको पाप लगता है और इसके फलमें जो आपत्ति बीतेगी वह आगामी कालमें बीतेगी। अभी तो पुण्यका उदय है सो पता नहीं पड़ता है, मस्त हो रहे हैं, मगर किए हुए पाप अधिक दिन नहीं छूटते। उनका दु ख भोगना पड़ता है।

रह सका हो तो बताओ। अरे ! ऐसे व्यक्ति चार भाइयोंमें बैठ नहीं सकते, गावमे रह नहीं सकते। तो चोरी करना पाप है। इसका ध्यान हो तो किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं आ सकती है।

चौथा पाप है कुशीलका। दूसरेकी स्त्री पर, बहु-बेटियों पर बुरा विचार करना, यह बहुत बडा पाप है। इसमें मन स्थिर नहीं रहता है और मन अटपट सोचा करता है। इसलिए यह पांचवा पाप भी त्यागनेके योग्य है।

पांचवा पाप है किसी भी प्रकारका परिग्रह रखना। धनको आवश्कता से ज्यादा जोड़ना, १०–२० आदमियोंसे अपनेको बडा कहलवाने का प्रयत्न करना यही परिग्रह है। इनमे आत्माका पूरा न पड़ जाएगा। इससे तो आत्माको दु ख होगा। इस कारण परिग्रहको तो तुच्छ जानकर भगवान्की भक्ति और अपने आत्माकी दृष्टिमें लगाना चाहिए।

इन ५ पापोंमेंसे मुख्य पाप है हिंसा। किसी जीवका सताना या बध करना यह दूसरों पर बहुत बडा अन्याय है। जब हमें अपने प्राण प्यारे हों तो हमारे ही समान सब जीव हैं, उनको भी अपने प्राण प्यारे हैं। पर इस व्यर्थके भ्रममें उनका अविवेक उन्हें पीड़ित करता है, दु-ख देता है, यह उन पर बड़ा अन्याय है। सो अपनी सब बातें सोचकर अपनेमें ऐसा साहस बनाओ कि सब जीवोंके सुखी होनेकी भावना रखेंगे, किसी जीवको दुखी न करेंगे। सो करने योग्य काम यह है कि जीवोंको न सताया जाए। मास कोई खाता हो तो अपने दिलमें ऐसी नियत बनालो कि दो दिनकी जिन्दगी है, उससे मुझे बड़ा पाप होता है और आगेके दुखोंका बीज बनता है। इसके कारण आगे दुख भोगना पडेगा। सो अपने गांवमें कोई मास खाता हो तो उसे समझावो, चार आदमी मिलकर समझावो और उसका त्याग करावो। खुदमें अगर कमी हो और भगवान्के प्यारे बनना हो तो तुम्हें इन पापोंसे दूर रहना चाहिए।

जिनेन्द्रदेवके उपदेशोंमें प्रधान उपदेश यह है कि यह जान जायें कि किसी द्रव्यका कोई दूसरा द्रव्य कुछ नहीं लगता है, मेरी आत्माका जगत्में कुछ भी नहीं है—ऐसा श्रद्धान् करें तो धर्म आगे मिलेगा और कुछ मेरा है, ऐसा अगर विश्वास है तो यह अधर्म है। भगवान्की पूजा तो करें, और दर्शन करें, गुणगान करें, उत्सव मनाएँ, मूर्ति भो पूजें, खूब भक्ति भी करें और परपदार्थोंमें ऐसा श्रद्धान् रहे कि यह मेरा है, घर मेरा है, कुटुम्ब परिवार मेरा है, और जो जीव हैं ये गैर हैं, पर हैं कुछ नहीं हैं—ऐसा श्रद्धान् बना रहे तो बतलावो हमने धर्म किया कि नहीं किया ? नहीं किया ? भगवान्

कालद्रव्यकी जो परिणति होती है वह एक-एक समय है। वह है व्यवहार-काल पर्यायकाल। तो यह शका यहा कर रहे हैं कि समय ही निश्चयकाल है और कोई निश्चयकाल द्रव्य नहीं है। तो उत्तरमें यह आता है कि समय तो परिणति है क्योंकि समय तो नष्ट होता जाता है तो समय पर्याय है। जो नष्ट हो वह पर्याय है। यदि कोई भी पर्याय द्रव्य विना नहीं हो सकती तो समयपर्याय कैसे द्रव्यके विना होगी ? यह विचार करिये।

यदि वह समय पुद्गल पदार्थकी पर्याय है तो पुद्गल परमाणु पिण्डरूपसे निष्पन्न घट आदिक जैसे मूर्त होते हैं, उसी तरह परमाणु के पिण्डमे उत्पन्न होने वाला समय माना तो यह समय व उसके वाद में निमित्त हैं याने एक पलक अथवा घड़ी आदि जो कालकी पर्यायें हैं वे पहिले दिख जानी चाहियें क्योंकि पुद्गल द्रव्यको, समयको तुमने कार्य मान लिया सो तो नहीं है क्योंकि उपादानकी तरह कार्य हुआ करता है। जैसे कि मिट्टीका घडा है तो वह घडा पिण्डरूप है। अत सिद्ध है कि समय जो गुजर रहा है वह पुद्गलकी पर्याय नहीं है। वह तो कालद्रव्यकी पर्याय है। जैसे-जैसे काल व्यतीत होता जाता है तैसे-तैसे ही कालपर्याय चलती रहती है।

भैया ! समय गुजर रहा है और उस समयके गुजरनेके साथ ही हमारा जीवन गुजर रहा है। अब देखा जाये जो आज ५०, ६०, ८० वर्षके हैं, वे भी तो कभी इन जैसे वच्चे थे। खबर होगी ही अपनी थोडी थोडी। आज बहुत बूढ़े बने बैठे हैं, पर कोई जमाना ऐसा था कि इन बच्चोंकी तरह थे। इन बच्चोंसे भी हृष्ट पुष्ट थे। इन बच्चोंके तो अब वैसा शरीर ही नहीं है जैसा कि इन बूढोंका था। उस जमानेमें घी, दूध, मक्खन जितना रहता था उतना अब नहीं है। इससे बच्चे ताकतवर रहते थे। तो पहले जिस जमानेमें आप बच्चे थे उस जमाने को गुजारा और फिर क्या स्थिति हुई कि जवान हुए, अब वृद्ध हो गए हैं। तो समयके अनुसार यह जीवन गुजर रहा है। तो ऐसे ही समय गुजरते गुजरते एक दिन वह आयेगा कि जिन्दगी न रहेगी। यही हालत होती है ना सबकी। तो इस मनुष्यकी जिन्दगीसे जीकर हमने यदि मोह ममतामें ही समय गुजार दिया तो हाथ कुछ भी न लगेगा। जो कुछ लाये हैं साथमें, वह खोकर चले जायेंगे।

भैया ! जब बच्चा पैदा होता है तो उसकी मुट्ठी बंधी रहती है। वह हाथ बाधे हुए रहता है ना ? पैदा होते समय उसकी मुट्ठीमें ताजा पुण्य रहता है, ऐसा कवियोंने अलंकारमें कहा है। और वह मुट्ठी बतलाती है कि बहुत

सा पुण्य साथ लाये हैं। जैसे-जैसे वह बच्चा बडा होता है, समर्थ काल आता है तो वह मुट्ठी बंधी नहीं रहती है। मुट्ठी खुली भी रहती है, मरण समय तो हाथ पसार जाता है। सो मुर्दा तो यह बतलाता है कि सब कुछ झाड कर चले जा रहे है। मुट्ठी खोले जा रहे हैं तो सब कुछ खोकर जा रहे हैं यह तो कवियोंका अलंकार है। मनुष्यभव पानेका लाभ तो यह है कि प्रथम तो पाये हुए समागमोंसे प्रेम न करो। ये कुछ रहनेको नहीं हैं। इनसे बढ़िया समागम दूसरोंके पास है, लेकिन मोहका ऐसा कुटेव है कि अपनेको घटिया भी समागम मिला हो, मगर ममता वहीं पहुँचेगी, अच्छे पर ममता न पहुचेगी। तुम्हारे घरके बच्चोंके वैभवसे अच्छे अच्छे वैभव और भी हैं, अच्छे बच्चे औरोंके भी हैं, मगर खुदने जिनको मान लिया कि ये मेरे हैं, वे ही उन्हें सब कुछ दिखते और बाकी कुछ नहीं दिखते हैं।

एक सेठानीके यहा एक नौकरानीने नौकरी करली। २-१ दिनके बाद में सेठानीके बच्चे स्कूल जाते समय कलेवा न ले गए सो सेठानीने एक डिब्बे मे पाव डेढ पाव मिठाई इस नौकरानीको दी और कहा कि जावो, उस स्कूल मे हमारे दो बच्चे पढते हैं, सो उन्हे दे आवो। तो नौकरानी कहती है कि हम तो आपके बच्चोंको पहचानती भी नहीं हैं। तो सेठानीने कहा कि मेरे बच्चोंका क्या पहिचानना है? तू तो स्कूल जा, वहां पर जो सबसे अच्छे बच्चे तुझे दिखे उन्हे दे आना। वे मेरे दोनों लड़के सुन्दर हैं, रूपवान् हैं। उस सेठानीको यह गर्व था कि मेरे बच्चोंसे बढकर सुन्दर, कातिमान और कोई बच्चा ही नहीं है। सो कहा कि मेरे बच्चोंको क्या पूछती हो, जो सबसे बढ़िया स्कूलमे लगें सो उन्हे दे आना। नौकरानी स्कूल गई और स्कूलमे जो भी बच्चे थे उनको देखा। सेठानीने कहा था, जो भी सुन्दर बच्चे लगे वे ही मेरे हैं। सेठानी यह जानती थी कि मेरे बच्चेसे बढकर कोई बच्चा नहीं है। उस नौकरानीका भी बच्चा उसी स्कूलमे पढता था, उसे तो अपना ही बच्चा प्यारा था। सो उसने उसे ही मिठाई खिला दी और चली आई।

जब छुट्टी पाकर लड़के घर आए तो मासे कहा कि आज आपने हमे कुछ खानेको न भेजा था। सेठानीने कहा कि भेजा तो था नौकरानीके हाथ। सेठानीने नौकरानीसे कहा कि तूने मेरे बच्चोको मिठाई नहीं दी तो नौकरानी कहती है कि मैने तो दे दी थी। आपने यही तो कहा था कि जो सबसे अच्छे बच्चे लगें उन्हें खिला देना। तो मुझे तो एक अपना बच्चा अच्छा लगा, सो मैने उसे ही खिला दी। वह सेठानी समझती थी कि मेरे जैसा प्यारा सुन्दर कांतिमान् बच्चा लोकमें नहीं है। ऐसे ही सबको अपने-अपने बच्चे अच्छे लगते हैं। चाहे नाक बहती हो पर वह ही प्यारा लगेगा, दूसरेका बच्चा

प्यारा न लगेगा। तो यह सब मोहकी करामात है कि कुछमें अपनी ममता रखली है और अपने भावको खराब कर लिया है।

भैया! बड़ी जिम्मेदारी है अपने पर अपने आपकी, जैन दर्शन पाकर तो और बड़ी जिम्मेदारी हो गई है। क्योंकि अपना उद्धार हो सकता है तो जैनसिद्धान्तमें बताए गए मार्गसे ही हो सकता है। यह तो सब मानते हैं कि मोह छोड़ना चाहिए। उस मोहके छोड़े बिना भला नहीं हो सकता है, पर यह तो बतलावो कि मोह मिटे कैसे, उसकी तरकीब क्या है? तो मोहके मायने क्या हैं कि अपना कुछ मानना। किसीको कुछ माने, इसीके मायने मोह है। और मोह मिटानेके मायने क्या हैं कि अपना कुछ न मानना। यही मोहका अभाव।

मेरा कुछ नहीं है, किसीका कुछ नहीं है– यह बात तब समझमें आ सकती है जब कि यह दृष्टिमें आए कि प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण है, स्वतन्त्र है। सब अपनी अपनी परिणतिसे परिणमते चले जाते हैं, कोई किसीको कुछ छूता नहीं है। द्रव्य, गुण, पर्याय किसीको कोई करता नहीं है। भले ही विभावपरिणमनमें दूसरे पदार्थ निमित्त हो रहे हैं। निमित्तके बिना विभाव-परिणमन होता नहीं है, फिर भी किसीका कोई कुछ परिणमन नहीं करता। जब यह बात समझमें आयगी तब ध्यान जगेगा कि किसी पदार्थका अन्य कुछ नहीं है। मेरा जगत्में कहीं कुछ नहीं है, मेरा मात्र हूं– ऐसी समझ होने का नाम ज्ञान है। और जिसके उपयोगमें जितना ज्ञान बसा होगा उसको उतना सुख है। ज्ञानके मार्गसे चलते हुए जीवके पुण्य बन्धता है तो बहुत अधिक पुण्य बन्धता है। पुण्यकार्यमें पुण्य बन्धेगा, यों जानकर करनेमें पुण्य अधिक नहीं बन्धता है, किन्तु ज्ञानके मार्गमें लगे रहने पर जो राग होता है उसके अधिक पुण्य बन्धता है।

ज्ञानका मार्ग इतना उपादेय है कि उसके प्रतापसे इस भवमें भी सुख लो, अगले भवमें भी सुख लो, और मोक्षका मार्ग मिल तो गया तो वहां भी आनन्द लो। ज्ञानमार्गमें कहीं कुछ शंका नहीं है, सर्वत्र आनन्द है। सो पदार्थों के सही-सही रूपका श्रद्धान करना यही है जैनत्व। सबसे बड़ी बात है सम्य-ग्दर्शन होना, यथार्थ विश्वास होना, सबसे निराला ज्ञानमात्र मैं हूं– ऐसा अपने आपका ग्रहण होना यही धर्मका एक प्रारम्भ है। हम जिन महापुरुषोंको पूजते हैं उनसे मेरा कुछ नाता नहीं है और न ऐसा कोई निर्णय बना दिया है कि वे पुजते रहें और हम पूजते रहें। जैसे वे परिपूर्ण द्रव्य हैं तैसे ही हम परिपूर्ण द्रव्य हैं। प्रभु भगवान् भी चैतन्य स्वभावी हैं, हम भी चैतन्य स्वभावी हैं। वे अपने आपमें परिपूर्ण हैं, हम अपने स्वरूपमें पूर्ण हैं। हमारा

प्रभुसे कोई न नाता है, न रिश्तेदारी है और न उन्होंने कोई पट्टा लिखा रखा है कि वे पुजते रहें और हम पूजते रहें, पर हमें स्वयं अटक लगी है इसलिए प्रभुको पूजते हैं।

प्रभुने रागादिक बन्धनोंसे छुटकारा पाया, और उस छुटकारेकी कुञ्जी हमें उस प्रभुसे ही मिल सकती है। उनके उपदेशोंसे हमें बहुत बड़ा वैभव मिल रहा है, इस कारण हम प्रभुको पूजते हैं। और पूजा करके यह भाव भरते हैं कि हे नाथ! जिस मार्गका अनुसरण करके पूर्ण ज्ञान और आनन्द पाया है वैसा ही आनन्द और वैसा ही ज्ञान मेरेमें जगे– ऐसी शिक्षा हम प्रभुके दर्शनसे प्राप्त करते हैं। तो हमारे जितने भी धर्मके कार्य हैं उन कार्योंमें इतने ही काम प्रधान है कि एक तो प्रभुकी भक्ति करना और दूसरे अपनेको ज्ञानमात्र सबसे निराला तकना, बस करनेको मुख्य इतने ही काम हैं, जब चाहे करते रहें।

मन्दिरमें आकर तो हमें स्वभावदृष्टि करनेका ज्यादा मौका लगता है पर घरमें बैठे हुए भी यदि हम प्रभुके गुणों पर दृष्टि दें और अपने स्वभाव पर दृष्टि दें तो वहा कोई रोकने वाला नहीं है। हम वहा भी बराबर अपना काम कर सकते हैं। तो जितना हम अपने निकट आते जायेंगे उतना ही हमें सन्तोष मिलेगा और जितना ही हम अपनेसे दूर होते जायेंगे, बाहरी पदार्थोंमें लगते जायेंगे उतना ही मेरा सन्तोष मुझसे भगता जायगा। सो बाहरी पदार्थोंके पीछे पड़नेसे कुछ सार नहीं निकलता, क्योंकि वे बाहरी पदार्थ हैं, उनके उपयोगसे सही ठिकाना तो मेरा नहीं हो सकता है। मैं सब से न्यारा हू। जब मैं अपने ज्ञानस्वरूपको जानने लगू तो शांतिका मार्ग मिलेगा। और इस धन वैभवकी आसक्तिसे तो कुछ न किसीको मिला और न मिल सकेगा। इस कारण अपनेमें यह भाव भरें कि जड समागमोंसे मेरे आत्माका हित नहीं हो सकता।

मेरा हित हो सकता है तो अपने ज्ञानका आदर करनेसे हो सकता है। इसीमें अपनी भलाई है। जड वैभवको अपना मान कर भलाई नहीं है। मनुष्यकी शोभा गुणोंसे है, शृंगारसे नहीं है, धनसे नहीं है। मनुष्यकी इज्जत ज्ञान और सेवाए हैं। जो इनमेंसे केवल एक ही काम करता है उसकी भी शोभा है। केवल ज्ञान ही ज्ञान है और कोई सेवा ही सेवा करने वाला हो, न भी ज्ञान हो तो उसकी भी इज्जत है पर ज्ञान और सेवा दोनों अपने में उतर आए तो उससे प्रतिष्ठा है लौकिक बातोंमें और आत्मीयसतोषकी बातोंमें, पर हम ज्ञानसे दूर रहें, सेवासे भी दूर रहें, केवल धनसचयमें ही अपना बडप्पन माने तो अभी अधेरेमें हैं, इससे सुखका मार्ग नहीं मिल

सकता।

भैया! सीधा हिसाब गुरुवोंने बतलाया है कि तुम चिंता मत करो कि मेरे धन अधिक बढ़े, क्योंकि धन से कुछ सम्बन्ध नहीं है। रही आवश्यकताकी बात, सो जिस पुण्यके उदयसे तुम श्रेष्ठ भवमें आये हो, उस पुण्यके उदयको साधारण श्रम करके भी प्राप्त कर लोगे। अत: जिस धर्मके प्रसादसे तुम भविष्यमें भी सुखी होगे और वर्तमानमें भी सुखी होगे, उस धर्मका प्रधान लक्ष्य रखो और उदयके अनुसार जो कुछ मिलता है उसमें ही धर्मका, पालन पोषणका, सबका बंटवारा करके जितने में गुजारा होना मञ्जूर है विधिके अनुसार, भविष्यके अनुसार उतनेमें गुजारा करके सन्तुष्ट रहो, पर धर्मधारण करनेका उत्सव बना रहे तो तुमने सब कुछ पाया, कुछ खोया नहीं है। इसलिए धर्मकी पकड़ मुख्य रहना चाहिए। धन वैभवकी पकड़ न रहे। जो कुछ है उसीमें अपनी व्यवस्था बना लो।

अपने आपका मुख्य उद्देश्य ही धर्मपालन करना है। उस धर्मपालनमें यदि प्रवृत्ति जागरूक रहेगी तो धर्म नहीं छूटा। हम आप पूजा करनेमें पढ़ते हैं ना कि— जिनधर्म विनिर्मुक्तो मा भूवं चक्रवर्त्यपि। स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासित। हे प्रभो! जिनधर्मसे रहित होकर मैं चक्रवर्ती भी नहीं बनना चाहता हूं। क्या लाभ होगा? धर्मदृष्टिसे रहित होकर चक्रवर्ती या महाराजा बनकर, क्योंकि यथार्थ दृष्टि तो रहेगी नहीं, फिर संतोष भी न प्राप्त होगा। बल्कि घमंड बढ़ जायेगा, अज्ञान बढ़ जायेगा। अन्याय पर उतारू हो जायेंगे। इस कारण हे नाथ! जिनधर्म से रहित होकर मैं चक्रवर्ती भी नहीं होना चाहता हू, और चाहे मै किसीका दास बना रहू, किन्तु जिनधर्मसे वासित मेरा हृदय रहे तो दास बनना भी मुझे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार है, पर धर्मसे रहित होकर राजा महाराजा चक्रवर्ती भी मैं नहीं बनना चाहता हू। यह हम और आप दर्शन करनेमें प्रतिदिन पढ़ जाते हैं।

ज्ञानी पुरुष धर्मवासित क्यों बनना चाहते हैं कि मुक्तिका मार्ग जिनदेव का बताया हुआ शासन ही है। उनके उपदेशोंके चरणानुयोगकी चर्चा देखो, कितनी पवित्र है? एक सत्यदेव नामक आर्यसमाजके बड़े प्रसिद्ध विद्वान् मेरठमें मिले थे। एक दिन उन्होंने बताया कि मुझे इस जैनधर्मकी ओर बड़ी श्रद्धा हुई है और कारण यह कहा कि इसमें जो ११ प्रतिमाएँ या दर्जे बताए हैं उन्हें ही देखकर हमें इस धर्ममें श्रद्धा हुई है। इसमें बताया है कि मनुष्य किस प्रकार धीरे-धीरे ऊँचे को बढ़े तो वह पवित्र बन जाता है। उसको देखकर हमें श्रद्धा हुई है। वे कुछ दिन हमारे पास रहे और अतमें उन्होंने

यों कहा कि हम आपकी ही शिष्यतामें रहकर काम करेंगे। पर हम साथ ज्यादा न रह पायेंगे। हम गुप्त ही रहकर जैनधर्मकी सेवा करना चाहते हैं। वे एक आध बार मिले, कई वर्षसे नहीं मिले, पर कही न कहीं वे गुप्त रूपसे काम कर रहे हैं।

हमे कैसे मालूम हुआ कि गुप्त ही काम कर रहे है? एक बार एक पर्चा हमने देहरादूनमें पढा, कई वर्ष हो गए, जिस पर्चेमे यह लिखा था कि राजस्थानमें कोई एक हिस्सा है। जहां जैनोंका और लोगोंका बड़ा विरोध था। और विरोध पार्टीकी एक कमेटी बनी थी। वे हर तरहसे जैनियोंका नुक्सान करते थे। शायद हमारे मारवाड़ियों को पता हो, हम भूल गए हैं। उनकी फाइले हैं जिनमें जैनियोंके सतानेके लिए विरोध किया जाता था। तो सत्यदेवने समझा बुझाकर ऐसा विरोध मिटाया कि जो पचासों वर्षका विरोध था वह मिट गया और अब सभी लोग प्रेमसे रहते हैं। उनका हवाला एक पर्चेमें लिखा था और नीचे हमारा नाम लिखा था कि उनके आशीर्वाद से मैंने यह काम किया। तब हमें ध्यान आया कि उन्होंने गुप्त ही रहकर जैनधर्मकी सेवा करने को कहा था, सो कर रहे हैं। हमे पता नहीं कि वे कहा पर हैं? किन्तु यह देखो कि जैनधर्ममें बताए हुए आपके चरणानुयोग की चर्चा ऐसी है कि उसके जरिये श्रद्धा हो जाती है। प्रथमानुयोगके कथनसे भी श्रद्धा हो जाती है। ऐसा दर्शन पाकर हम पूर्ण लाभ लें तो हमारे मनुष्य-भवकी सफलता है।

जगत्मे जितने भी क्लेश हैं वे मोह और राग परिणामसे हैं। मोह और राग न हो तो कोई भी जीव दुःखी नहीं है। सब जीव ज्ञान और आनन्दस्वरूप हैं। अपनेमें अपना परिणमन करते हैं। किसी अन्यसे इस का कुछ सबन्ध नहीं है, किन्तु यह जीव मोहवश परसे सबन्ध मानता है और परपदार्थोंका वियोग होना आवश्यक है। इस कारण वियोगके समयमे यह दुःखी होता है। जिसे अनिष्ट मान लिया, ऐसे पदार्थके समागममे यह दुःखी होता है। यदि यह सबन्ध न मानता और केवल अपने आपके केवल स्वरूपको तकता तो यह जीव दुःखी न होता।

अब यहा यह जिज्ञासा होती है कि ऐसा वह कौनसा ज्ञान है, कौनसा उपयोग है जिससे मोह मिटे अर्थात् आत्मज्ञान बने। उसका उपाय आचार्य देवने वस्तुस्वरूपका सम्यक्ज्ञान करना बताया है। अशांति दूर करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है। न किसी इन्द्रियका पोषण, न परपदार्थोंका सचय कोई भी अन्य उपाय नहीं है। आत्मशान्ति का उपाय है तो मात्र सम्यग्ज्ञान है। यथार्थज्ञान न होने से यह जीव परपदार्थोंमें करनेका संकल्प

किया करता है। अब सम्यग्ज्ञान होने पर उसका यह निश्चय हो गया कि मैंने परपदार्थोंका कुछ भी नहीं किया न अब कुछ कर सकता हू और भविष्यमें कभी भी परका मैं कुछ कर सकूँगा। ऐसे ज्ञानबलसे वह कृतकृत्य हो जाता है। करने योग्य काम सम्यग्ज्ञान था, सो इसने कर ही लिया अथवा परमें करनेका कुछ विकल्प नहीं रहा। सो यह सब कुछ कर चुका।

भैया! वस्तुके सही स्वरूपकी जानकारी बिना क्लेश नहीं मिट सकता। धनसे क्लेश मिटता होता तो हजारपतिसे लखपति तो १०० गुणा बडा है, उसे तो १०० गुणी शान्ति मिलनी थी, किन्तु कहा देखी जाती है शान्ति? सब अशान्त नजर आते हैं। शान्तिका उपाय धनसचय भी नहीं है। शान्तिका उपाय सम्यग्ज्ञान है। वह सम्यग्ज्ञान कैसे बनता है उसका निरूपण द्रव्यानुयोग द्वारा जैनशासनमें अच्छी तरह कहा है। सर्वविश्वको तुम्हें जानना है ना, सही, तो विश्व कहलाता है समूहका नाम तो यह समस्त विश्व कितना पदार्थसमूह कहलाता है? यह जानना है। तो पदार्थ तो जगत्में अनन्त हैं, किस किसका नाम लोगे और किस किसपर निगाह दौडावोगे पर उन सब पदार्थोंको स्वरूप और जातिकी अपेक्षा तुम देख लो। तुम्हारा प्रयोजन जाति अपेक्षा पदार्थोंको देख लेनेसे निकल आयगा।

जगत्में समस्त पदार्थ ६ जातिके हैं– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव जातिमें अनन्त जीव आ गए। प्रथम तो मनुष्यों की ही जब बडी भीड होती है तो मालूम होता है कि ओह कितने मनुष्य हैं? फिर दुनिया भरके मनुष्यों पर दृष्टि जाय तो अन्दाज होता है कि ओह बहुत जीव हैं। फिर अन्य जीवोंको देखो, पशुपक्षियोंको देखो, कीडे मकौडों को देखो, पेड पौधोंको देखो कितने जीव मिलते हैं। और किन्हीं-किन्हीं पत्तियोंमें ही अनन्ते जीव मिलते हैं। एक बहुत ही छोटा पत्ता हो तो उसमें अनन्ते निगोदिया जीव समाये हुए रह सकते हैं। इस तरह जगत्में अनन्ते जीव हैं। पुद्गल जातिमें भी पुद्गल अनन्त हैं। एक जरासा कागज हो, या काठका पाटिया हो, तिनका हो, सुई हो, ककड हो, जितने दृश्यमान् स्कध हैं, उन सबमें अनन्त परमाणु समाये हुए हैं। एक-एक परमाणुका नाम एक-एक द्रव्य है। इन समस्त पुद्गलोंसे यह चैतन्यस्वरूप आत्मा पृथक् है।

धर्मद्रव्य जीव व पुद्गलके चलानेमें सहायक है, अमूर्त है, जल्दी समझमें नहीं आ सकता, अनुमानगम्य है, पर आगमगम्य है। देखो तो आचार्योंने सम्यग्ज्ञानसे बडी सूक्ष्म वस्तुका भी यथार्थ प्रतिपादन किया है। एक अधर्म द्रव्यहै, जो चलकर ठहराने वाले जीव पुद्गलको ठहरानेमें सहा-

यक होता है। एक आकाश द्रव्य है जो सर्वत्र एकरूप है, और असंख्यात काल द्रव्य हैं जो अपने कालाणु पर आए हुए द्रव्योंके परिणमनका कारण होता है। इन सबसे भी यह आत्मा निराली है। इस प्रकार यह जगत् अनन्त पदार्थोंका समूह है। इनमें प्रत्येक पदार्थ अपना अपना स्वरूप रखते हैं। स्वभाव सिद्ध यह बात है किसीने इन पदार्थोंको किया नहीं है, न कोई इन पदार्थोंको मिटा सकता है। प्रत्येक जीव अनादि कालसे चले आये हैं। अपने ही अस्तित्वको रखते हैं, अपनेमें अपनी शक्तिको रखे रहते हैं।

जीवमें ज्ञानशक्ति है, दर्शनशक्ति है, आनन्दशक्ति है और रमणशक्ति है आदिक अनेक शक्तियां हैं और प्रत्येक शक्तिकी प्रति समय कुछ न कुछ अवस्था होती है। जैसे आजकल हम आपके ज्ञानशक्तिकी अवस्था कमजोर है, परमात्मप्रभुकी ज्ञानशक्तिकी अवस्था पूर्ण अभ्युदित है। तो अनेक जीवोंकी शक्ति है प्रत्येक जीवमें। और उस शक्तिकी पर्याय परिणमन है, अवस्था है। ऐसे ही प्रत्येक जीव अपने गुणोंसे रहते हैं और अपने ही गुणोंके पर्यायसे परिणमते जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक अणु और प्रत्येक द्रव्य अपने ही अपने गुणोंमें रहते हैं और अपनी ही दशाको वे बदलते चले जाते हैं। जो जीव आपसे प्रेमपूर्वक बोलते होंगे, वे कहीं आपसे प्रेम नहीं कर पाते, किन्तु वे अपने विकल्पके अनुसार अपनेमें राग पर्याय पैदा करते हैं। आपका कोई दूसरा कुछ नहीं कर सकता है, आप किसी दूसरेमें कुछ नहीं कर सकते हैं। माननेकी बात अलग है।

भैया! यह मान रहे हैं हम आप अट्ट पट्ट, जो किया नहीं जा सकता है और होता है नहीं वैसा, जैसा कि वह चाहता है। सो यह दुःखी होता है, जैसे एक सहारनपुरकी घटना सुनाते हैं कि जब जम्बूप्रसाद जी रईसके हाथी था, उस समय एक जैनका ६ वर्षका लड़का इस बात पर मचल गया कि मुझे यह हाथी चाहिए। उसके पिताने महावतसे समझाकर सड़क पर हाथी खड़ा कर दिया। तो लड़का कहता है कि ऐसे नहीं, हमें तो खरीद दो। जैसे खिलौने खरीदते हैं। बच्चे ने कहा अमुक खिलौना खरीद दो। तो उस ने महावतसे कह सुनकर अपने बाड़ेमें उस हाथी को खड़ा करा दिया। और कहा कि लो बेटा तुम्हें हाथी खरीद दिया। तो फिर वह बच्चा कहता है कि इसे हमारी जेबमें धर दो। अब धरो जेबमें हाथी, क्या धरा जा सकता है? नहीं। और जब जेबमें हाथी नहीं रखा जाता है तो वह रोता है। बताओ इस रोनेका क्या इलाज है? इसी तरह मोही जीव रोता रहता है परपदार्थोंका यों परिणमन कर दूं, परको यों ग्रहण कर लूं। जैसा यह चाहता है वैसा परमें परिणमन होना नहीं है सो यह रोता है, दुःखी होता

है। यह रोना तब मिट सकता है जब यह समझमें आ जाये कि प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण है और अपने स्वरूप रूप है, किसीका किसी अन्य पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है—ऐसी बात ध्यानमें आए तो इसका क्लेश मिट सकता है, मोह मिट जायेगा।

मोहमें यह जीव अपने पर्यायमें आत्मबुद्धि लगाता है और शरीरके मान अपमान को मान अपमान समझता है। दूसरे लोग यदि प्रशंसा कर दें तो उन दूसरोंको क्या मेरा आत्मा दिख गया, क्या मेरी आत्माको देख कर वह प्रशंसा कर रहा है? उन्हें तो यह हाड चाम वाला शरीर ही दिखता है। इस शरीरको देखकर ही वे प्रशंसा करते हैं। तो यह मोही जीव मिथ्यात्व-वश ऐसा मानता है कि इसने मेरी प्रशंसा की है और वह क्षोभमें आ जाता है। कोई पुरुष दुर्वचन कहे तो क्या उसने मेरे आत्माको देखकर दुर्वचन कहे हैं? नहीं। उसने मेरा आत्मा नहीं देखा। उसने यह चाम हाडका पिण्ड ही देखा और इसके ही विकल्पका आश्रय करके उसने दुर्वचनकी चेष्टा की है। लेकिन यह मोही जीव इसही पर्यायको आपा मानकर यह विकल्प करता है कि इसने मेरी निन्दा की है। यों यह जीव पर्यायबुद्धिसे दुःखी हो रहा है।

इस जीवके ध्यानमें यह दृष्टि जग जाये कि मैं तो एक अपने ज्ञानादिक शक्तिमय चेतन पदार्थ हूं और इसमें जो कुछ बनता है, वह मेरी परिणतिसे ही बनता है, किसी दूसरेकी परिणतिसे मेरेमें कुछ बात नहीं बनती है। जैसे इन जगत्के समस्त पदार्थोंका स्वरूप है वैसा ही मैं हूं। इसलिए मेरा कुछ परमें नहीं जाता और परका मेरेमें कुछ नहीं आता। ऐसा प्रयोजनिक ज्ञान होता है तो सम्यग्ज्ञान होता है, इस जगत्में हम आप सब अनादि सिद्ध हैं कल्याणकारी हैं। इसलिए अपनी भलाई के वास्ते सम्यग्ज्ञान का अर्जन अवश्य होना चाहिए। किसी भी परिस्थितिमें हो, पर यह यत्न करो कि मेरे उपयोगमें यह बात आये कि लो मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूं, इससे आगे मेरी कुछ करतूत नहीं है, कर ही नहीं सकता। ऐसा स्वतंत्र अपने गुणपर्यायरूप अपना स्वरूप ज्ञानमें आये, बस यही आत्मज्ञान कहलाता है।

विश्वके इन ६ जातिके पदार्थोंमें से धर्म, अधर्म, आकाश और काल-इन चार पदार्थोंका तो विकारपरिणमन ही नहीं होता है। कभी विकृत-परिणमन है तो जीव व पुद्गल इन दो जातिके पदार्थोंमें है। जीव व पुद्गल जिस सहजस्वरूपमें हैं उस स्वरूपको देख कर और और रूप बनने की बात निरखकर जाना जाता है कि दो पदार्थोंमें विकार होता है। जीव और पुद्गलमें हम ही बिगडे, पुद्गलको कोई टोटा नहीं है क्योंकि उसमें

ज्ञान नहीं, आनन्द नहीं, विगडेगा क्या ? जैसे एक काठ है सूखा, उसे जला दिया तो राख बन गया। तो काठ पर्यायको छोड़कर राख पर्याय बनने से क्या इस काठने कुछ क्लेश माना ? हो गया काठ राख, जल गया, भस्म हो गया। तो क्या काठके अणुवोंने संक्लेश किया, खेद माना ? राख भी बन गया तो इस पुद्‌गलका क्या विगड़ा ? किन्तु जीवका बिगाड़ है। यदि यह अज्ञान विकार होता है, सकल्प विकल्प होता है, विपरीत श्रद्धा होती है। तो यह जीव दुःखी हो जाता है। सो सर्वपदार्थोंमें से सुधार विगाड की बात जीवमे देखते हैं अन्य किसीमें नहीं देखते हैं। और इसमे भी केवल अपने आपमें देखते हैं। किसी दूसरेमे नहीं देखते हैं।

दूसरे पुरुषोको उपदेश दिया जानेके कार्यमें भी रागकी प्रेरणा होने पर इस जीवके चेष्टा हो जाती है। वहां भी किसी वक्ताने किसी श्रोतामे कुछ पैदा नहीं किया, वक्ता अपने आपमें अपनी चेष्टा करता है। यों सब अपनी-अपनी चेष्टामे लगे हुए हैं। जैसे किसी बड़े मेलेमे सब आदमी अपनी अपनी ड्यूटी पर लगे हैं, कोई किसी दूसरेका काम नहीं कर रहा है, अपने अपने काममें सब लगे हुए हैं। यों ही ससारमें सारे जीवमात्र अपने-अपने काममे लगे हुए हैं। कोई किसीका कुछ कार्य नहीं करता है। एक मा अपने बच्चेको रागसे पालती पोषती है। वहा मा ने बच्चेका कुछ काम नहीं किया किन्तु अपने ही रागसे, अपने ही विकल्पसे, अपनी ही चेष्टा मा ने की है। यह वस्तुका परमार्थस्वरूप कहा जा रहा है। कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यका न स्वामी है, न अधिकारी है, न कर्ता है, न भोक्ता है, केवल मान्यतामें ही यह परको कर्ता बनाता है, परको भोक्ता बनाता है, सो वस्तुके विपरीत मान्यता न रहे, श्रद्धा समीचीन हो जाये, बस यही आत्मकल्याणका प्रारम्भिक उपाय है।

वस्तुस्वरूपका वर्णन जैनशासनमे द्रव्य, गुण, पर्यायके रूपसे कहा गया है। प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुणोंका पिण्ड है। अपने ही अनन्त गुणोका पिण्ड है। कोई किसी दूसरे पदार्थसे एक भी गुण नहीं लेता है और अपने ही उन गुणोमे प्रति समय अपनी अवस्था बनाता है। ऐसे निजके स्वरूपास्तित्वमय सब पदार्थोको निहारो तो सही। वहां पर कुछ करनेका विकल्प नहीं रहता है। यह जीव परमे कुछ करने के विकल्पका ही रोगी और दुःखी बना हुआ है। करनेका विकल्प मिटे तो रोग इसका खत्म हो जाये।

आजकल जाडे के दिन हैं। रुई धुननेका काम बहुत चल रहा होगा। एक कथानक है कि रुई धुनने वाला किसी विदेशसे आ रहा था। तो जिस पानीके जहाजसे वह आ रहा था, उसमें हजारों मन रुई लदी थी। उस हजारों

मन रुई को देखकर उसके दिलमें बहुत सदमा पहुचा। हाय, यह मार्गकी सारी रुई हमे धुननी पडेगी। सो इस रुईको देखकर उसके बुखार चढ आया। घर आया तो वैद्योंने बहुत इलाज किया, पर ठीक न हुआ। एक समझदार व्यक्ति बोला कि इसका हम इलाज कर देंगे। ठीक है इलाज करो। अब वह व्यक्ति अकेले में पूछता है कि भैया तुम कबसे बीमार हो? कहा कि इतने दिनसे बीमार हू और किस देशसे आ रहे थे? कहा कि पानीके जहाजसे आ रहे थे। उस पानीके जहाजमें कितने आदमी थे? बोला—अजी आदमी तो दो तीन ही थे, पर उसमें हजारों मन रुई लदी हुई थी। जब उसने कष्टके साथ यह बात कही तो वह पहिचान गया कि इसके बुखार बस इसी बातका है। बोला कि अरे आप उस जहाजसे आये थे। वह जहाज तो आगे चल कर एक किनारे पर खड़ा हुआ और पता नहीं कि कैसे उसमें आग लग गई कि सारी रुई जलकर भस्म हो गई। सोई इतनी बात सुनकर उसका बुखार उतर गया। झट वह ठीक हो गया।

तो जब तक परमें करनेका भाव लगा हुआ है, तब तक यह जीव बेचैन है। अब यह करना है, अब मकान बनाना है, अब यह दुकान बनाना है, अब यह व्यवस्था करनी है—इस प्रकार जब तक चित्तमें परके प्रति विकल्प है तब तक यह जीव दुःखी रहता है और ज्ञानी सतोंमे बात क्या है जिसके कारण वे सुखी रहते हैं, वह यही मत्र है सम्यग्ज्ञान, जिसकी वजह से परमें कर्तृत्व बुद्धि रहती है। तो ये चीजें मिली वस्तुके यथार्थज्ञानसे और वस्तुका यथार्थज्ञान होता है उसके स्वरूपास्तित्वका परिचय होने से। सो देख लो, त्रिकालमें भी यह सम्भव नही है कि एक परमाणु का गुण परिणमन किसी दूसरे परमाणुसे पहुच जाये। त्रिकालमें भी यह सम्भव नहीं है कि कोई एक जीव अपने परिणमनसे सुख या दुःख कर दे, ससारी या मुक्त बना दे।

विभीषण ने कितना चाहा था कि रावण सुधार पर आ जाये, पर कुछ कर सका क्या? जिसे अपने भाई रावण पर इतना अनुराग था कि यह सुन लेने पर कि दशरथके पुत्र राम और जनककी पुत्री सीता इनके ही नियोगसे रावणकी मृत्यु होगी। तो उसने चाहा कि दशरथ और जनकके सिर काट ले तो न राम होगा और न सीता होगी। फिर मरण हो रावणका क्या होगा? हालाकि यह बात दशरथ और जनक को विदित हो गई। सो उन्होंने दशरथ और जनकका पुतला बनाकर रखा था, विभीषण उन सिरों को काट लाया और समुद्रमें फेंक दिया। बड़ा खुश था। वह समझता था कि अब मेरा भैया रावण सुरक्षित हैं, किन्तु दशरथ और जनक जीवित थे।

सो दशरथके राम और जनकके सीता हुई। जब चरित्र हुआ रावणका बुरा। इतना भक्त विभीषण जो रावणके बड़े काम आता था, उसने बहुत चाहा कि रावणके सुमति जग जाये, सुमति न जगी तो रावणको छोड़कर रामके पक्षमें आ मिला।

प्रेमवश सीताके जीवप्रतीन्द्रने जब श्रीराम मुनि अवस्थामें आत्मध्यान मे रत थे यह सोचा कि ये मुझसे पहिले मुक्त न हो जायें। हम और ये एक साथ मोक्ष जायगे। कितना ही उपद्रव किया, कितने ही दृश्य दिखाये, रूप रंग दिखाये और यह भी रूप बनाकर दिखाया कि रावण सीताके केश पकड़ कर घसीट रहा है, इतने पर श्री राम आत्मध्यानसे विचलित न हुए। बहुत प्रपंच किया कि राम विघ्नमें आ जाये, मोक्ष न जा सके, फिर बादमें हम और राम एक साथ मुक्त होंगे, पर हुआ क्या ऐसा? राम उसी भवसे मुक्त हो गये।

एकके सोचनेसे किसी दूसरेका सुधार बिगाड़ नहीं होता है क्योंकि वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्र है। ऐसा निजस्वरूपास्तित्वका बोध होने पर इस जीवके अज्ञान भाव नहीं रहता है। यह मेरा है, यह दूसरेका है– ऐसी भीतर में श्रद्धा नहीं रहती है। परपदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। उनका न कोई इष्ट है और न कोई अनिष्ट है। जैसे शीत ऋतुमें मोटा कपड़ा इष्ट है और गर्मीके दिनोंमें मोटा कपड़ा अनिष्ट है। इसी प्रकार शीतमें पतला कपड़ा अनिष्ट है, ग्रीष्ममें पतला कपड़ा इष्ट है। तो क्या कपड़ा स्वयं इष्ट अनिष्ट है? नहीं। यह तो अपनी-अपनी कल्पनासे इष्ट अनिष्ट मान लिया जाता है। किसी भी पुरुषको अनिष्ट हम तब मानते हैं जब वह मेरे विषयोंके पोषणमें बाधक होता है। वह बाधक नहीं होता है। हम एक कल्पनामें उसे बाधक मानते हैं तो अनिष्ट मान लिया, पर क्या कोई जीव मेरे लिए अनिष्ट है? नहीं। कोई भी जीव न इष्ट है, न अनिष्ट है, केवल कल्पनासे मान लेते हैं।

भैया! जब वस्तुस्वरूपके विरुद्ध हमारा ज्ञान बनता है तो वहां हम दुःखी होते हैं। और जैसा स्वरूप है तैसा ही ज्ञान होता है तो सुख होता है। हमें अपनी कल्पनाके अनुसार पदार्थोंको नहीं देखना चाहिए किन्तु पदार्थोंके स्वरूपके अनुसार हम अपना ज्ञान बनाएं बस यही अशान्ति और शान्ति पानेका एकमात्र उपाय है। यह सब तत्त्वज्ञान हमें मिला है आगमसे, शास्त्रों से और यह आगम उत्पन्न हुआ है सर्वज्ञदेवकी परम्परासे।

हमारे समस्त कल्याणका मूल जो सर्वज्ञदेव हैं जिनके उपदेशसे हम शुद्ध सुखको शीघ्र प्राप्त कर सकते हैं। सर्वज्ञदेवमें हमारी भक्ति हो, इसलिए कि मुझे शांतिका उपाय उनसे प्राप्त हुआ है, तथा इसलिए कि जो उनका

स्वरूप है वैसा मेरा स्वरूप है। उनके स्वरूपकी भक्तिके निमित्तसे मेरेमें भी मेरे स्वरूपकी भक्ति होगी और जब मैं अपने स्वरूपको, अपने उपयोगको एकरस करके ध्याऊगा तो वहा सकल्प-विकल्प ठहर नहीं सकते। वहा द्वैत बुद्धि इष्ट अनिष्टका परिणाम ठहर नहीं सकता और जहा यह द्वैत बुद्धि न रही, केवल अद्वैत निजचित्प्रकाश ही रहा, वहा किसी भी प्रकारका क्लेश नहीं होता है। यह स्थिति जीवकी बने इसके लिए भगवन अरहंतदेवका उपदेश है। सो हम शुद्ध उपदेशके मूल प्रणेता सर्वज्ञदेवकी भक्ति करें और उनके उपदेशे हुए मार्गके अनुसार, वस्तुस्वरूपके अनुसार हम अपना ज्ञान बनायें, यही सत्यदर्शनका अमोघ उपाय है।

अपनेको शान्ति देने वाली यथार्थ दृष्टि है। और किसीमें सामर्थ्य नहीं है कि अपनेको कोई शाति दे सके। प्रेम करने वाले भी जो लोग हैं वे हम आपसे प्रेम नहीं करते हैं। उनके स्वय इस प्रकारके कषायका उदय है कि वे कषायकी वेदनाको शात करते हैं। इसलिए यह भ्रम मिटा देना चाहिए कि मुझसे कोई प्रेम करने वाला है। चाहे स्त्री हो, पुत्र हो, कोई हो, ये मुझसे प्रेम नहीं करते– ऐसी धारणा रखनी चाहिए। ये जीव हैं, इनके कर्म हैं, इनके भी कषायके परिणाम हैं। अपने आप कषाय परिणामके अनुसार ही अपनी चेष्टा करते हैं। यही है यथार्थदृष्टि जिसके कारण अपना आकर्षण उनमे नहीं पहुचता हैं, सिर्फ कर्तव्य निभानेकी बात रहती है। अपना झुकाव उनमें तब होगा जब अपनेको भ्रम होगा कि यह देखो हमसे प्रेम रखता है इसीसे उससे ममता करने लगता है।

भैया! यदि यथार्थ बात यह समझमे आ गई कि यह मुझसे ममता कर ही नहीं सकता, मुझसे प्रेम कर ही नहीं सकता इसमें स्वय विषय कषायका परिणाम है, कषायका भाव है, सो अपने कषायकी वेदना मिटानेके लिए इस तरहकी चेष्टा करता है। यह सही बात जानकारीमें रहे तो अपनेमें ममता उत्पन्न नहीं हो सकती। इस यथार्थज्ञानके बाद भी कर्तव्य निभानेक बात चल रही है, जब तक अपना राज है। सो ऐसी विवेचक दृष्टि गृहस्थमे बनी रहती है।

वह बड़ा तपस्वी है, घरमें रहता हुआ भी जो यह ध्यान कर रहा हो कि कोई जीव मेरेको कुछ नहीं करता और मैं भी उसका कुछ नहीं करता। हमारे भी रागकी वेदना है तो अपनी वेदना शात करनेके लिए हमें अपना यत्न करना है। हम दूसरोंका कुछ नहीं करते हैं, दूसरे हमारा कुछ नहीं करते हैं। जिनकी ऐसी निर्मल दृष्टि हो जाय वह अन्याय नहीं करता। वह तो न्यायपूर्ण अपना व्यवहार बनायेगा।

इसका मतलब यह भी है कि अपनी वर्तमान परिस्थितिमे कर्मविपाक-वश राग द्वेष भोगना भी पड़े तो भी अन्तरमें यदियह विवेचनदृष्टि है तो कभी छोड़ देगा, और वर्तमानमें वह छोड़े हुए है अपनी श्रद्धामे। अपनी श्रद्धा में वह सबसे न्यारा है। तो यह ही सबसे बड़ी साधना है, प्रत्येक जीव घरमे रहते हुए भी इस साधनाको न छोड़ दे तो समझो कि जीवन निराकुल रह सकता है। केवल एक ध्यानकी ही तो बात है। तो सत्य जो बात है उस बात को न छिपावो। अन्तरमें यह बात बनाए रहें कि हम इनका कुछ नहीं करते है। हम अपना कार्य कर रहे हैं, वे अपना कार्य कर रहे हैं, हम अपनी खाज मिटा रहे है, ये अपनी खाज मिटा रहे हैं- ऐसी दृष्टि रखते हुए जो करनेमे आ जाय, आ जाय। उसके हम बुद्धिपूर्वक कर्त्ता नहीं कहलावेगे।

धर्मके नाम पर इस पुरुषार्थको एक तरफ रखो और हजारों लाखों करोड़, अरबों रुपयोका दान एक तरफ रखो तो धर्मकी आप तौल नहीं कर सकते हैं। लाखों और करोड़ोंका दान करने वाला नामके लिए करता है, उन्हें नामकी आसक्ति है। हजारों लाखोंका दान इसलिए करते हैं कि हमारा नाम खुदना चाहिए। सभा सोसाइटीमें, कमेटीमे बड़ी प्रशसा कर दी, बड़ा स्वागत कर दिया तो २५ हजार दान लिख दिया। यह त्याग नहीं है, त्याग तो कषायके त्यागका नाम है। घरमें रहते हुए भी वह तपस्वी है जिसकी निगाहमें यह बात रह सकती है कि ये अपने विषय कषायोंका परिणाम कर रहे हैं, मैं अपने विषयकषायका परिणाम कर रहा हू। मुझमें इनका कुछ काम नहीं होता और इनमे मेरा कुछ काम नही होता, किन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। रागका उदय है, उस रागके उदयमे हम इनका विषय बनाकर, आश्रय बनाकर हम राग दोष रहे हैं, इतना ही मात्र हमारा इनका सम्बन्ध है, इससे आगे और सम्बन्ध नहीं है- इस दृष्टिसे बढ़कर और क्या होगा। धड़ाधड़ कर्मोकी निर्जरा होती रहेगी।

जैसे हम और आप कुछ दिनोसे एक साथ हैं। साथ रहते हुएमें जितना चाहिए उतना हम आपसे अनुराग व्यवहार करते हैं और जितना आपको चाहिए हमसे उतना अनुराग व्यवहार करते हैं पर भीतरमें न आपकी हमसे ममता है और न हमें आपसे ममता है और व्यवहार भी ठीक चल रहा है। जैसाकि करना चाहिए, पर अन्दरमे ममता है क्या किसीके ? नही है। २-४ दिन और बीतेगे, खुशी-खुशीसे आप अपने घर जायेंगे, हम भी कहीं भ्रमण कर जावेगे। देखो सम्बन्ध बन गया है लेकिन ममता नहीं है। तो क्या यह बात घरमें नहीं हो सकती है कि सम्बन्ध बना रहे और ममता न रहे। सम्बन्ध होते हुए भी ममता नहीं है- ऐसा घरमें भी किया जा सकता

है। दृष्टिका प्रताप तो सब जगह है। तो हमारे परिणमनमें जो खोटे और विकारके प्रयत्न होते हैं उनमें तो बाहरी पदार्थ भी निमित्त होते हैं। और कालद्रव्य तो है ही और खोटे परिणाम न हों। विकारके परिणाम न हों। शुद्ध परिणाम हों तो उसमें सिर्फ कालद्रव्य निमित्त है, दूसरे और द्रव्य निमित्त नहीं हैं। तो इस गाथामें काल द्रव्यका प्रकरण चल रहा है।

यहां यह प्रश्न किया गया कि पदार्थोंका जो परिणमन होता है। उसमें तुम बतलाते हो कि कालद्रव्य निमित्तकारण है, पर हमें तो कालद्रव्य निमित्त नहीं मालूम होता है। यहां एक सूर्यका चक्कर लग गया उदयसे अस्त तक वह एक दिन हो तो यह ही हमें निमित्त मालूम होता है। कालद्रव्य कुछ चीज नहीं है। जो है सो व्यवहार काल जरूर है—ऐसा प्रश्न होने पर यह बताया गया कि भाई यह जो व्यवहारका समय गुजर रहा है इस समय का उपादान कारण कौन है? जो चीज होती है, जो परिणति बनती है उसमें कोई उपादान कारण होता है। यह अगुली टेढ़ी सीधी हुई तो इसका उपादान कारण क्या है? काल। तो ये जो घड़ी, घंटा, दिन, महीना, समय गुजरता है, इस समयका उपादान कारण कौन है? निश्चयकाल। इस व्यवहारकालका उपादान कारण यह पुद्गल द्रव्य नहीं हो सकते, क्योंकि जो काम होता है वह उपादान कारणके अनुरूप ही होता है। मिट्टीका घड़ा बने तो घड़ा बनने पर वह मिट्टी रहती है। तो यदि यह समय पुद्गलद्रव्य का कार्य हो तो जैसे पुद्गलद्रव्य हमें ठीक दिखते हैं, मूर्तिक हैं इस तरह समय भी ठीक दिखना और मूर्तिके बनना।

भैया! जो ऐसा मालूम होता है पुद्गल परमाणु की मंदगतिके गमन से समयका काल और पलकके गिरने से निमिषका तथा पुद्गलकी पर्यायरूप क्रिया विशेषोंके द्वारा घड़ी घंटा दिन रात आदि आदि कालकी पर्यायें जानी जाती हैं वे परमाणुके उल्लंघन आदिक अथवा अन्य सूर्यादिकी गति आदि का निमित्त पाकर वह परिणमता है सो वह बहिरंग सहकारी कारणभूत नहीं हैं। जैसे घटके उत्पन्न करनेमें कुम्हारके चक्र आदि निमित्त हैं, पर उपादानकारण नहीं हैं। इससे यह जाना जाता है कि कालद्रव्य अमूर्तिक है। अविनाशी है, वास्तविक है और उसके पर्यायसम्बन्धी निमिष आदिक होते हैं। ये कालद्रव्य जो हैं ये सब प्रकारसे विषयभूत पुद्गल एकस्वभाव वाले हैं, द्रव्यसे भिन्न हैं। याने पदार्थों का जो ज्ञान किया जाता है उसका प्रयोजन इतना है कि ये पदार्थ मुझसे न्यारे हैं, हेय हैं। हेय समझनेके लिए परपदार्थोंका ज्ञान है। ग्रहण करने के लिए पर पदार्थोंका ज्ञान नहीं है।

प्रश्न—हेय समझने के लिए पर पदार्थोंका ज्ञान क्यों किया जाता है?

जब हेय है, तो उनका ज्ञान करनेकी क्या आवश्यकता है ? समाधान यह है कि हम अनादिसे परमे लगे आए हैं और हमें परसे अलग होना है। तो जिससे हमे अलग होना है उसका ज्ञान तो होना चाहिए तब तो हम अलग हो सकते हैं। परसे हमें अलग होना है यह तो बहुत उपयोगी बात है पर पहिले तो जिनसे हमे आफते लगी हैं, उन परपदार्थोंको अपने से न्यारा समझलें। कोई एक चीज ही तो उस एक ही चीजका ख्याल करे, ध्यान करे, चिन्तन करे, उससे छुटकारा पावें। सो सभी प्रकारसे परपदार्थोंका ज्ञान करना पड़ता है।

भैया! इसके साथ दसो रोग लगे हैं। परिवारका मोह है, धनका मोह है, शरीरका मोह है, इज्जतका मोह है। क्या एक आफत है इस जीव के ऊपर ? अभी बाल बच्चोंकी ममता लगी है और कदाचित् कोई ऐसा प्रसग आए कि बाल बच्चोंकी ममता गौण हो जाये तो दूसरे आदमीको अपने से धनवान, ऐश्वर्यवान देख करके उसके यह इच्छा हो जाती है कि मै भी ऐसा श्रीमान् बनूँ। तो वहा बाल बच्चोंका ख्याल छोड दिया पर ससारमें ममता है, उपयोग उसमें नहीं है, उपयोग वैभवके लिए है पर सस्कार परिवारका बना हुआ है, और जब आमने सामने परिवारसे बाते होती हैं तो एक आसू बहाता है और एक प्रेम दिखाता है, सेवाका भाव दिखाता है तो धन दौलत की ममता गौण हो जाती है और परिवारकी ममता मुख्य हो जाती है। और कभी सभा सोसाइटीमें कोई बात बोल गए तो वहा इज्जतकी बात मुख्य हो जाती है। वैभवकी ममता और परिवारकी ममता गौण हो जाती है पर सस्कारमे वे सब बसे हैं और कभी अपनी जान पर ही आफत आ रही है तो इज्जत भी गौण हो जाती है और शरीरकी, प्राण बचानेकी ममता हो जाती है। इस प्रकार से इस जीव पर दसों प्रकारकी आफतें लगी हैं। उन दसों आफतोंसे निपटनेका उपाय केवल एक ही है यथार्थज्ञान होना। इन सबसे न्यारा मै आत्मतत्त्व हू--यदि सही ज्ञान हो तो सब सकट मेरे टल सकते हैं।

भैया! जो लाभकारक बात होती है वह दुर्लभ होती है। दृष्टिका निर्मल होना बहुत दुर्लभ है। यदि भवितव्य अच्छा होता है तो दृष्टिमे निर्मलता प्राप्त होती है। यह जीव मोहके दुःखसे थककर भी ज्ञान नहीं करता है, किन्तु इसके जब भार कम होता है, कर्म और भवितव्य अच्छा होता है तब इसके ज्ञान उत्पन्न होता है। नहीं तो मोह करते-करते अनन्त काल व्यतीत हो गए। क्या थके नहीं अब तक ? क्या उससे अभी तक दुखी नहीं हुए, पर आत्मज्ञान नहीं जगता। आत्मज्ञान जगता ही तब है जब कुछ अपना भार

गौण होता है, क्षयोपशम अच्छा होता है, संसार समाप्त होनेके थोड़े दिन रह जाते हैं तब जाकर आत्मज्ञान बढ़ता है। छूटना तो सब कुछ है ही, मगर श्रद्धामें छूटे, ज्ञान ज्योतिमात्र अपने आपको निरखें तो मेरा कल्याण है।

भैया ! यहां तो ऐसा है कि अगर किसीसे ज्यादा परिचय हो जाये तो उसकी उपेक्षा हो जाती है। उसमें अवज्ञा हो जाती है, आदत ही ऐसी है, पर इस जीवमें ऐसी कुटेव है कि इसे शरीर अनादि कालसे मिल रहे हैं तो कितना परिचय है ? अभी तक उसमें अवज्ञा नहीं हुई है। ये रागादिक विकार अनन्तकालसे लगे हुए हैं पर इनमें अवज्ञा नहीं हुई है। ये अवज्ञाके लायक हैं। इनकी प्रीतिसे आत्महित नहीं होता है। सबसे अधिक प्रभाव मनकी स्वच्छताका पड़ता है। व्यवहारमें, स्वास्थ्यमें अपने अस्तित्वमें और साइंसमें प्रत्येक बातमें प्रगतिका कारण है मनकी स्वच्छता और मनकी स्वच्छतामें मुख्य बात तो यह चाहिए कि परपदार्थोंसे इच्छा रहित बनें तो मनकी स्वच्छता कायम रह सकती है, परभावोंकी इच्छासे दूर हुए तो मन की स्वच्छता रह सकती है।

अच्छा, चार ही चीजें मुख्य रखलो, धन वैभव, चेतन परिवार शरीर और शान। परिवारमें परिवार व मित्रजन ले लो, इन चारोंकी इच्छा होगी तो मनमें पवित्रता न बढ़ सकेगी और इससे रहित हैं तो तुम्हीं अनुभव कर लो कि वैभवसे कितनी इच्छा है और कितनी नहीं। मैं दुनियाके लोगोंमें वैभववान् कहलाऊँ। अच्छा परिचित पुरुषोंके बीचमें वैभवशाली रहूं, ऐसी इच्छा है क्या ? यदि ऐसी इच्छा बनती है तो मोक्षमार्गका स्वप्न छोड़ दो। फिर तो यही संसारके कीचड़में फिसलते रहनेका उपाय है।

यदि परिवारसे मोह ममता है, इनको होने से ही हमारा हित है, ये ही मेरे सब कुछ हैं, ये मेरे खास हैं—ऐसी परिवारमें ममता है तो मनकी स्वच्छता क्या रह सकती है ? नहीं।

ज्ञानी गृहस्थ परिवारमें रहता है पर वहां ममता नहीं है। ममता क्यों नहीं होती ? क्योंकि उसे मालूम है कि मैं जो कुछ करता हूं, वह अपना ही परिणमन करता हूं। ये अपने आपमें परिणमते हैं। मुझमें इनका अत्यन्ताभाव है, यह दृष्टि उसके बनी रहती है जिससे ममता नहीं जगती है।

शरीरकी ममता है कि नहीं ? शरीरकी ममताकी यह पहिचान है कि दूसरे जीवोंकी सेवाके लिए अपने शरीरको कष्ट न करनेका भाव रहे तो समझो कि शरीर की ममता है। परोपकारके लिए अपना शरीर लगानेका भाव न उत्पन्न हो तो समझो कि हमें शरीरमें ममता है। अब कहो कि साधुजन तो शरीरसे परोपकार करनेके लिए तुले नहीं रहते हैं तो बड़े-बड़े

साधु योगी अपने विषयोंकी पूर्तिके लिए भी तो नहीं तुल रहे हैं। जो मनुष्य अपने विषयोंकी पूर्तिके लिए सारा श्रम करे और परसेवाके लिये श्रम न करे तो यह बात मानो कि इसके शरीरमें ममता है। यदि ऐसी ममता है तो मन स्वच्छ नहीं रह सकता है, इसलिए परोपकारको धर्म बनाया है।

चौथी चीज है शान, इज्जत, बात। अपनी बात रखने के लिए दूसरों का अपमान करा दिया तो समझो कि बातका, मानका, इज्जतका इसके मोह है। दूसरोंका अपमान करा कर अपना मान रखना चाहता है। गौरव को सभी लोग चाहते हैं, पर जो ऐसे गौरवमें रहे कि दूसरेके गौरवकी परवाह न करे और अपना ही गौरव रखना चाहे तो उसे अपने मानका मोह है, मिथ्यात्व भाव है। तो इन चारोंकी आसक्ति न हो और द्रव्योंकी स्वतंत्रता का निरन्तर दर्शन रहा करे कि परद्रव्य जो हैं वे अपने प्रदेशोंसे बाहर मुझमें कुछ नहीं करते हैं। वे अपनी वेदना मिटाते हैं। अपनी वेदना मिटाने में ऐसा परिणाम बनाते हैं– ऐसी दृष्टि बनी रहे तो घरमें रहते हुए भी वह यथायोग्य योगी है, तपस्वी है, आत्मकल्याणार्थी है।

जाउ वि पुग्गलु कालु जिय ए मेल्लेविणु दव्व।
इयर अखंड वियाणि तुहु अप्प पएसहिं सव्व ॥२२॥

जगत्में ६ जातिके पदार्थ हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। उनमें से जीव और पुद्गल तो अनन्त हैं, जिनका कभी अंत नहीं आ सकता है, जिनकी गणना ही नहीं है और कालद्रव्य असंख्यात हैं। लोकाकाशके एक एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य है और बाकी जो तीन द्रव्य हैं धर्म, अधर्म और आकाश ये केवल एक ही एक हैं। देखिये कितनी सूक्ष्म बात है कि धर्मद्रव्य भी होता है, अधर्मद्रव्य भी होता है, कालद्रव्य भी होता है। कितनी सूक्ष्म बात की विवेचना सर्वज्ञदेवने की है। देखो इन्द्रियों से कुछ पता नहीं पड़ सकता है पर केवली भगवान्ने अपने ज्ञानसे जाना और गणधर देवोंने उनकी दिव्यध्वनिको पहिचाना।

धर्म, अधर्म व आकाश—ये तीनों द्रव्य अखण्ड एक-एक हैं। धर्मद्रव्य वह कहलाता है जो लोकाकाशमें फैला हुआ है और जीव और पुद्गलके चलनेमें सहायक है। यह एक होकर एक अखण्ड है। एक जीवका दूसरा हिस्सा नहीं हो सकता है। जीवद्रव्य अलग-अलग है। और वे प्रत्येक अखण्ड हैं। किसी जीवके २ टुकड़े नहीं हो जाते हैं। छिपकली लड़ती हैं और उनकी पूछ टूट जाती है और पूँछ टूट पड़ी रहती है। छिपकली अलग तड़फती रहती है, पूँछ अलग तड़फती है तो यह नहीं है कि पूँछका

जीव अलग हो, धडका जीव अलग हो। धड़से लेकर पूँछ तक जीव फैला हुआ है। वहा भी एक अखण्ड जीव है। जब उसकी तडफन बद हो जाती है तो पूँछका जीव मूल शरीरमें आ जाता है। इस तरह जीव सब अखण्ड है। और सो ऐसी दृष्टि लगाना बडा लाभदायक है कि मैं जीव अखण्ड हू और अपने प्रदेशमात्र हू। और जो कुछ कर पाता हू अपनेमें ही कर पाता हू और दूसरे जीव भी जो कुछ कर पाते हैं वे अपने प्रदेशोंमें ही कर पाते हैं।

यदि किसीने प्रशसाकी तो प्रशसा सुनकर खुश हो जाना यह अपने आप पर बहुत बड़ा अन्याय है। व्यर्थकी वातमें प्रशसा कोई कर रहा है तो यह दृष्टि देना चाहिए कि इस प्रशसा करने वाले ने अपने ही प्रदेशोंमें अपनी कषायका परिणमन किया। इससे आगे इसने कुछ नहीं किया। प्रशसा जो कर रहा है वह अपने प्रदेशोंमें अपना परिणमन कर रहा है, इससे आगे और कुछ नहीं कर रहा है— ऐसी दृष्टि प्रशसा सुनते समय बन जाये तो इस आत्माकी रक्षा है और यदि यह दृष्टि नहीं बनती है बल्कि प्रशसा सुनकर कुछ हर्ष होता है, उपयोग बाहर जाता है तो इस आत्माकी अरक्षा है, हिंसा है इस आत्माकी। इसी तरह कोई निन्दा कर रहा है तो उस समय भी ऐसी दृष्टि बनावो कि यह पुरुष अपने आत्मप्रदेशोंमें ही रहता हुआ अपने कषायके अनुसार अपनी चेष्टा कर रहा है। अपना कषाय उगल रहा है, यह अपने प्रदेशोंसे बाहर कुछ नहीं कर पाता है। ऐसी दृष्टि निन्दा सुनते समय रह सके तो अपनी रक्षा हो जायेगी। नहीं तो क्षोभ आ जायेगा, क्रोध आ जायेगा। विह्वलता हो गई तो अपने आत्म भगवान्की हिसा है।

यह आत्मा अखण्ड है और अपने ही प्रदेशोंमें अपने आपका परिणमन करने वाला है, मेरेसे बाहर मेरा कुछ नही है, दूसरे जीवोंका भी उनसे बाहर कुछ नहीं है, ऐसी दृष्टि सभाले रहना यही बडा ज्ञान है और यही कर्मोंका क्षय करने वाला है। तो जीवद्रव्य अनन्त हैं, कितने अनन्त हैं? पहिले तो सब विश्वके मनुष्यों पर दृष्टि दें। अभी २-३ लाख भी कहीं आदमी जमा हो जाएँ तो ऐसा लगता है कि कितने मनुष्य हैं और फिर सारे मनुष्योंमें अपना अनुमान दें तो कितने मनुष्य हैं? फिर पेड़ पौधे, पशुपक्षी, कीडे मकौडे इनको देखो, कितने जीव हैं? एक-एक पेड़में देखो असख्यात और अनन्त जीव हैं। किसीमें अनन्त हैं तो किसीमें असख्यात हैं और फिर एक जीव निगोद कहलाता है वह ही अनन्त होता है, सूक्ष्म निगोद तो यह जो आकाश है उस आकाशमे भी ठसाठस भरे हुए हैं। तो कितने जीव हुए जिनका कि कभी अत नहीं हो सकता है?

जीवोंसे अनन्तगुणे पुद्गल हैं। एक जीवके साथ कितने पुद्गल चिपटे हुए है, इस बातको तो विचारो। एक जीवके साथ जो शरीर लगा हुआ है अव्वल तो उस शरीरमें ही अनन्त परमाणु हैं, और उसके साथ शरीर बनने के उम्मीदवार परमाणु भी अनन्त हैं। जिन्हें कहते हैं विस्रसोपचय अर्थात् जो शरीर बन चुका है वह परमाणु तो इसके साथ है, मगर इस जीवके साथ कितने ही परमाणु अनन्त और ऐसे लगे हुए हैं जो शरीर बननेके उम्मीदवार है। शरीररूप बन सकते हैं। फिर इस शरीरसे अनन्गुणे तैजसके परमाणु हैं जिन तैजस वर्गणावों द्वारा शरीरमें तेज प्रकट होता है और जितने तैजसमे अनन्त परमाणु हैं उससे अनन्तगुणे परमाणु कर्मोके परमाणु हैं। ये सब एक जीवके साथ जो लगे हुए है उनकी बात कह रहे हैं। और जितने अनन्तकर्म परमाणु लगे हैं, ऐसे ही अनन्तकर्म बननेके उम्मीदवार परमाणु लगे हैं।

जीव कहीं भी छुपकर भी पाप करे तो क्या? ये उम्मीदवार कर्मपरमाणु तो इसके साथ हैं। जहां इसने मलिनपरिणाम किया वहा ही ये कर्मरूप बन गये। तो अब देखो एक जीवके साथ अनन्तानन्त गुणे परमाणु चिपटे हुए हैं, और जीव है ससारी अनन्तानन्त, तो पुद्गल कितने हुए? अनन्तानन्त। फिर जिनमेंसे जीव निकल गया ऐसे स्कधोंको देखो– यह चौकी हैं, यह पुस्तक है, यह घड़ी है इन सबको देखो तो अनन्त परमाणु बसे हैं। तो जीवके साथ जो चिपटे हुए हैं उनमें अनन्त परमाणु हैं और जीवको जिन्होंने छोड़ दिया है उनमें भी अनन्त परमाणु हैं। तब हिसाब लगावो कि जीवोंसे अनन्तगुणे पुद्गल परमाणु हैं या नहीं। जीव भी उतने हैं कि जिनका अन्त नहीं आ सकता। और उनमे भी अनन्तगुणे पुद्गल परमाणु है।

भैया! हम और आप एक-एक जीव पर कितना बोझा लदा है। कितने विजातीय द्रव्योंसे यह संसार भरा हुआ है? इसे अन्दाजमें लावो। हम थोड़ी सी मनकी बात पाकर खुश हो जाते हैं। इन्द्रिय विषयोंका थोडा सा सुख पा लिया तो खुश हो गए। इस जीवके साथ कितने सकट लगे हुए है? शरीर जुदा चिपटा है, कर्म जुदे चिपटे हैं, रागादिक विकार हो रहे हैं, इतने तो इस जीवके साथ उपद्रव हैं और फिर भी इन ओछी बातोंमें हर्ष मानना यह कितनी भूल है? तो जीव अनन्त हुए और पुद्गल अनन्त हुए। और धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य– ये एक द्रव्य ही हैं। और कालद्रव्य जो है वह असंख्यात हैं। इन ६ प्रकारके द्रव्योंके वर्णनसे हमे शिक्षा क्या लेना है कि इन सबमे जीवद्रव्य ही उपादेय है।

यद्यपि ये जीवद्रव्य अनेक परिणमन रूप हो रहे हैं। चारों गतियों रूप; पाच इन्द्रिय जातिरूप अनेक परिणमनरूप हो रहे हैं, नाना विकार; नाना कल्पनाए, किन्तु उन सबको भी शुद्धदृष्टिसे देखो तो जो शुद्ध जीवत्व है, पारिणामिक भाव है वह ही वास्तवमें उपादेय है। सो ऐसा चैतन्यस्वरूपशक्तिकी अपेक्षासे सब जीवोंमें पाया जाता है। चेतना किसमें नहीं है? जैसे दूधमें मक्खनकी परख इन्द्रियों द्वारा नहीं की जा सकती है किन्तु ज्ञान द्वारा की जा सकती है। दूधको हिलाया डुलाया टटोला तो पता लग जायेगा क्या कि इसमें आधसेर घी है। ज्ञानके द्वारा उन्हें घी दिख गया। और अगर बकरीका पतला पतला दूध देखा तो ज्ञान द्वारा पता लग गया कि इसमें तो एक छटांक घी निकलेगा। तो दूधमें मक्खन ज्ञानसे देखा जाता है। इसी प्रकार मनुष्य पशु पक्षी आदिक भेषमें यद्यपि ये जीव चल रहे हैं तो भी ज्ञानी जीवको इन भेषोंके भीतर भी शुद्ध जीवत्व दिख जाता है।

भैया! दूधमें यद्यपि मक्खन है, मगर कोई उपाय बनावो कि घी बन जाये तो जैसे मथानीसे मथकर मक्खन प्रकट होता है इसी प्रकार सब जीवों में शक्ति अपेक्षासे शुद्ध जीवत्व है, किन्तु शुद्ध जीवत्वकी दृष्टि अडिग बने जाये और सकल्प विकल्पका त्याग किया जाये तो इसके शुद्ध जीवत्व विकासकी प्राप्ति होती है अर्थात् परमात्मा बन जाता है। सो यद्यपि शक्तिकी अपेक्षासे सभी जीव उपादेय हैं फिर भी व्यक्तिकी अपेक्षासे तो पंचपरमेष्ठी ही उपादेय हैं।

अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन्होंने क्या किया? साधु महाराज तो रागद्वेषसे दूर होकर समतारूप बननेका यत्न कर रहे हैं उनके भी आत्माका विकास है। इसी प्रकार आचार्य और उपाध्याय भी आत्माका विकास कर रहे हैं। अरहंत और सिद्ध देवके तो पूर्ण विकास हो गया है। अरहत और सिद्धमें से भी सिद्ध बड़ा है। भावकी मलिनताएँ तो जिसके अरहंतमें भी न थी। अब शरीर भी नहीं रहा, अघातिया कर्म भी नहीं रहे, इसलिए उत्कृष्ट सिद्ध है। उत्कृष्ट चीज अन्तमे होती है। अरहत सिद्ध पहिले होता है और सिद्ध अवस्था बादमें बनती है, तो ऐसे अरहत और सिद्ध उपादेय हैं, किन्तु परमार्थसे मिथ्यात्व रागादिक विभावरहित जो शुद्ध आत्मतत्त्व है वही उपादेय है। उपादेयका अर्थ है कि जिस पर हमारी दृष्टि लगानी है, जिसका हमें ज्ञान करना है उसे उपादेय कहा जा रहा है।

इस तरह सब द्रव्योंमें उपादेय है जीवद्रव्य और जीवद्रव्यमें भी शक्तिकी अपेक्षासे यद्यपि सभी जीव उपादेय हैं, मगर पर्यायकी अपेक्षासे, विकासकी अपेक्षासे पचपरमेष्ठी उपादेय है। इन पचपरमेष्ठियोंमें भी विशेष

रूपसे उपादेय अरहंत और सिद्ध भगवान् हैं और दोनोंमें विशेषरूपसे सिद्ध भगवान् उपादेय है। किन्तु परमार्थसे देखा जाये, निश्चय दृष्टिसे देखा जाये तो अपना जो शुद्ध चैतन्यस्वभाव है वह ही उपादेय है। इस प्रकार उपादेय को समझना है। अब इसके बाद उन सब द्रव्योंमेंसे यह बात बतला रहे हैं कि क्रिया करने वाले द्रव्य दो हैं जीव और पुद्गल। धर्मद्रव्य तो सर्वलोकमें व्यापक है और अवस्थित है। वह हिलता डुलता नहीं है, एक है। यहांसे वहां चल नहीं सकता। न अधर्मद्रव्य चल सकता है, न आकाशद्रव्य चल सकता है और जो लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर कालाणु बैठा है न वह चल सकता है। जीव कहींसे कहीं चला जाये, पुद्गल आकाशमे कहीं चले जायें तो दो द्रव्य क्षेत्रसे क्षेत्रान्तरमें पहुंच जाते हैं, बाकी चार द्रव्य निष्क्रिय हैं, वे क्रिया नहीं कर पाते हैं, इस बातको इस दोहेमें कहते हैं।

दव्व चतारि वि इयर जिय गमणागमण विहीण।
जीउ वि पुग्गलु परिहरिवि पभणहि णाण-पवीण ॥२३॥

चार प्रकारके द्रव्य तो गमनागमनसे रहित हैं और जीव और पुद्गल ये गमन और आगमन कर सकने वाले हैं। ऐसे ज्ञानमें प्रवीण केवली और श्रुतकेवली भी कहते हैं। जीव और पुद्गलमे इन दोनोंमें गमनकी शक्ति है। शुद्ध पुद्गल परमाणु एक समयमें १४ राजू गमन कर सकता है और जीव सिद्ध हुआ तो एक समयमे ७ राजू गमन करता है क्योंकि सिद्ध होने वाला तो मध्यलोकमें ही होता है। सो यहां से ७ राजू लोक बैठता है तो जीव पुद्गल गमनागमन करने वाला है और बाकी चार पुद्गल गमन नहीं करते हैं।

जीवकी ससार अवस्थामें गमन गतिके सहकारी कारणभूत कर्म पुद्गल और नोकर्म पुद्गल हैं। कर्म और नोकर्मकी जब अनुभूति हो जाती है तो निष्क्रिय हो जाता है। जीव सिद्ध हो जाये तो निष्क्रिय हो गया। तो जिस जगह वह अवस्थित है जीव उसी जगह रह गया। फिर दृष्टि नहीं डोलती। और पुद्गल स्कंधके जाने आने का बाह्य कारण क्या है? तो एक तो कालद्रव्य उसका बहिरंग कारण है और फिर एक दूसरेका संबंध हुआ, उपयोग हुआ यह भी उनका बहिरंग कारण है। इससे क्या बात निकलती है शिक्षा की कि यह जो समय है ना, तो सबसे छोटा होता है। जैसे पुद्गलमें सबसे छोटा क्या कहलाता है? अणु। इसी प्रकार समयमें सबसे छोटा क्या कहलाता है? समय।

जैसे एक वर्षमें १२ महीने, एक महीनेमें ३० दिन, एक दिनमें २४ घन्टे, एक घन्टेमें ६० मिनट, एक मिनटमें ६० सेकेण्ड। एक सेकेण्डमें मानलो

५ आखमिचनी और एक आंखमिचनीमें असख्यात आवली और एक आवलीमे असख्यात समय। तो समयसे छोटा कुछ नहीं होता है। तो यह अविभागी व्यवहारकाल है समय। उसकी उत्पत्तिका कारण है मदगतिसे चलने वाला पुद्गल परमाणु। अर्थात् शुद्ध परमाणु मदगतिसे चले तो एक कालाणुसे दूसरे कालाणु तक गमन करनेमें एक समय लगता है और तेज गतिसे चले तो वह एक समयमे १४ राजू चला जाता है। पर मदगतिसे चले तो एक समयमें एक प्रदेश चलता है। तो उस समयपर्यायको प्रकट करने वाला बहिरग कारण मद गतिसे गमन करने वाला अणु दिखाता है।

जैसे एक दिनको प्रकट करने वाला कौन है ? सूर्य। पर सूर्य तो दिन के १२ घन्टे नही बनाता। १२ घन्टेका जो समय है वह तो कालद्रव्यकी पर्याय है। काल बनता है मगर उसको प्रकट करने वाला है सूर्यका घुमाव। इसी प्रकार जो एक समय है उस समयको परमाणु पैदा नहीं करता। उसको उत्पन्न करने वाला तो कालाणु कालद्रव्य है। पर उसका बहिरग कारण है परमाणु। मदगतिसे गमन करने वाला परमाणु है।

जैसे घड़ा उत्पन्न होता है तो उसमें बहिरग निमित्त है कुम्हार। कहीं कुम्हार घड़ा नहीं बन जाता, पर वह व्यंजक निमित्त है। इसी प्रकार काल द्रव्य जो है वह समयका उपादान कारण है और पुद्गल परमाणु मदगतिसे गमन करे उसमें वह है बहिरग कारण। सो उसमे परमाणुके गमनके कालमें यद्यपि धर्मद्रव्य सहकारी कारण है तो भी कालाण से कालाण तक गमन करनेमें कालकी अपेक्षा समझो कालद्रव्य भी सहकारी कारण है। देखिए यहासे दो हाथ दूर हाथ सरकाया तो हाथके गमन करनेमे धर्मद्रव्य भी कारण है और कालद्रव्य भी कारण है। धर्मद्रव्य तो गमनरूपमे कारण है और गमन रूपका जो परिणमन होता है उस परिणमनमें कालद्रव्य कारण है। एक परिणमनमे कितने कारण बनते जाते हैं।

एक रागविकार हुआ या द्वेष परिणाम हुआ तो उस रागद्वेप परिणाम में कालद्रव्य कारण है। कर्मोंका उदय कारण है और जिन चीजको देख करके रागद्वेप हुआ वह चीज भी कारण है और जिस क्षेत्रमें आता है वह क्षेत्र भी कारण है। जैसी प्रसग, घटना और वातावरणमें रागद्वेप हुआ वह रागद्वेष भी कारण है। एक कार्यके होनेमे निमित्त कारण तो अनेक होते हैं मगर उपादान कारण वह एक रहता है। भले ही पचासों बातें मिलनेसे इसके क्रोध हो, मगर क्रोध तो इसके ही हुआ, उन पचासोंमें से एक भी मिल कर क्रोधी नहीं बना। अकेले ही क्रोधी बन सके। तो उपादान कारण तो एक होता है और निमित्त-नैमित्तिक अनेक हुआ करते हैं।

इस तरह सहकारीकारण बहुत होते है पर उपादान उसमे एक ही है। जैसे मछली गमन करती है तो मछलीके गमन करनेमें जल भी चाहिए। वह भी कारण बना। पर गमन करने वाली तो वह एक स्वयं मछली हुई। उपादान कारण तो वह एक ही है और वास्तवमे इस मछलीके गमनका कारण तो धर्मद्रव्य ही है और जल जो है वह सहकारी कारण है। जैसे घटकी उत्पत्तिमे कुम्हार बहिरंग कारण है, फिर भी उसे चक्र चाहिए। जिन चीजोंसे वह घडा बनाता है वे चीजे भी चाहिये। वे सब सहकारी कारण है।

इसी तरह जीवद्रव्य जब गमन करता है तो उसमे धर्मद्रव्य कारण है, पर कर्म चाहिए, नोकर्म चाहिए। ये भी सहकारी कारण होते हैं और पुद्गलद्रव्यमे गमनका सहकारी कारण कालद्रव्य है। इस प्रकार ६ द्रव्योंकी जो विशद व्याख्या की जाती है उससे यह उपदेश ग्रहण करना है कि इन सब द्रव्योंमें जीवद्रव्य ही ग्रहण करने योग्य है। जीवोंमे भी पचपरमेष्ठीपद वह ग्रहण करने योग्य है। उनमे भी अरहंतसिद्धका विकाश है और उनमें भी विकास है। और निश्चयसे देखा जाय तो अपने आपमे अनादिकालसे विराजमान अहेतुक जो चैतन्यशक्ति है, स्वभाव है, जिसका मात्र जानन-शक्ति स्वरूप है, वह उपादेय है, उसको ग्रहण करना चाहिए। यह ही बात पंचास्तिकायमे कुन्दकुन्ददेवने बताई है, जहां सक्रिय और निष्क्रिय पदार्थों का वर्णन किया जा रहा था कि जीव और पुद्गल ये तो क्रियावान् हैं और शेष चार द्रव्य क्रियारहित हैं। जीवका सासारिक गतिमे गमनका कारण कर्म है। पुद्गलके गमनका कारण काल है। इस तरह जीव व पुद्गल के गमनका कारण धर्मद्रव्य है व कालद्रव्य सहकारी कारण हैं। तो भी निश्चयसे गमन आदिक क्रियावोंसे रहित निष्क्रिय शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।

ऐसा सब जान करके अपने शुद्ध आत्माके स्वरूप पर दृष्टि करनी चाहिए। सब ज्ञानोंका इतना ही मात्र प्रयोजन है। जैसे जम्बूद्वीपसे तीनों लोकोंका वर्णन सुनकर ऐसा ख्याल करना चाहिए कि अहो एक इस शुद्ध जीवस्वभावको जाने बिना यह मैं ऐसी-ऐसी जगहोंमें जन्म मरण करता फिर रहा हूं। जब अवगाहना बताई जाती है कमल इतनी अवगाहनाका है, मच्छ इतनी अवगाहनाका है। उस समय यह ध्यान करना चाहिए कि एक निज ज्ञानस्वरूपके जाने बिना हमने ऐसी-ऐसी अवगाहनावोंमें जन्म लिया है। इसी प्रकार द्रव्यस्वरूपके वर्णनमे शुद्ध ज्ञायकस्वरूप ही उपादेय है यह जानना चाहिए। कुछ भी वर्णन चले उस वर्णनसे शिक्षा लेनी चाहिए, निजस्वभावके ग्रहणकी।

द्रव्य ६ जातिके होते हैं। उनमेंसे २ तो सक्रिय हैं और चार निष्क्रिय हैं। जीव और पद्गल इन दोमें ही क्रिया होनी है और बाकी चार जहांके तहां अवस्थित हैं। और जीवों को भी स्वभावसे देखो तो वे निष्क्रिय हैं और जब स्वभावपर्याय प्रकट होती है, सिद्धि हो जाती है तब वे व्यक्ति निष्क्रिय हैं। सो निश्चयनयसे जीवका स्वभाव निष्क्रिय है और जब सिद्ध हो जाता है तो उसका परिणमन भी निष्क्रिय है। इस कारण अपने आप को ऐसे निष्क्रिय स्वरूपसे ध्यान करते चलो, फिर जीवमय निहारो, किन्तु निष्क्रिय अपने स्वरूपमें स्थिर ऐसा निष्क्रिय देखो। जितनी भी क्रियाएँ प्रवर्तमान होती हैं वे द्वैतमें गोचर हैं। केवल एकको देखो तो वहां क्रियाएँ नजर नहीं आतीं एक स्वभावसे देखो तो। जब वह आत्मा अद्वैत हो जाता है, केवल रह जाता है तो उसमें क्रिया कैसे हो सकती है? तो निष्क्रिय है सिद्ध और निष्क्रिय है आत्मस्वभाव। सो निष्क्रियके रूपमें जीव का ध्यान करो।

भैया! समझने की चार अपेक्षाएँ होती है--द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। इस चौकीको जानना है तो द्रव्य तो वह है जो पिण्ड है और क्षेत्रसे जितनेमें घिरी हुई है उतना लम्बा चौड़ा इसका क्षेत्र है और कालसे इसकी जो परिणति है, रूप रग है वह इसका काल है। जीर्ण है, नवीन है वह इसका काल है और भाव क्या है कि जो इसमे गुण हैं वे भाव हैं। हर एक पदार्थोंमे ये चार चीजें घटा लो— द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। यह हाथ है यह तो है द्रव्य। यह इतना लम्बा, चौड़ा, मोटा फैला हुआ है यह इसका क्षेत्र हुआ और हाथकी जो स्थिति है वर्तमान, रूपसे, रगसे, गधसे स्पर्शसे जो इसकी स्थिति है वह उसका प्रदेश हुआ, काल हुआ और इसमें जो शक्ति है वह भाव हुआ। इसी तरह जीवमें घटालो। जो इतनी पर्याय का पिण्ड है वह तो जीवद्रव्य है और जितने प्रदेशमें यह फैला हुआ है वह क्षेत्र है और जो जीवकी परिणति होती है, कषायकी अथवा क्रिया की जो परिणति होती है वह काल है और जीवमे जो गुण है वह इसका भाव है।

कोई पूछे कि बतलावो यह चौकी कैसी है? तो कोई कहता है कि एक फुट ऊंची है, एक लडका बोलता है कि यह डेढ़ फुट चौडी लम्बी है। तीसरा बोलता है कि यह तीन फुट लम्बी चौड़ी है। तो चौथा बोला कि यह पीली-पीली है, ५ वां बोला कि यह पुरानी है, छठा बोल दे कि यह अमुक लकड़ीकी है। तो किसी बातको आप गलत कहेंगे? सभी की सही है, गलत तो किसीकी नहीं है, पर प्रयोजन जिस बातका हो और जिस

प्रयोजनके लिए पूछा गया हो उससे मिलता जुलता यदि उत्तर देवे तो वह प्रसगमें फिट बैठेगा। और उत्तर दें दूसरे किस्मका तो प्रसगमें फिट नहीं बैठ सकता।

इसी प्रकार जीवद्रव्यको, जीव वस्तुको हम चार निगाहोंसे देख सकते हैं। गुणपर्यायका पिण्ड असख्यात प्रदेशी और जैसी भी इसकी परिणति हो वह परिणति और जो-जो इसमें गुण है वे भाव, इन चारों दृष्टान्तोंसे हम जान सकते हैं पर,जब प्रयोजनका प्रयोजन आत्माके अनुभव से हो और आत्मानुभवके प्रयोजनसे जीवको जाननेकी बात कही जाये तो द्रव्यको जीव बताया तो प्रयोजन में फिट न बैठेगा अर्थात् अनन्त गुणो पर्यायोंका पिण्ड यह जीव है, ऐसा जानते रहनेसे आत्माका अनुभव नहीं होता।

यद्यपि बात सत्य है कि जीव अनन्तगुण और अनन्तपर्यायोंका पिण्ड है, फिर भी आत्मानुभवके प्रयोजनसे ऐसा छितरा पितरा ज्ञान न चाहिए। उसे केन्द्रका स्पर्श करने वाला और अपने आपमें अपनेको मग्न कर सकने वाला ज्ञान चाहिए। गुणपर्यायका पिण्ड है ऐसी निगाहमें तो इस जीवका उपयोग और भटक गया। अच्छा क्षेत्रकी दृष्टिसे जीवको बताया जाये तो भी प्रयोजनमें फिट नहीं बैठता। प्रयोजन तो है आत्माके अनुभवका और देखा जाये आत्माको इस तरह कि वह असख्यात प्रदेशी है। इसके इतने प्रदेश हैं कि पूरी तौरसे फैल जाये तो पूरे लोकाकाशको व्याप सकता है। इतना बड़ा जीव होता है। इस तरहकी दृष्टिसे जानने पर यद्यपि बात सच है तो भी प्रयोजनको पुष्ट नहीं करता है। देखो जावो— इतना छोटा है इतना बड़ा है, बाहु बलिस्वामी इतने बड़े ऊँचे थे, भरत जी इतने बड़े थे, निरखते जावो, अथवा शरीरकी भी दृष्टि छोड़कर केवल जीव जीवके फैलावका ही ध्यान देकर देखते जावो— यह जीव इतना लम्बा चौड़ा है, तो ऐसा देखनेसे आत्माका अनुभव नहीं जग सकता, क्योंकि प्रयोजन आत्मानुभवका है।

कालदृष्टिसे निरखो आत्मा कैसा है? उत्तर दे कोई कि रागी है। क्रोधी है, मानी मायावी है, व्रती है, सयमी है, तपस्वी है, मोक्षके मार्गमें उत्साह वाला है। कितनी ही बातें कहते जावो, पर उन बातोंसे प्रयोजन पुष्ट न होगा। जब प्रयोजन आत्माके अनुभवका है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल इन तीन दृष्टियोंके उत्तर इस प्रसगके योग्य नहीं हैं। हालाकि जानकारीके लिए वे सब दृष्टिया हैं और जानते जावो अपना उपयोग लगानेके लिए भिन्न-भिन्न प्रकारकी जानकारी, किन्तु स्वानुभव नहीं जग सकता इस

ज्ञानके बाद ।

तब शेष रही भावदृष्टियां । पदार्थोंके गुणों पर दृष्टि दो । सो इन भावोंमे भी भिन्न-भिन्न भाव हैं । और अनेक भावों पर दृष्टि दो तो भी स्वानुभव नहीं जगता है । स्वानुभवके लिए एक विषय वाला और स्वयके स्वरूप वाला चाहिए । जहा ज्ञान, ज्ञाता ज्ञेयका भेद नहीं रहता अर्थात् ज्ञान ही ज्ञेय हो जाता, ज्ञान ही ज्ञाता हैं । ऐसा जब ज्ञाता ज्ञेयका भेद होता है तब स्वानुभव होता है । अर्थात् यह ज्ञान, ज्ञानस्वभावका ही परिचय करे तो ऐसा ज्ञानानुभव ही स्वानुभव कहलाता है । तो भिन्न-भिन्न गुणों पर दृष्टि देने पर भी आत्माका अनुभव नहीं होगा । यद्यपि इस दृष्टिमे आत्मा के ध्रुव भावपर दृष्टि है जो सदा रहती है तन्मय, जिसके बिना आत्मा रह ही नहीं सकता । फिर भी यह श्रद्धा है, यह चारित्रगुण है, यह आनन्दगुण है, यह ज्ञानगुण है, यह दर्शनगुण है, भिन्न-भिन्न गुणों पर दृष्टि है । तो जानने वाला ज्ञान अस्थिर हो गया । अब इसे जाना ।

सब गुणोंका भावरूप जो आत्माका चैतन्यस्वभाव है अर्थात् आत्मा जिस एक असाधारण गुणको लिए हुए है, उस असाधारण गुणस्वरूप आत्माको ज्ञानमें लिया जाय तो वहा ज्ञान और ज्ञानस्वभाव एक ज्ञाता और ज्ञेय हो जाते हैं । ऐसी स्थितिमें जानने वाला ज्ञान रहा और जानने मे जो कुछ आया वह भी ज्ञान रहा, सो ज्ञान ही ज्ञान रहा और ज्ञान ही ज्ञाता रहा, ज्ञान ही ज्ञेय रहा । सो ज्ञाता और ज्ञेयकी भेद परिणतिमे स्व का अनुभव होता है । कितनी दूर चला गया यह उपयोग अर्थात् जीवके इस उपयोगको कितनी बाहरी चीजोंको बताया गया कि जिससे आत्माका अनुभव नहीं हो पा रहा है ।

देखो भैया ! हमको कितना लौटना है । हम स्वभावसे उल्टे कितने चले गए हैं तो बहुत लौटना पडेगा । प्रथम तो धन वैभवसे निवृत्ति करो ये पर हैं पुद्गल, फिर चेतन परपदार्थोंसे निवृत्ति करो, ये परिवार मित्रजन ये सब पर हैं, इनका स्वरूपास्तित्त्व इनमें ही है । मेरा अस्तित्त्व मुझमें ही है । मेरेसे बाहर कुछ नहीं होता और ये सब जीव भी अपने आपसे बाहर नहीं हैं । वे खुदमे हैं, मैं खुदमें हू । उन चैतन्यपरिग्रहोंसे निवृत्ति करना है ।

फिर तीसरा बार आता है शरीरसे निवृत्त होना । अपने शरीरसे भी अपनेको न्यारा जानना है, शरीरमें रहकर भी शरीरका भान न रहे कि शरीर मेरे साथ है । उस शरीरको ज्ञानमें ही न लो, विकल्पमे ही न लो, ऐसी स्थिति बनानी है । चौथी बार जो आगमसे या युक्तियोंसे कर्मज्ञान हुए हैं उन कर्मोंसे भी निवृत्त होना है । ये द्रव्यकर्म पौद्गलिक हैं, भिन्न सत्ता

वाले हैं, मेरेसे इनका सम्बन्ध नहीं है। त्यों द्रव्यकर्मोंसे निवृत्त होना है।

५ वीं बारमे उन द्रव्यकर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए जो रागादिक विकार हैं, उन रागादिक विकारोंसे भी जुदा होना है। ये परभाव हैं, विकार हैं, इनसे मै न्यारा हू, ये मेरे आधीन नहीं हैं। ये होते हैं यद्यपि आत्मामे है, पर कर्मविपाकके होने पर ही होते हैं। कर्मोदय नहीं होता तो नहीं होते हैं। इस कारण ये रागादिक विकार परभाव हैं। फिर छठी बारमे सुख दु खसे निवृत्त होना है। यद्यपि रागादिक भी विकार हैं और सुख दु ख भी विकार हैं, फिर भी भावदृष्टिमें सुख दु·खका अनुभव रागादिक विकारोंके अनुभवसे सूक्ष्म है। उनसे जुदा होवो।

फिर ७ वीं बारमें जिन ज्ञानावरणादिक कर्मोंमें क्षयोपशमके अनुसार वितर्क विचार उत्पन्न होते हैं उनको भी हेय जानकर उनसे निवृत्त हो, फिर ८ वीं बारमे यावन्मात्र पर्याय हैं उनमे शुद्ध और अशुद्धका भेद न डालकर केवल पर्यायके नाते से, सब पर्यायोंसे अपनेको न्यारा निरखना है। जो पर्याय होती है उससे न्यारा, और जितनी पर्याये भविष्यमे होगी, चाहे अतमे शुद्ध अवस्था भी हो, उन सब पर्यायोंसे न्यारा अपनेको निरखना है।

फिर नवीं बारमें अपने आपमे अनादि अनन्त अहेतुक नित्य प्रकाशमान् जो गुण हैं उन गुणोंसे भी न्यारा निरखना है, क्योंकि उन भिन्न-भिन्न शक्तियोंरूप यह आत्मा नहीं है। आत्मा तो एक अद्वैत है और उसका एक अद्वैत स्वभाव है। अद्वैत स्वभावको जाननेके लिए कुछ द्वैतका उपाय बनाकर समझना है। किन्तु परमार्थत· ऐसा बनता नहीं है कि ज्ञानादिक अनन्तगुण बसे हुए हैं और उनको पिण्ड बना दिया जाये तो आत्मा बन जाये। जैसे आठ काठ मिले तो खाट बन जाये। दो सिरा, दो पाटी और चार पावा। इन आठोंको मिला दिया तो खाट हो गया। ऐसा आत्मा नहीं है कि ज्ञान दर्शन आदिक अनन्त गुण हैं, उनको मिला दिया, इकट्ठे कर दिया तो आत्मा बन गया। आत्मा तो एक अद्वैत है। परका आत्मा अपने आपमे केवल एक अद्वैत है और उसका स्वभाव भी एक अद्वैत है। अद्वैतका अर्थ है केवल स्वरूपमात्र, जिसमे दूसरा मिला न हो। ऐसा अद्वैत मैं हू, और मैं ही क्या, प्रत्येक वस्तु अपने आपमें अद्वैत है। कोई वस्तु किसी दूसरेकी प्रार्थना पर अपना अस्तित्त्व निर्भर नहीं रखता। किसी दूसरेकी आशा पर कोई पदार्थ अपना अस्तित्त्व नहीं रखता। वह है, अपने आप है, इस कारण द्वैत द्वैतके रूपसे जाने गए जो भिन्न भिन्न गुण हैं उन गुणोंकी दृष्टिसे आत्माको निहारा जाये तो आत्माका अनुभव नहीं होता है। तो उन उपयोगो से भी निवृत्त होना है।

अब दसवीं बारमें आत्माके अभेद स्वभावका ज्ञान करनेमें यत्न कीजिए। इस स्वभावके ज्ञानसे आत्माको अपना प्रयोजन आत्मानुभव सिद्ध हो सकता है।

एक इस आत्मस्वरूप तक पहुचनेके लिए समस्त परपदार्थोंको बताना पडता है, निमित्तनैमित्तिक बताना पडता है, निमित्त भावोंको बताना पडता है। इस सब वर्णनका प्रयोजन उनका वर्णन करना ही नहीं है, अथवा उनका ज्ञान करते रहना इन सब बातोंके वर्णनका प्रयोजन नहीं है किन्तु पर को जानकर, परभावोंको जानकर निमित्त वियोग भावोंको जानकर इन सब को हटाना है। परभावोंका जानना उनसे हटने के लिए है, उनमें लगनेके लिए नहीं है। तो यहा इस प्रकार सब पर और परभावों से न्यारा देख कर इन जीवोंको अपने आपमें भी भेदसे हटकर एक अभेदज्ञायकभावमें ले जाया गया है। आनन्दकी कुञ्जी अपने आपमे मौजूद है। आनन्ददाता ज्ञायकस्वरूप भगवान् यह स्वयं अपने आप है। उपयोगको अपने आपकी ओर ले जाने भरका काम है। आनन्द तो स्वय ही है। सो जितना यत्न हो सके ज्ञानबल द्वारा ऐसा ही यत्न किया जाना चाहिए कि इन सब परभावोंको छोड़कर, अपने आपमें विश्राम लेकर शास्वत विराजमान भगवान्को निरखें और उसे ही ज्ञानमें लेकर अपना अनुभव करे।

भैया! यत्नके बिना न कोई सिद्धि होती है और न कभी कोई सिद्धि हो सकती है। आनन्दके लिए इस जगत्में बहुत दूर-दूर तक दौड लगाया किन्तु आनन्दका स्रोत आखिर मिला अपने आपमें ही और खुद ही। सो जैसे कस्तूरी वाला मृग अपनी नाभिमें बसी हुई कस्तूरीका गध लेकर उस गधकी आसक्तिसे एकदम गधवाली चीजमें मिल जानेका, लिपट जानेका ख्याल बनाता है और गधवाली चीजको बाहर ढूँढता है, बाहरमें दौड लगाता है। कुछ-कुछ गध हर जगहसे आ रही है क्योंकि नाभिमें ही तो कस्तूरी बसी है। अपने आपकी नाभिमें बसी हुई कस्तूरी का परिचय न होने से यह हिरण जगलका कोना-कोना छान डालता है, अपनेमें थकावट कर लेना है, किन्तु मिलता इसे कुछ नहीं है। कहासे मिले जहा चीज नहीं है वहा ढूँढता है तो मिल कैसे जाये?

जैसे जब किसी आदमीसे आप मिलना चाहते हैं और यहा वहा प्रयत्न भी कर लिया फिर भी न मिला और अचानक ही कहीं मिल गया तो कहा 'वाह हमने तो तुम्हें कुवेंमें बास डालकर देखा, न मिले पर अब मुश्किलसे मिले।' इसका मतलब यह है कि खूब खोजा बाहर, वहा खोजा तुम्हें जहा तुम नहीं थे। कुँवामें बास डालकर खोजा इसका अर्थ यह है कि

हमने तुम्हें वहा खोजा जहा तुम न थे। कुवेमे होना असम्भव बात है और वास डालकर उसे खोज निकाले यह तो बडो असभव बात है। तो यों ही जहां आनन्द नहीं है वहा आनन्द खोजा, पर मिला नहीं। अचानक जब कभी सकल्प विकल्प विश्रांत हो जाये और स्वय सहज इस आत्माका परिचय बन जाये, अनुभव हो जाये तब इसे ख्याल होता है कि अहो इस आनन्दको खोजनेके लिए मैंने कितनी-कितनी दृष्टिया लगाई? जहा-जहा देखा वहा आनन्दका नाम नहीं था। आनन्द मिला खुद ही मे। तो सबसे निवृत्ति करके अपने ज्ञानस्वरूप प्रभुत्वमे अपने चित्तको लगाना है। पूर्व बाधे हुए कर्मोंके उदयमें यद्यपि बाह्यकी ओर चलितपना होता है, फिर भी यथाशक्ति यह यत्न करो कि अपनेको ज्ञानमय निहार कर अपने ज्ञानस्वरूप मे स्थिर रहो। इस निजस्वभावकी स्थिरतासे ही सब अर्थोंकी सिद्धि होती है।

जितने भी पदार्थ होते हैं वे कुछ न कुछ अपने परिमाणको लिए हुए हैं अर्थात् क्षेत्रकी अपेक्षासे वे कितने बाहुल्यको लिए हुए हैं—ऐसी उनमे प्रदेशोंकी संख्या होती है। तो किस द्रव्यके कितने प्रदेश हैं—ऐसा बतानेके लिए आगे दोहा कहते हैं।

धम्माधम्मु वि एक्कु जिउ ए जि असख पदेसु।
गयणु अणंत पए मुणि बहु-विह पुग्गल देसु ॥२४॥

६ द्रव्योंमें से कालद्रव्य तो एकप्रदेशी है। उसको छोडकर बाकी जो ५ द्रव्य हैं उन्हें अस्तिकाय कहते हैं। अस्तिकायका अर्थ है कि जिसमे काय है, मायने प्रदेशका सचय है। दो आदिक प्रदेश हैं, उन्हें कहते हैं अस्तिकाय। उनमें से धर्मद्रव्यमे और अधर्मद्रव्यमे तथा एक जीवमे असंख्यात प्रदेश होते है। धर्मद्रव्य लोकाकाशके बराबर परिमाणके घेरेमे फैला है। वह एक है और असख्यातप्रदेशी है। इसी प्रकार अधर्मद्रव्य भी लोकाकाशके बराबर जगहको घेरे हुए है, एक है, वह भी असख्यातप्रदेशी है। एक जीवद्रव्य चूकि वह फैले तो लोकाकाशके बराबर फैल सकता है और ऐसा फैलना लोकपूरण समुद्घातमें होना है। लोकपूरण समुद्घात के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थमे जीव लोकाकाश भरमें नहीं फैल सकता। पर उनमे प्रदेश कभी भी फैले, फैल तो सकें उस अपेक्षासे असंख्यातप्रदेशी है, और उनका सकोच भी हो जाये, मनुष्यके शरीरमे, चींटीके शरीरमें इतने परिमाण बराबर भी रह जाये तो भी असख्यातप्रदेशी कहेंगे।

आकाशमें अनन्तप्रदेश हैं, क्योंकि आकाशका कहीं भी अत नहीं है।

किसी भी दिशामें देखते जावो, आकाशका अत नहीं होगा, क्योंकि आकाश का अत हो गया तो उसका फिर क्या रहा ? आकाश तो एक पोलका नाम है। यो मोटे रूपसे समझो और पोलका हो गया अन्त तो मूल ठोस रहेगा कहा ? तो आकाशका अन्त कहीं भी नहीं है। आकाशके अनन्त प्रदेश हैं।

पुद्गलद्रव्यके बहुत प्रकारके प्रदेश हैं। वास्तवमें तो पुद्गलद्रव्य एकप्रदेशी है। एक परमाणु ही परमार्थत पुद्गल है। स्कध तो परमाणुवोंसे मिलकर बनता है और वह परमाणुवोंकी द्रव्यपर्याय है। स्वय द्रव्य नहीं है। सो वस्तुत पुद्गल एकप्रदेशी है, किन्तु उन परमाणुवोंमे ऐसी शक्ति है कि वे मिलकर एक पिण्ड हो जायें और बिछुड भी जावें तो चूकि वह एक पिण्ड हो सकते हैं। सो कभी दो परमाणु मिलकर एक पिण्ड हुआ तो दो प्रदेश हो गए। सख्यात, सख्यात परमाणु मिलकर पिण्ड हुए तो वे सख्यात असख्यात प्रदेशी हुए। अनन्तपरमाणु हो गए तो उन परमाणुवोंमें अनन्त प्रदेश हो गए। इस तरह पुद्गलद्रव्यके उपचारसे नाना प्रकारकी परिणतिया होती हैं।

इन परद्रव्योंका तर्कणाके साथ जानना क्यों जरूरी है ? यों कि जिन परद्रव्योसे हमे हटना है उन परद्रव्योका विशद बोध न हो तो हम कैसे हट सकते हैं? इसलिए द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, भावसे, चारों द्रव्योंसे हमें परद्रव्यों को समझना है। इस कथनसे हमे यह शिक्षा मिलती है कि निश्चयसे शुद्ध आत्मा ही साक्षात् उपादेय है, जिसके प्रदेश अमूर्त हैं, जहा द्रव्य कर्मका सम्बन्ध नहीं है, मिथ्यात्व, रागादिकरूप भाव कर्म सकल्प और विकल्पका जहा अभाव है, शुद्ध है, लोकाकाशके परिमाण हैं, ऐसे असख्यात प्रदेश जिसके होते हैं, ऐसा शुद्ध आत्मा ही साक्षात् उपादेय है। इन सब द्रव्योंको जानकर इनमें ऐसा विवेक करना है कि यह जो एक निज शुद्ध आत्मा है वह तो उपादेय तत्त्व है और इसके अतिरिक्त अन्य आत्मा और अन्य समस्त पदार्थ ये सब अनुपादेय तत्त्व हैं।

परद्रव्यको हम ग्रहण भी नहीं कर सकते हैं। दूसरे जीवोंको हम कैसे ग्रहण कर सकते हैं ? न प्रदेशोंसे, न उपयोगसे, न परिणतिसे, न गुणों से किसी भी दृष्टिसे हम पर जीवोंको ग्रहण नहीं कर सकते हैं। हम अपने आपको ही ग्रहण किया करते हैं। सो अपने आपमें भी विकार, द्रव्यकर्म शरीर सबकी दृष्टि छोड़कर एक निज शुद्ध स्वभावकी दृष्टि करें तो इस तरह हमारे लिए हम ही उपादेय हो सकते हैं। इस तरह तीन लोकमे देखो तो प्रत्येक प्रदेश पर छहो द्रव्य मौजूद हैं। कोई भी लोकमे ऐसा प्रदेश नहीं है जहा ६ से एक भी कम द्रव्य मिले। कोई सी भी जगह ले लो। सूईकी नोक

धरकर इशारा करके कि इस आकाशके प्रदेशमें बतलावो। तो आकाश तो है ही और सर्वत्र लोकाकाशके एक एक प्रदेश पर एक एक कालद्रव्य ठहरा है। वहा कालद्रव्य भी है, धर्मद्रव्य भी व्यापक है, अधर्मद्रव्य भी व्यापक है। अब रह गए जीव और पुद्गल। सो सूक्ष्म निगोद जीव सर्वत्र लोकाकाशमें ठसाठस भरे हुए हैं। आकाश, लोकाकाश का कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं है जहा अनन्त निगोदिया जीव न पाये जाते हो और जब निगोदिया जीव हैं तो एक जीवके साथ अनन्त पुद्गल चिपटे हुए हैं। प्रथम तो शरीर मे ही अनन्त पुद्गल है, फिर तैजस शरीरमें हैं, फिर कार्माण शरीरमें है, फिर विश्रसोपचयमें हैं। यो एक ससारी जीवके साथ अनन्त परमाणु सलग्न हैं। तो किसी भी प्रदेशमें सकेत करलो, सर्वत्र ६ द्रव्य पाये जाते हैं, जहा लोकाकाशके बाहरी प्रदेशोमे केवल आकाश ही आकाश है।

सो यद्यपि ये समस्त पदार्थ एक क्षेत्रावगाह रूपसे ठहर रहे हैं। तो भी निश्चयसे सकर और व्यतिकर नहीं होते। अर्थात् कोई पदार्थ किसी पदार्थमें मिल जाये, एक स्वरूपमें हो जाये—ऐसा त्रिकालमें भी नहीं होता। उस ही प्रदेशपर छहो द्रव्य हैं, प्रत्येक द्रव्य अपने अपने स्वरूपको नहीं छोड़ता है। जीव कर्मोंके साथ अनादिकालसे बँधा हुआ चला आ रहा है, फिर भी कर्मोंमे कर्म हैं, जीवमें जीव है, एक दूसरेका स्वरूप ग्रहण नही कर सकता। यह सत्तासिद्ध अधिकार है। पदार्थ चूँकि है, सत् है। तो सत् होनेका अर्थ ही यह है कि वह अपने स्वरूपसे है और परके स्वरूपसे नहीं है।

देखो भैया! अनेकांत हर जगह आ पड़ता है। कुछ भी बात कहे तो उसमें अनेकात हो जाता है। अपनी कोई बात सामने रखें कि यह ऐसा है उसका अर्थ ही यह है कि यह ऐसा है और प्रकार नहीं है। है और नहीं, ये दोनों एक साथ चलते हैं। है के साथ नहीं और नहींके साथ है ये दोनो बराबर चलते हैं। यह बात ऐसी है, इसका अर्थ यह है कि और प्रकार नही हैं। यदि और प्रकार नही है, इसका अभाव हो जाये तो इसका अर्थ यह है कि यह और प्रकार हो गया। फिर स्वय नहीं है। तो कोई पदार्थ है उसका अर्थ यह है कि अपने स्वरूपसे है और परके स्वरूपसे नहीं है। तो एक जगहमें ६ हों द्रव्य बराबर रहा करते हैं, किन्तु वे सब द्रव्य अपने-अपने स्वरूपको नहीं छोडते हैं, इस बातको दिखाते हैं.—

लोयागास धरेवि जिय कहिमइँ दव्वइँ जाइँ ॥२५॥
एक्कहि मिलियइँ इत्थु जगि सगुणहिं णिवसहि ताइँ ॥२५॥

लोकाकाशमें मर्यादा करके हे जीव! सब लोकाकाशको आधार करके

आधयरूपसे स्थित हुए ये समस्त द्रव्य जो बताए गए हैं वे एक दूसरेसे गुणों में कभी भी नहीं मिलते हैं। अथवा व्यवहारसे एक क्षेत्रमें ये सब रह रहे हैं। फिर भी अपने स्वरूपको ये नहीं छोड़ते। पावभर दूध और पावभर पानी एक गिलासमें मिल गया। मिला हुआ मालूम होता है, उसे न्यारा सा नहीं पाते। फिर भी पानीमें पानी है और दूधमें दूध है। दूध पानी नहीं बन गया और पानी दूध नहीं बन गया। किसी एक क्षेत्ररूप ठहरे हैं। दूध और पानी न्यारा नहीं किया जा सकता है, लेकिन अब भी पानीमें ही पानी है और दूधमें ही दूध है और अग्नि पर रख दो दूधका बर्तन तो उसमें से पानी पहिले उड़ेगा और दूध रह जायेगा। तो ऐसा एकमेक होकर भी दूधमें पानी नहीं है और पानीमें दूध नहीं है। अपने-अपने स्वरूपसे वे सब रहते हैं।

इसी प्रकार लोकाकाशके प्रदेश पर एक जगह ही सब द्रव्य आ गए, फिर भी कोई भी द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यके स्वरूपको ग्रहण नहीं करता है। अपने स्वरूपका गुण भी नहीं छोड़ता है। अब नये विभागसे इस वर्णनको यों देखो—जैसे कहते हैं कि आकाशमें हम रहते हैं। तब आकाश एक स्वतंत्र पदार्थ है और हम भी स्वतंत्र पदार्थ हैं, फिर भी हम आकाशमें रहें ऐसा क्यों कहा जाये? आकाशमें आकाश है, हममें हम हैं। स्वरूपको देख करके विचार करो तो मैं आकाशमें नहीं रहता, आकाश मुझमें नहीं रहता। आकाशमें आकाश रहता है और मुझमें मैं रहता हूं। स्वरूपपर दृष्टि देकर देखो और बाहरी संयोग और व्यवहारदृष्टिसे देखो तो आधार आधेय जँचता है कि आकाश तो आधार है और जीव आधेय है। जीव चूँकि आकाशसे छोटा है परिमाणमें इस कारण जीवको आधेय कहा गया है और कदाचित् जीव बड़ा होता और आकाश छोटा होता तो फिर किसे आधार बताते और किसे आधेय बताते? जीव आधार कहलाता और आकाश आधेय कहलाता क्या? आकाशमें आकाश है और जीवमें जीव है। यह स्वरूपमें दृष्टि देकर देखना चाहिए।

सो यद्यपि उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे आधेय आधारभावमें एक क्षेत्रसे ये सब ठहरे रहते हैं तो भी शुद्ध परमपारिणामिक भावका ग्रहण करने वाला जो स्वानुभव है वह जब दिख जाये तो संकर व्यतिकर नहीं है। कोई किसी दूसरेमें नहीं मिलता है। अपने-अपने सामान्य और विशेष शुद्ध गुणको वे पदार्थ नहीं छोड़ते हैं। जिनसिद्धान्तकी महिमा वस्तुस्वरूपके प्रतिपादनमें है और वस्तुस्वरूपका यथार्थ बोध हो तो मोह छूटता है। मोह किसीसे प्रार्थना करने से नहीं छूटता है। हम दीन बनकर भगवान्से ऐसी

प्रार्थना करे कि हे नाथ! मेरा मोह छुड़ा दो तो वह अपने चिदानन्दस्वरूप कोछोड़कर इस जीवको मोह छुड़ानेके लिए अपना पद त्यागकर नहीं आते, वे रागी द्वेषी नहीं बनते हैं। हम ही वस्तुका यथार्थ ज्ञान करें तो मोह छूटेगा।

भैया! भगवानकी भक्ति तो शुद्ध चैतन्यविकासमें उत्साह जगानेके लिए है और अपने आपमें ऐसा हो सकता है। यह मेरा स्वरूप है- इस विश्वासको कराकर आगे प्रगति बढ़ानेमें कारण है, किन्तु कोई प्रभु अपना चिदानन्द स्वरूप त्यागकर किसी जीवका उद्धार करने, मोह छुड़ाने आता हो, ऐसा नहीं है। भगवान तो सर्वज्ञ है, निर्दोष है, शुद्ध विकासमय है। उनके ध्यान करने ही मात्र से जीवके संकट टलते हैं, विपत्तियां टलती हैं। प्रभु स्वयं आकर इस जीवको नहीं उठाता।

मोह कहते किसे हैं? एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ सम्बन्ध माननेको मोह कहते हैं। मोह मिटेगा कैसे? एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसी दृष्टि बननेसे मोह मिटता है। ऐसी दृष्टि बने कैसे? सर्वद्रव्योंका यथार्थस्वरूप जान लो। यदि एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य कुछ लगता है तो मानते रहो एक दूसरेको, कोई अधर्म नहीं है और यदि नहीं लगते हैं एक दूसरेके कुछ तो ऐसा ही मान लेना, इसीको धर्म कहते हैं।

प्रत्येक पदार्थके अनन्त गुण हैं, अनन्त शक्ति हैं। उन अनन्त शक्तियोमे से कुछ शक्ति तो सब पदार्थोंके साथ मिलती जुलती है और कुछ शक्ति दूसरे द्रव्योंमे नहीं मिलती, उस ही द्रव्यमे मिलती है। जो शक्तियां सब द्रव्योंमे मिल सकती हैं, उनको कहते हैं सामान्यगुण और जो शक्तियां अन्य द्रव्योंमें न मिले उन्हें कहते हैं विशेषगुण।

जैसे जीवके अस्तित्वगुण है अर्थात् जीव है, उसमे सत्ताकी शक्ति है, सत्ताकी शक्ति अन्य द्रव्योमे भी तो है इसलिए सत्ता सामान्यगुण हुआ। जीवके स्वरूपसे हो और दूसरेके स्वरूपसे न हो ऐसी शक्ति पाई जाती है। है ना? ऐसा प्रत्येक जीव अपने ही स्वरूपसे है और परके स्वरूपसे नहीं है। इस मुझमें ही रहता हुआ मैं चटाई, चौकी, भींत नहीं हो जाऊंगा। ऐसी बात है ना? तुम भी अपने स्वरूपसे हो और परके स्वरूपसे नहीं हो। ऐसी बात आत्मामे पाई जाती है ना? तो ऐसी बात क्या अन्य द्रव्योंमें नहीं पाई जाती है? पुद्गल भी अपने स्वरूपसे हैं और परजीव आदिकके स्वरूपसे नहीं हैं। आकाश भी अपने स्वरूपसे है और अन्य द्रव्योंके स्वरूपसे नहीं है तो यह शक्ति भी प्रत्येक द्रव्यमे पाई जाती है। इस शक्तिका संक्षिप्त नाम

है वस्तुत्व शक्ति।

अच्छा और भी निरखो तो आत्मामें। यह मैं आत्मा सर्वत्र परिणमता रहता हू। किसी न किसी दशारूप रहा करता हू। किसी न किसी ज्ञानरूप बना करता हू। ठलुवा नहीं बैठा रहता। स्थिर भी बैठा होऊ तो अन्तर में परिणमता ही रहता हू, किसी ज्ञानरूप, किसी आनन्दरूप, किसी अनुभवरूप। तो सर्वत्र परिणमते रहनेका मुझमे गुण है। तो क्या और पदार्थ सर्वत्र नहीं परिणमते हैं? प्रत्येक पदार्थ निरतर परिणमते हैं। इसका नाम है द्रव्यत्वगुण। जिस गुणके प्रतापसे पदार्थ निरन्तर परिणमता रहे तो वह द्रव्यत्वगुण सामान्य गुण हुआ। सर्व परपदार्थोंमें पाया जाता है।

और यह यों निरखो अपने आपमें गुण, यह मैं अपने आपमें अपने आपके द्वारा परिणमता रहता हू। किसी अन्य द्रव्यरूपसे नहीं परिणमता हू। जैसे दूध और पानी मिल जाय तो उस समयमे भी पानी जो कुछ परिणम रहा है वह पानीके ही रूपसे परिणमता है। दूध अपने दूधके ही रूपसे परिणम रहा है। यहीं आकाश भी है और यहीं हम और आप जीव भी बैठे हैं। आकाश अपने आपके रूपसे परिणमता है और हम और आप अपने आपके खुदके रूपसे परिणमते हैं। तो अपने आपके रूपसे परिणमना, दूसरे के रूपसे न परिणमना यह गुण भी हम आपमें है ना। और यह गुण अन्य पदार्थोंमे नहीं है। पुद्गल भी अपनेरूप परिणमता है, परके रूपसे नहीं परिणमता है। इन गुणोंका नाम है अगुरुलघुत्वगुण।

अगुरुलघुत्वका यह अर्थ कैसे निकला? अगुरुलघुत्व कहते हैं उसे कि जो न गुरु बने और न लघु बने। कोई पदार्थ न तो वजनदार बन जाये और न हलका हो जाये। इसका अर्थ यह है कि पदार्थ जितना है अपने स्वरूपसे उससे वजनदार कब बनेगा जब दूसरे पदार्थोंके गुण ग्रहण करे और यह पदार्थ हलका कब बनेगा कि जब अपने गुणोंको दूसरे पदार्थोंमे रखदे। यहा गुरु और लघुका मतलब वजनसे नहीं है किन्तु प्रत्येक पदार्थका जो स्वरूप है, जो उसकी सीमा है, जितने गुण हैं उतने ही रहते हैं। अन्य पदार्थसे आयें तो गुण अधिक हों सो ऐसा नहीं होता। सो हम न अधिक गुण वाले बनते और जितने हममें गुण हैं उन गुणोंसे न हलके हों। अर्थात् अपने ही गुणरूप ये रहते हैं और अपने ही गुणरूप ये परिणमते हैं, परके गुणरूप नहीं परिणमते हैं। इस शक्तिको कहते हैं अगुरुलघुत्व। यह गुण क्या अन्य द्रव्योंमें नहीं है? यह पुद्गलमे भी पाया जाता है और आकाश आदिकमें भी पाया जाता है। इस लिए यह भी सामान्यगुण हुआ।

ये सामान्यगुण सबमें है, किन्तु जीवका असाधारणगुण जीव है।

अन्यका असाधारण गुण इस अन्यमे है। प्रत्येक जीव अपने ज्ञानरूपसे परिणमता है। मै जीव परके ज्ञानसे न परिणम जाऊँगा, अपने ही ज्ञानरूप परिणमूँगा या पुद्गलद्रव्यके रूप आदिक गुणोंसे न परिणम जाऊँगा। अपने ही रूपसे परिणमूँगा। इसका नाम है अगुरुलघुत्व।

अब इसके आगे चलकर देखो कि यह जीव किसी न किसी दायरेसे लगा हुआ होता है ना? जब कुछ अपने आपका अनुभव होता है तो कितने मे अनुभव होता है? सुख दुःख अथवा आनन्दका अनुभव चलता है तो किसी सीमा तक चलता है ना। और यों ही देखलो कि जितनेमे फैल जाता है, उतने ही क्षेत्रमें इसका अनुभव चलता है। तो उस भावके प्रदेश भी हुए तो मैं अपने ही प्रदेशोंमे हू, अपने ही प्रदेशों वाला हू। तो क्या अन्य द्रव्य अपने-अपने प्रदेश वाले नहीं हैं? तो इन गुणोंका नाम है प्रदेशत्व। यह भी सामान्य गुण है। सब द्रव्य अपना अपना प्रदेश रखते हैं।

मैं अपने द्वारा या किसी अन्यके द्वारा ज्ञेय होता हुआ जाना जाता हू तो क्या और द्रव्य नहीं जाने जाते हैं? वे भी जाने जाते हैं। तो यह शक्ति भी सबमें है इस शक्तिका नाम प्रमेयत्व है।

अनेक गुण तो एक दूसरेमे सदृश होते हैं, उन्हें कहते हैं सामान्यगुण और देखो ज्ञानगुण यह सब द्रव्योंमें नहीं है। पुद्गल कहा जानते हैं? आकाश कहा जानता है? यदि ज्ञानगुणको देखो तो विशेष गुण होता है। सब द्रव्योंमें नहीं पाया गया। इसी तरह आनन्द, श्रद्धा, चारित्र ये अनेक गुण अपने आपमे होते हैं। इस तरह सामान्य और विशेष गुणरूप प्रत्येक पदार्थ है। वे एक जगह रहते हैं, तो वे अपने सामान्य और विशेष गुणको नहीं छोड़ते हैं अर्थात् अपना स्वरूप नहीं छोडते। इस तरह परको उन उनके ही स्वरूपमें देखना सोई आत्माकी प्राप्तिका उपाय है।

छहों जातिके द्रव्य और व्यक्तिरूपसे अनन्त द्रव्य अपने गुणोंको नहीं छोडते हैं। उन सबका निवास लोकाकाशमे है। ऐसी बात सुनकर प्रभाकर भट्ट प्रश्न करने लगे कि हे भगवन्! लोक भी सब असख्यात प्रदेश वाला आगममे कहा गया है और असख्यात प्रदेश लोकमें असख्यातप्रदेशी अनन्त जीवद्रव्य ठहर जायें और एक-एक जीव द्रव्यमे कर्म नोकर्मरूपसे अनन्त पुद्गल परमाणु बँधे हैं वे भी ठहर जाएँ और भी जो अनन्तगुण शेष पुद्गल द्रव्य हैं वे भी ठहर जायें तो इतने अनन्त सब द्रव्य असख्यात प्रदेश लोकमे कैसे अवगाहको प्राप्त करते हैं? ऐसा प्रभाकर भट्टने प्रश्न किया।

अब भगवान योगीन्दुदेव समाधान करते हैं कि इतने भी द्रव्योंको एकक्षेत्रसे समान जाना अवगाहन शक्तिके कारणसे होता है। जैसे एक गूढ नागरस गुटिकामें लक्ष्य औषधि सख्या आ जाती है अथवा एक दीपकमे बहुतसे दीपकोंका प्रकाश समा जाता है। अथवा एक राखके घडेमे इस घडे के बराबर जल भी समा जाता है अथवा एक भूमि घरमे ढोल घटा आदि बहुत बाजोंका शब्द भी समा जाता है इसी प्रकार एक लोकमे विशिष्ट अवगाहन शक्तिके सम्बन्धसे पहिले बताए गए ये अनन्त द्रव्य जीव पुद्गल सब समा जाते हैं। इनमें कोई विरोध नहीं है। इनके समा जाने की बातकी पुष्टिमें आगममें बताया है कि एक निगोदके शरीरमे द्रव्य प्रमाणसे जीव सिद्धोंमें अनन्तगुणे कहे गए हैं। कितने अनन्तगुणे हैं कि जितने अतीत काल व्यतीत हो गए हैं, उससे भी अनन्तगुणे एक निगोदके शरीरमे निगोद जीव रहते हैं। अथवा जितने अतीतकालमें जितने सिद्ध हो चुके हैं उनसे अनन्तगुणे एक निगोदके शरीरके जीव बताए गए हैं। यहा तो जीवका अवगाहन बताया है कि एक जीव जहा रहता हो वहा अनन्त जीव समा जाते हैं, समाये हुए हैं। सिद्धमें भी यही बात है कि जहा कि सिद्धक्षेत्र तो ४५ लाख योजनका है और सिद्ध होते हैं अनन्त तो एक जगहमें अनन्तकी सख्यामें सिद्ध समाये हुए हैं, निगोद समाये हुए रहते हैं। इस समाये हुएके प्रसगमे निगोद जीव सिद्धोंसे ज्यादा बाजी मारे हुए हैं। सिद्ध उतने नहीं हैं।

पुद्गलकी अवगाहनाके सम्बन्धमें आगममे बताया है कि यह समस्त लोकालोक सब प्रकार सब जगह पुद्गल कायोंके द्वारा बहुत ठसकर भरे हुए हैं। कौन सी जगह ऐसी है जहा पुद्गलकाय न ठहरे हो ? सिद्धक्षेत्रमे भी निगोदिया जीव रहते हैं और जहा सिद्ध भगवान हैं, उनके प्रदेश जिस क्षेत्रमे हैं उस क्षेत्रमे भी अनन्त निगोदिया जीव बसते हैं और निगोदियाके शरीर होता है। सो लोकमें कोई ऐसा प्रदेश नहीं बचा जहा अनन्तपुद्गल काय न हो।

भैया ! जिस जीवका जैसा उपादान है उस जीवका वैसा ही परिणमन है। जैसे एक घरमें रहने वाले ८-१० लोग हैं तो कोई तो खुश मिजाज रहता है, तो कोई दुःखी या दुना रहता है। तो एक परिवारमें जैसे कई किस्मके लोग रहते हैं ऐसी ही उस सिद्धक्षेत्रमें निगोदिया जीव बडे दुःखी हैं और जो सिद्ध हैं वे बडे सुखी हैं। वहा मिडिल क्वालिटीके लोग नहीं हैं। या तो अनन्त दुःखी हैं या अनन्त सुखी हैं। जहा दुःखोंका अनुभव नहीं होता उसे दुःख ही नहीं कहते हैं। हमें दुःखका अनुभव न हो और खूब

दुःखी हो जाएँ, फिर क्या परवाह जब अनुभव ही न हो तो दु खका क्या मतलब ? सब जीवोंके जिनके कर्मोंका सम्बन्ध है उनके क्लेश हैं और निगोदिया जीव तो निगोदिया ही हैं, और एकेन्द्रियमे भी निगोदिया जीव है जिनके किसी शरीर का आधार नहीं है, ऐसे निगोदिया जीव जो ससारके सबसे निकृष्ट जीव हैं वे ही सिद्धक्षेत्रमें पाये जाते हैं या सिद्ध भगवान् पाये जाते हैं। वहा मध्यम परिस्थिति के जीव नहीं पाये जाते हैं।

निगोदिया जो निकृष्ट हैं वे सिद्धक्षेत्रमे पाये जाते हैं, पर यहां तो उन निगोदियासे कम पाप वाले निगोदिया भी यहा हो सकते हैं। इसका कारण यह है कि शरीर दो प्रकारके होते हैं—सूक्ष्मशरीर और बादरशरीर यहा तो बादरनिगोदिया भी हैं और सूक्ष्मनिगोदिया भी हैं। आलू, गोभी पत्ती आदिके आश्रयसे रहने वाले निगोदिया भी हैं, पर वहा तो शरीर के आश्रय रहने वाले निगोदिया नहीं हैं। वनस्पति और त्रस काय इनके आधारमें बादर निगोदिया जीव रहा करते हैं। पृथ्वीके आधारमें बादर निगोदिया नहीं होते। सूक्ष्म निगोदिया रहते हैं। उनके शरीरसे कोई सम्पर्क ही नहीं है। सर्वत्र ठसाठस भरे हैं। वे ही सिद्धक्षेत्रमें हैं। शरीरके आधार से रह सकने वाले निगोदोंके जो पापका उदय है उससे अधिक पापका उदय शरीरके आश्रय बिना रहने वाले निगोदोंके हुआ करता है। बादर शरीरसे अधिक पाप सूक्ष्म शरीरके कहा गया है।

बादर और सूक्ष्म इन दोनोंमें बादर तो दिख सकने वाला है। और कोई बादर न भी दिख सके तो बादर नाम कर्मकी प्रकृतिके उदयका जो शरीर होता है उसे बादर शरीर कहते हैं और सूक्ष्म नाम कर्मके उदयसे जो शरीर होता है उसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं। बादर नाम कर्म पुण्य प्रकृतिमे गिनाई है और सूक्ष्म नामकर्म पाप प्रकृतिमें गिनाई है। तो सिद्धक्षेत्रमें रहने वाले जीवोको ऐसा ही दु ख है जैसा दु ख यहाके सूक्ष्म निगोदिया जीवोंको है। यहाके सूक्ष्म निगोदिया और सिद्ध क्षेत्रके सूक्ष्म निगोदिया पूरे एक जातिके जीव हैं, रच भी अन्तर नहीं है। इस कारण कुछ क्षेत्रमे पहुचने के कारणसे सुख दु:ख व्यवस्था नहीं है। अपने उपादानसे, शुद्धि और अशुद्धिकी अपेक्षा से दु ख सुखकी व्यवस्था है। न्यायालय कचहरी जैसे बडे स्थानोमे बडे जज लोग भी रहते हैं और चौकीदार पहरेदार, पानी लाने वाले लोग भी रहते हैं। तो उस क्षेत्रमें सर्विस मिल जानेसे सब बडे या सुखी नहीं कहलाते। पहरेदार और पानी लाने वाले को तो वही जी हजूरी करनी पडती है। तो क्षेत्रके निवासके कारण सुख और दु खकी व्यवस्था नहीं है। यह तो अपने अपने उपादानके कारण सुख दु खकी व्यवस्था है।

प्रकरण यहा यह चल रहा है कि यह लोकाकाश तो असख्यातप्रदेशी है। इस असंख्यातप्रदेशी लोकमें असख्यातप्रदेशी अनन्त जीव ठहर जावे और एक जीवके साथ अनन्तप्रदेशी कार्माण स्कध हैं वे ठहर जायें और उससे भी अनन्तगुणे अन्य पुद्गल हैं वे ठहर जायें, यह कैसे हो सकता है? ऐसे प्रश्नका समाधान दिया जा रहा है। यहा ठहरने वाले प्रदेशोंमें भी अवगाहन शक्ति कारण है। आकाशद्रव्यमें तो साधारणतया अवगाहन शक्ति देने का कारण है पर आकाशमें ठहरने वाले प्रदेश यदि दूसरे पदार्थोंको न ठहरने दें तो कैसे समा सकते हैं? लोहे के गोलेमें किसी भी अन्य मोटे पदार्थको समा लेनेकी शक्ति नहीं है। वह तो १०-५ बूँदोंको भी अपने अन्दर नहीं समा सकता। तो ठहरने वाले पदार्थोंमें स्वय अवगाहनकी शक्ति नहीं होती। तो सब पदार्थ हैं असख्यातप्रदेशी, लोकमें ठहर नहीं सकते। जीव भी अनन्त एक जगह ठहरे होते हैं और पुद्गल भी अनन्त सूक्ष्म और बादर अनेक प्रकार से सर्वत्र ठहरे हुए हैं। इस तरह ५ अस्तिकायों का वर्णन किया गया है कि जो बहुप्रदेशी पदार्थ हैं वे इस लोकाकाशके अन्दर समाये हुए हैं।

यहा यह भावार्थ लेना कि यद्यपि एकक्षेत्रावगाहरूपसे ये सब पदार्थ ठहरे हैं तो भी शुद्ध निश्चयनयसे जीव केवल ज्ञानादिक अनन्त गुणोंके स्वरूपको नहीं छोडता है और पुद्गल वर्णादिक स्वरूपको नहीं छोडता है तथा शेप द्रव्य भी अपने-अपने स्वरूपको नहीं छोडते हैं। कोई भी पदार्थ अपने स्वरूपको नहीं त्यागता। इसका निष्कर्ष यह निकालो कि कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका न तो कुछ कर सकता है और न अधिकार जमा सकता है, न भोग सकता है, न अन्य रच अपना प्रदेश दे सकता है। यों पदार्थ स्वतत्र हैं और सम्पन्न हैं। अपने आपके आत्मतत्त्वको देखो कि यह मैं आत्मा भी परिपूर्ण हू और अनन्तगुणोंसे सम्पन्न हू।

अब आगे यह बतलाते हैं कि अन्य पाचो द्रव्य व्यवहारनयसे जीवका उपकार करते हैं और उन शेष पाचों द्रव्योंका उपकार करनेका सम्बन्ध अर्थात् जीवके विभावपरिणमनमे निमित्त होनेका सम्बन्ध है। इस कारण वे दु खोंके ही कारण बनते हैं।

एयइ दव्वइ दहियह णिय णियकज्जु जणति ॥ २६ ॥
चउ-गइ-दुक्खु सहत जिय ते ससारु भमति ॥ २६ ॥

ये द्रव्य देहियोंके जीवोंके अपने-अपने कार्यको उपजाते हैं। इस कारण नरकादिक चारों गतियोंके दु खोंको सहते हुए जीव ससारमें भटकते हैं। जैसे जीवका उपकार किया कर्मने। यहा उपकारका अर्थ भलाई नहीं लेना।

किन्तु कुछ काम हो गया कर्मके निमित्तसे । जीव नरकमे पहुचता है तो यह कर्मोका उपकार है, तिर्यञ्च पशुगतिमें पहुंचता है तो यह कर्मोका उपकार है। तीर्थकर बनता है तो यह कर्मोका उपकार है । कर्म प्रकृतिके उदयसे जीवमे जो कार्य होता है, वह सब कर्मोका उपकार कहा जाता है । उपकार का अर्थ भलाई नहीं है, किन्तु किसी भी प्रकारका कार्य होना है । तो इन पाचो द्रव्योंका इन जीव द्रव्योंमे कुछ कर देनेका सम्बन्ध है, निमित्त है । इस ही कारणसे ये जीव चारो गतियोके दु खोंको सहते हैं और ससारमे परिभ्रमण करते हैं ।

अब ये द्रव्य जीवका क्या उपकार करते हैं ? सो देखो । पुद्गल तो जीवके स्वसवेदन परिणामसे विलक्षण विपरीत विभाव परिणाममे रत होने वाले जीवके शरीर, वचन, मन, श्वासोछ्वास उत्पन्न करते हैं । जीवको शरीर मिलते हैं वे जीवके स्वभावसे नहीं मिलते हैं किन्तु कर्मोके उदयसे मिलते हैं । तो शरीर बननेमे इन कर्मोका उपकार है, मन और श्वासोछ्वास बनना यह पुद्गलका उपकार है । तो पुद्गल द्रव्य इन जीवोका इस रूपमे बहुत उपकार करते है । यह उपकार पसद हो तो कर्मोके गुण गाइए । नरक मे जाना यह कर्मोका उपकार है, निगोद जैसे दु:ख सहना यह कर्मका उपकार है । शरीर, मन, वचन बनना यह सब पुद्गलका उपकार है ।

धर्मद्रव्य जीवका क्या उपकार करता है ? जीवकी गतियोमे सहकारिताको करता है । यह उपचारित असद्भूत व्यवहारसे कहा जा रहा है । अधर्मद्रव्य भी जीवकी स्थितिमे सहकारिताको करता है । यह भी व्यवहार की बात है । एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ निमित्तरूपसे सम्बन्ध बनाना यह व्यवहारनयका विषय है तथा उस ही व्यवहारकी दृष्टिमे आकाशद्रव्य भी जीवको अवगाह दान देनेका उपकार करता है, और कालद्रव्य तो शुभ अशुभ परिणामके होनेमे सहकारित्वको करता है । इस प्रकार ५ द्रव्योंके उपकारको प्राप्त कर ये जीव निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रयकी भावनासे चिगकर चारों गतियोंके दु खोको जीव सहते है ।

इस प्रकार इन ५ द्रव्योके स्वरूपको निश्चयसे अपने आत्माके लिए दु खका कारण जानकर हे जीव ! इन बाह्यपदार्थोसे तो परिग्रहको हटावो और निश्चय शुद्ध आत्माकी उपलब्धिरूप मोक्षमार्गमें अपनेको स्थित करो— ऐसा अब निरूपण करते हैं ।

दुक्खह कारणु मुणिवि जिय दव्वह एहु सहाउ ।। २७ ।।
होयवि मोक्खहं मग्गि लहु गम्मिज्जइ पर-लोउ ।। २७ ।।

हे जीव ! परद्रव्योंके ये स्वभाव दु खके कारण हैं— ऐसा मानकर मोक्ष-

परमेष्ठी पद अर्थात् मुक्तस्वरूप। इस कारण व्यवहार सम्यक्त्वके विषयभूत द्रव्यका व्याख्यान करते हैं।

इन ६ द्रव्योंमें से विभावात्मक परिणमने वाले कितने द्रव्य हैं? दो द्रव्य हैं—जीव और पुद्गल। बाकी चार द्रव्य उल्टा नहीं परिणमते, विकाररूप नहीं परिणमते। धर्मद्रव्यका क्या विकार है, अधर्मद्रव्यका क्या विकार है, कालद्रव्यका क्या विकार है, आकाश द्रव्यका क्या विकार है? विकार केवल दो द्रव्योंमें है। जीवमें विकार रागादिक भाव हैं, पुद्गलमें विकार नाना स्कन्धरूप बनना है। सो ६ द्रव्योंमें से विकारभाव परिणमनसे परिणमने वाले जीव और पुद्गल ये दो ही हैं। अन्य चार द्रव्य अपने स्वभावरूप परिणमते हैं। उन चारों द्रव्योंमें विभाव व्यजनपर्याय नहीं होती। सो विभाव परिणमन भी नहीं है। इस दृष्टिकी मुख्यता लेकर यह पूछा जाये कि परिणमने वाले पदार्थ कितने हैं? तो कहा जायेगा कि दो द्रव्य हैं जो परिणमते हैं। यद्यपि परिणमते सभी द्रव्य हैं पर उन चारों द्रव्योंका परिणमन क्या परिणमन है कि जिसका परिणमन ज्ञात भी नहीं होता, व्यवहारकी पकड़में भी नहीं आता, शुद्ध परिणमता है। उस शुद्ध परिणमनेमें बदल तो नहीं है। बदलने वाले जीव और पुद्गल परिणते द्रव्य दो हैं। अन्य चारों द्रव्य अपने स्वभावरूपसे परिणमते हैं और जीने वाले द्रव्य कितने हैं? एक है। केवल जीव। शुद्ध निश्चय करि, शुद्धज्ञानदर्शन स्वभावरूप जो शुद्ध चैतन्य प्राण हैं उनसे ही यह जीव जीवता है, जीवेगा और पहिले जिया था और व्यवहारनयसे यह जीव इन्द्रिय, बल, आयु व श्वासोच्छ्वास इन द्रव्य प्राणोंकर जीवता है और जब तक संसार रहेगा तब तक इन द्रव्य प्राणोंसे जीवेगा और पहिले द्रव्य प्राणोंसे जी चुका था। इसलिए जीवको ही जीव कहा गया है। पुद्गल आदिक ५ द्रव्य अजीव हैं।

यहा यह पूछा जा रहा है कि ६ द्रव्योंमे परिणमने वाले पदार्थ कितने हैं? दो हैं—जीव और पुद्गल। यद्यपि सभी द्रव्य परिणमते हैं पर बदलना जिसमें बने, विभाव जिसमें बने, परिवर्तन जिसमें हुआ करे, ऐसे द्रव्य दो हैं। ऐसा किसी पुरुषसे पूछो तो वह परिणमना बदलने को कहेगा। जो एक सदृश परिणमता है वह क्या परिणमन है?

इन ६ द्रव्योंमे से जीने वाले द्रव्य कितने हैं? एक है जीवद्रव्य। इन ६ द्रव्योंमे से मूर्तिक द्रव्य कितने हैं? जिनमे रूप, रस, गंध, स्पर्श पाया जाय, ऐसा द्रव्य केवल एक पुद्गल है। इन ६ द्रव्योंमें से प्रदेश वाले द्रव्य कितने हैं? अस्तिकाय द्रव्य कितने हैं? तो अस्तिकाय ५ हैं। काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है। यद्यपि पदार्थोंमे अस्तिकाय पुद्गल भी नहीं है

किन्तु पुद्गलद्रव्य केवल एक अणुको कहते हैं और वह अणु एकप्रदेशी है बहुप्रदेशी नहीं है। जो बहुप्रदेशी हो सो अस्तिकाय है, प्रदेशवान् है, फिर भी अणु-अणु मिलकर स्कंध बन जाते हैं। जैसे कि अन्य कई द्रव्य मिलकर पिण्ड नहीं बन सकते हैं। तो चूँकि वे पिण्ड बन सकते हैं, इस कारण उन्हें बहुप्रदेशी कहा है। जैसे मूर्तिक एक है बाकी ५ अमूर्तिक हैं, इसी तरह बहुप्रदेशीद्रव्य ५ हैं और अप्रदेशीद्रव्य केवल एक कालद्रव्य है। इन ५ अमूर्तिक द्रव्योंमें से जीव द्रव्य अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे मूर्तिक है तो भी शुद्ध निश्चयनयसे अमूर्तिक है। यह आकाश अमूर्तद्रव्य है।

जीव पुद्गलसे भी बंध जाता है। सो पराधीन कहा जाता है। आपसे कहें कि शरीरको तो यहीं धरा रहने दो और जीव दो हाथ सरक आए तो नहीं सरक सकता है। कैसा विचित्र बंधन हो गया है और है अमूर्त। ऐसा कोई अमूर्त नहीं बनता। न ऐसे आकाश को पराधीनता है कि आपके घर की तिजोरी उठालें, बाहर कर दें तो उस तिजोरीमें रहने वाला आकाश भी बाहर खिंचकर आ जाय सो नहीं, वह आकाश प्रदेश वहीं रह जाता है। कौन द्रव्य अमूर्तिक बंधनमें है। पर इस जीवकी दशा देखो तो एक दृष्टिसे यह जीव मूर्तिक बन बैठा। आकाशमें शराब उलट दी जाये तो उसके बेहोशी न आयेगी, पर यह जीव बेहोश हो जाता है अपना ज्ञान खो देता है। ऐसी क्या बला लग गई जीवमें कि और अमूर्तिक तो चैनमें रहते हैं कैसी ही शराबका सम्बन्ध हो कुछ हो पर इस जीवकी दशा बिगड़ जाती है। मालूम होता है कि यह जीव किसी दृष्टिसे मूर्तिक भी है, किन्तु शुद्ध निश्चयनयसे देखा जाये तो यह जीव मूर्तिक है।

इन पांच अस्तिकायोंमें से जीवद्रव्यके तो असंख्यातप्रदेश हैं, लोकाकाशकी गणना, प्रदेशकी गणनाके बराबर जीवके प्रदेश हैं और पुद्गल परमार्थसे एकप्रदेशी है किन्तु पूरण गलन होने से, उनका संचय और स्कंध बननेसे पुद्गल भी बहुप्रदेशी है और स्कंधकी दृष्टिसे किसीमें दो प्रदेश हैं, किसीमें संख्यात, किसीमें असंख्यात प्रदेश हैं। धर्मद्रव्य लोकाकाशके बराबर असंख्यात प्रदेश वाला है, पूरे लोकमें भरा हुआ है। अधर्मद्रव्य लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश वाला है। यह भी धर्मद्रव्यकी भांति पूरे लोकमें फैला हुआ है। आकाशद्रव्यके अनन्त प्रदेश होते हैं। आकाशद्रव्यमें कोई बढ़ता चला जाये, कल्पना करले तो अनन्तकाल तक भी हवाई जहाजकी रफ्तारसे भी बढे तो प्रदेशोंका अंत नहीं आ सकता है और न कालका अंत आ सकता है। बढते ही चले जावो, पर बढ़े कौन? लोकाकाशके बाहर

तो किसी जीवकी या पुद्गलकी गति ही नहीं है।

इन ६ द्रव्योंमेंसे एक द्रव्य, द्रव्य कौन है। एक एक द्रव्यार्थिकनयसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य एक-एक होता है किन्तु जीव द्रव्य, पुद्गलद्रव्य, कालद्रव्य ये अनेक हैं। जीव कितने हैं? अनन्तानन्त हैं। पुद्गल कितने हैं? अनन्त हैं। और कालद्रव्य हैं असंख्यात तो इतने अनन्त द्रव्य ये सब लोकाकाशमें समाये हैं। इसका कारण कल आ चुका है कि उन सब पदार्थोंमें अवगाहनशक्ति है, आकाशमें अवगाह जानेकी शक्ति है, सो तो वह उसका असाधारणगुण है, पर कोई पुद्गल पूरे द्रव्यको अवगाह नहीं दे तो भी गड़बड़ हो जायगी। तो उन पुद्गलोंमें ऐसी अवगाहनकी शक्ति है। स्वभावमें तर्क नहीं होता है। पुद्गलोंके स्कंध अनन्तप्रदेशी होते हैं और उन पुद्गलोंमें अवगाहन शक्ति है कि ५० प्रदेश वाली जगहमें अनन्त परमाणु समा जाए। परमाणुके क्षेत्रसे परमाणु सम्बन्धी उन पुद्गलोंमें शक्ति है। सो पुद्गल मानो सलाह करके अपने आपमें समा जाते हैं तब आकाशके प्रदेशमें समाये हुए कहते हैं आकाश अपने प्रदेशमें तो प्रदेशमात्र ही अवगाह देगा, पर उन पुद्गलोंमें ऐसा मानो संगठन है कि वे परस्परमें अनन्त परमाणुओंको और कम प्रदेशकी जगहमें समा जानेको मौका देते हैं। परमाणुओंमें परमाणु समा जाते हैं। तो एक द्रव्य तीन हैं– धर्म, अधर्म, आकाश।

अनेक द्रव्य तीन हैं– जीव, पुद्गल और काल। अब इन ६द्रव्योंमें से क्षेत्ररूप द्रव्य कितने हैं? तो क्षेत्र द्रव्य केवल एक है। वह है आकाश और बाकीके ५ द्रव्य अक्षेत्ररूप हैं। सर्वद्रव्योंको अवगाह देनेकी सामर्थ्य जिसमें हो उसे क्षेत्ररूप द्रव्य कहते हैं। वह है आकाश। इन ६ द्रव्योंमेंसे क्रियावान् द्रव्य कितने हैं जो एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें गमन कर सके, चल फिर सकें, ऐसे द्रव्य कितने हैं? जीव और पुद्गल। धर्मद्रव्य हिलडुल नहीं सकता है। वह तो समस्त लोकाकाशमें एक प्रदेशपर एक प्रदेशकी समवर्गणा करके फैला हुआ है और अधर्मद्रव्य भी इसी तरह भरे हैं और आकाशद्रव्य तो अनन्तप्रदेशोंमें फैला है। कालद्रव्य, जिस प्रदेश पर जो कालद्रव्य है वह वहां ही ठहरा हुआ है कूटस्थकी तरह। एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें गमन कर सकने वाले पदार्थ २ ही हैं– जीव और पुद्गल। इनमें परिस्पंद होता चला जा रहा है।

इन ६ द्रव्योंमेंसे नित्यद्रव्य कितने हैं? धर्म, अधर्म, आकाश व कालद्रव्य यद्यपि अर्थपर्यायरूपसे अनित्य हैं तो भी मुख्यवृत्तिसे विभाव व्यंजनपर्याय इनमें नहीं होते, इसलिए नित्य हैं। मोटेरूपसे देखो तो जीव पुद्गल

मिटते रहते हैं, बनते रहते हैं अर्थात् उनकी पर्याय मिटती है और बनती है ऐसा प्रकट रूपसे समझमे आता है। और बाकी चार द्रव्योका बनना और बिगड़ना समझमे नहीं आता। इन द्रव्योमें नित्य तो वे हैं धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव पुद्गल तो अनित्य हैं, बिगड़ते बनते रहते है, कुछ से कुछ आकार बिगडना बनना रहता है। और जीव पुद्गल द्रव्यार्थिकनय से नित्य है तो भी अगुरुलघुत्वगुणकी परिणतिरूप स्वभावकी अपेक्षा और विभाव व्यजन पर्यायकी अपेक्षा जीव और पुद्गल अनित्य हैं। इन द्रव्यो की विशेषताका वर्णन चल रहा।

अब सम्यग्ज्ञानका प्रताप देखिये— यह ज्ञान आत्मके गुणोमे से कमाऊ- पूत है। यह ठलुवा नहीं बैठ सकता। इसको विश्राम पसद नहीं है। और यह थकता भी नहीं है। तीनलोक और अलोकके सर्वद्रव्यगुण, पर्याय जान जाय इतनेसे भी सतुष्ट नहीं। सो प्रतिसमय इन सबको जानता रहता है। यहा तो भूख लगी, भर पेट भोजन मिल जाय तो तू थक जाता है, संतुष्ट हो जाता है, अब कुछ भी न चाहिए। पर ज्ञानकी ऐसी कर्मठता है कि उसे निरन्तर जाननेका काम चाहिए। यह जान लिया, अब दूसरे सम्बन्धमे जानना चाहिए। वह अपना जाननेका काम बन्द नहीं रख सकता। स्वप्नमे भी इसके जाननेका काम होता रहता है। इसका जहा पाव बैठता है अपने अवसरके माफिक परभावोंको जानता रहता है।

इन ६ द्रव्योंमेसे कारणरूप द्रव्य कितने हैं ? पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। ये ५ द्रव्य व्यवहारनयसे जीवके शरीर, वचन, मन, स्वासोच्छ्वास, गति, स्थिति, अवगाह, वर्तना कार्योंको करता रहता है। इस कारण य ५ द्रव्य कारण हैं और जीवद्रव्य यद्यपि गुरु शिष्यादिकके रूपमे परस्परमें एक दूसरेका उपकार करते है तो भी पुद्गल आदिक ५ द्रव्योका कुछ भी नहीं करते हैं। इसलिए यह जीव अकारण है। पुद्गलका कुछ भी काम बने पुद्गलको कुछ टोटा नहीं, खेद- नहीं, हानि नहीं। इसलिए वह करना- क्या करना है ? करना तो यह जीवका है कि जिस विकारसे इसे आकुलताए हैं, दुःख है, चतुर्गतियोका भटकना है, कार्य तो यह है। इस कारण ५ द्रव्य तो कारणरूप हैं और जीवद्रव्य अकारण हैं।

देखो यह बेचारा जीव अनन्तगुणोकी सामर्थ्य रखता है, दूसरोंका बिगाड़ भी नहीं करता, ऐसा यह भोलाभाला है। जीव बेचारा दूसरोको नहीं बिगड़ता है, खुद ही बिगड जाता है। ऐसे भोले भाले बेचारे जीवको लोकमें पूछने वाला कोई नहीं है। भला बतलाओ ऐसा कौन द्रव्य है जो दूसरोंको न बिगाडे और खुद बिगड़ जाता है। दूसरे सामर्थ्य भी इसमें

इतनी जबरदस्त है कि अन्य द्रव्योमें कुछ प्रभुता नहीं है। ज्ञान काम न करे तो ऐसे प्रभुकी सत्ता ही क्या? कौन बताए, कौन व्यवस्था करे। इतना कमाऊपूत है ज्ञान। इतना भोलाभाला प्रभु होकर भी इस जीवके बिगाडमें सबके कारण बन रहे हैं। तो ५ द्रव्य तो कारणरूप हैं और यह जीवद्रव्य जो है वह अकारण है।

इस प्रकार यहा तक इतने प्रश्नोंका उत्तर दिया गया है कि आत्मा कौन है? जीने वाला कौन है, मूर्तिक कौन है, सर्वप्रदेशी कौन है, एक एक कौन है, क्षेत्ररूप कौन है, क्रियावान् कौन है, नित्य कौन है और कारणरूप कौन है? अब इसके बाद कुछ थोडेसे प्रश्नोंका और उत्तर इस प्रकरणमें आयगा।

६ प्रकारके द्रव्योंमें कर्त्ता कौन है? ऐसा प्रश्न हुआ। उत्तर कहते हैं कि शुद्ध पारिणामिक परमभावके ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे यद्यपि द्रव्यभाव बन्धरूप अथवा द्रव्यभाव मोक्षरूप यह जीव पुण्य पाप स्वरूप आदिका अकर्त्ता है तो भी अशुद्ध निश्चयसे शुभोपयोग तथा अशुभोपयोगसे परिणत होता हुआ पुण्य पाप बन्धक कर्ता और उन कर्मोंके फलका भोक्ता होता है और शुद्धनिश्चयनयसे ज्ञानदर्शनस्वभावी निज शुद्धआत्मद्रव्यका सही विश्वास ज्ञान और उसमें ही रमनेरूप शुद्धोपयोगसे परिणत होता हुआ यह जीव मोक्षका कर्ता और उसके फलका भोक्ता होता है। अथवा शुभ अशुभ और शुद्ध परिणामोंसे परिणमता हुआ ही सर्वत्र कर्तृत्व जानना चाहिए और पुद्गल आदिक ५ द्रव्योंका अपने-अपने परिणमनमें परिणमन करना ही कर्तृत्व है। वास्तवमें पुण्य पाप आदिकरूपसे अकर्तृत्व ही है।

इन ६ द्रव्योंमें कर्ताका व्यवहार जीवमें हो सकता है, चेतन है। उसको ही कर्ता कहा जा सकता है। कर्तृत्वका अर्थ है परिणतिसे परिणमन। सो ऐसा कर्तृत्व तो सब द्रव्योंमें है। सभी द्रव्य अपनी अपनी परिणतिसे परिणमते हैं। अब इस जीवके सम्बन्धमें यदि शुद्ध सत्ताकी दृष्टिसे देखा जाये तो यह पुण्य पाप आदिका कर्ता नहीं है और अशुद्धनयसे देखा जाये तो यह शुभोपयोग और अशुभोपयोगसे परिणमता हुआ पुण्य पापके बंधका कर्ता है और उनके फलका भोक्ता है। शुद्ध निश्चयसे देखा जाये तो मोक्षभावका कर्ता है और मोक्षभावका भोक्ता है, किन्तु जीव यथार्थ अपने स्वरूपसे जैसा है उस पर दृष्टि देकर समझा जाये तो वह अकर्ता है, अभोक्ता है। सूक्ष्म अर्थपर्यायमें परिणमता रहता है। विकारभाव तो उपाधिके निमित्त से उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस परिणमनमें एककर्तृत्वका परिणमन था, उसका समाधान है।

अब एक प्रश्न और कहा है कि इन ६ द्रव्योंमें से सर्वगत द्रव्य कौन है? सर्वगतका अर्थ है सर्वव्यापी। जो सर्वत्र व्याप रहा है, फैला हुआ है ऐसा द्रव्य कौन है? सर्वगत याने जो सर्वगत लोक और अलोकमें व्याप रहा हो ऐसा सर्वगत तो आकाश है और लोकभरमें जो व्याप रहा हो ऐसा है धर्मद्रव्य। धर्मद्रव्य जीवद्रव्यका नियम नहीं है, कभी लोकमें व्याप जाये, कभी न व्याप जाये, समस्त लोकमें व्यापना जीवके तेरहवें गुणस्थानके समुद्घातके समयमें होता है। जिस समय लोक पूरण समुद्घात हो तब होता है। वह भी केवल एक समयमात्रको। एक जीवकी अपेक्षासे लोक पूरण अवस्थाको छोड़कर जीवद्रव्य सदा असर्वगत है, पूरे लोकमें व्यापकर नहीं रहने वाला है। और नाना जीवोंकी अपेक्षासे तो लोकमें यह जीवद्रव्य सर्वगत है। कौनसा प्रदेश ऐसा है जहां जीवद्रव्य न पाया जाता हो।

पुद्गल द्रव्य लोकरूपकी अपेक्षासे सर्वगत है और व्यक्तिगत शेष द्रव्य पुद्गलकी अपेक्षासे कोई पुद्गल समस्त लोकमें व्यापक नहीं है।

कालद्रव्य एक-एक कालाणुद्रव्यकी अपेक्षासे सर्वगत नहीं है, किन्तु नाना कालाणुवोंकी विवक्षासे कालद्रव्य भी लोकमें सर्वगत है। लोकाकाश का कोई प्रदेश ऐसा नहीं है जहा कालद्रव्य न हो।

यों देखो तो प्रत्येक प्रदेश पर छहोंके छहों द्रव्यों लोकमें मौजूद हैं। वहीं जीव है, वहीं पुद्गल है, वहीं धर्म, अधर्म, आकाश है, कालद्रव्य भी हैं किन्तु वे कैसे अपने स्वरूपकी सीमामें पक्के हैं अपने सत्त्वकी रक्षा किया करते हैं कि अपने स्वभावमें ही वे परिणत होते हैं। कोई भी द्रव्य अपना स्वभाव छोड़कर किसी अन्यद्रव्यके स्वभावरूप नहीं होता है। इस तरह सर्वगतके प्रश्नका उत्तर हुआ।

अन्तिम प्रश्न है कि ऐसा भी द्रव्य है क्या कोई जो दूसरोंमें प्रवेश किए हुए हो? उत्तर देते हैं कि यद्यपि सर्वद्रव्य व्यवहारनयसे एकक्षेत्रावगाह होने से, अन्यके अन्तरमें प्रवेश होनेके रूपसे ठहरे रहते हैं तो भी निश्चय नयसे, उन द्रव्योंका जिनका जो स्वरूप है, चेतना हुई मूर्तिकता हुई आदि अपने-अपने स्वरूपको नहीं छोड़ते हैं। इसी सम्बन्धमें आगममें भी बताया है कि ये द्रव्य परस्पर एक दूसरेमें प्रवेश कर रहे हैं और एक दूसरेको प्रवेश दे रहे है। जहा कोई एक ठहरा है वहा सब द्रव्य ठहर सकते हैं। ऐसा वे अवगाह दे रहे हैं, मिल रहे हैं तो भी नियमसे वे अपने-अपने स्वभावको नहीं छोड़ते हैं।

इस समस्त वर्णनसे हम अपने लिए क्या शिक्षा निकाले कि देखो व्यवहार सम्यक्त्वके विषयभूत इन ६ द्रव्योंमें वीतराग चिदानन्दमय निज

गुण स्वभाव वाला और शुभ अशुभ मन, वचन, कायकी चेष्टासे रहित जो निज शुद्ध आत्मद्रव्य है, ज्ञायकस्वरूप है यह ही उपादेय है वही छहों द्रव्यों का स्वरूप बताया, छहों द्रव्योंकी विशेषता बतायी, समस्त द्रव्योंका खूब परिचय कराया, किन्तु इतना समस्त परिचय कर लेने के बाद करने योग्य काम इतना ही है कि अपने ज्ञानस्वरूपसे अतिरिक्त जितने भी पर और परभाव हैं उनसे निराला केवल चैतन्यप्रकाशमात्र अपने आपको निरखो। यह निज शुद्ध आत्मतत्त्व ही उपादेय है।

इस प्रकार अब तक इन २८ दोहोंमें निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्गका प्रतिपादन करनेके लिए भूमिकाका उत्साह और वर्णन निर्दिष्ट किया गया है। इस तरह ६ द्रव्योंके ध्येयभूत व्यवहारसम्यक्त्वका व्यक्तिकी मुख्यता वाला यह स्थल समाप्त होता है। इसके बाद सम्यग्ज्ञानका वर्णन कर रहे हैं कि यह सम्यग्ज्ञान संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय—इन तीन दोषों से रहित होता है।

ज जह थक्कउ दव्वु जिय त तह जाणइ जो जि।
अप्पह केरउ भावडउ णाणु मुणिज्जहि सो जि॥ २९॥

कहते हैं कि हे जीव! ये सब द्रव्य जैसे अनादिकालसे स्थित हैं, जैसा इनका स्वरूप है उनको वैसा ही अर्थात् सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित होकर जो जानना है वही आत्माका भाव सम्यग्ज्ञान कहलाता है—ऐसा तू मान। प्रमाण कहो, ज्ञान कहो एक ही बात है। ज्ञानमें ये तीन दोष नहीं होते हैं– सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय।

सशय नाम है उस सदेहका कि जिसमें विरुद्ध अनेक कोटियों पर उपयोग फिरा करता है। जैसे सामने कोई सफेद चीज पडी है तो सोच रहे हैं कि यह सीप है, या चादी है या कोई काच आदिक है। जो-जो भी सफेद चीजे उसके उपयोगमें हों उनका सदेह हो रहा हो उसे सशयज्ञान कहते हैं। जैसे यह सशय हो कि आत्मा वास्तवमें है या नहीं—ऐसा कई कोटियोंमें सदेह रखने वाले ज्ञानको सशयज्ञान कहते हैं।

विपर्ययज्ञान किसे कहते हैं? जैसा है उससे उल्टा जानना इसका नाम विपर्ययज्ञान है। इस विपर्ययज्ञान के तीन भेद हैं—स्वरूपविपर्यय, कारणविपर्यय और भेदाभेदविपर्यय। पदार्थका जैसा स्वरूप है उससे उल्टा जानना, सो स्वरूपविपर्यय है। जैसे है तो सीप और मानलें चादी तो यह स्वरूपविपर्यय है अथवा है तो यह जीव अमूर्तिक और मानलें मूर्तिक तो यह स्वरूपविपर्यय हुआ।

कारणविपर्यय पदार्थके बननेका जो कारण है उससे उल्टा कारण

माने सो कारणविपर्यय है। जैसे आत्मा स्वत सिद्ध है, चैतन्यमय है, इसे यों बताना कि यह जीव पृथ्वी, जल, अग्नि वायु इन भूतोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होता है ऐसा बताना, सो कारणविपर्यय है। जिस कारणसे जो चीज होती है उस कारणसे न कहकर विरुद्ध कारण बताना, सो कारणविपर्यय है।

तीसरा है भेदाभेदविपर्यय। भेद तो हो और अभेद दिखा दे या अभेद तो हो और भेद दिखा दे। जैसे जीवका ज्ञान अभेदरूप है, जीवसे ज्ञान जुदा नहीं है। लेकिन कितने ही सिद्धान्त ऐसा बतलाते हैं कि जीव जुदी चीज है और ज्ञान जुदी चीज है। जब जीवमे ज्ञानका समवाय होता है तब जीव ज्ञानी बनता है और जब ज्ञानका सम्बन्ध हट जाता है तो यह जीव मुक्त हो जाता है। ऐसा एक सिद्धान्तमे कहा है कि जब तक जीवके साथ ज्ञान लगा है तब तक जीवको ससारमे भटकना पडता है और जब जीवसे ज्ञान अलग हो जायेगा तब जीव मुक्त बन जायगा, भगवान् बन जायेगा। उनकी दृष्टि ऐसी ही है जैसे कि लोग स्थूलदृष्टिसे ऐसा सोच सकते हैं कि इस जीवके साथ ज्ञान लगा हुआ है तब दु खी होना पडता है। ज्ञान न लगा हो तो काहेका दु ख माने। ये पुद्गल आदिक तो दु ख नहीं मानते। ये जीव पूर्ण सुखी तब हो सकते हैं जब जीवमे ज्ञान न रहे। ज्ञान का सर्वथा बिलगाव हो जाये—ऐसी मान्यता भी कुछ लोगोकी है। जहा अभेदकी चीज भेदरूप बताई जा रही है वह हुआ भेदाभेदविपर्यय।

हो तो भेदरूप चीज और अभेदरूप बता दिया जाये। जैसे राग जीवसे न्यारी वस्तु है। प्रत्येक जीवको रागमय बताना—कोई सिद्धान्त ऐसा भी है कि जो जीवको सदा रागमय बताता है। राग जीवसे जो बाहर ही नहीं होता, पर थोड़ा मरण समय रागका उपशम हो जाया करता है और बहुत थोडे कालमे ही फिर राग आता है और उसे फिर संसारमे रुलना पड़ता है। ऐसे होते हैं पुनर्भववादी जो मुक्त हो जानेके बाद कुछ अल्पकाल के अनन्तर ससारमे गेर दिए जाते हैं ऐसे भी सिद्धान्त हुए हैं। जो चीज जीवसे भिन्न है उसे अभिन्न बताना और जो जीवसे अभिन्न है उसे भिन्न उसे बताना यह है भेदाभेदविपर्यय। जहा ऐसा विपर्ययज्ञान चलता है वहां प्रमाणता नहीं आती है।

तीसरा दोष है अनध्यवसाय। कुछ समझमे आया कि जीव होगा कुछ। उसके सम्बन्धमे निश्चयके लिए नहीं उतरना और कुछ थोड़ सा मानकर रह जाना यह है अनध्यवसाय। जैसे चलते हुएमे कोई तिनका चुभ जाये तो कुछ लगा है ऐसा तो स्मरण रहा पर उसके बारेमे निर्णय न किया कि यह है क्या? इसे कहते है अनध्यवसाय। तो जहा सशय, विपर्यय,

अनध्यवसाय- ये तीन दोष नहीं होते हैं, इस प्रकारसे जो जैसा पदार्थ है उस को उस प्रकार जानना सो सम्यग्ज्ञान कहा गया है। वह ज्ञान कुछ अन्य चीज नहीं है किन्तु आत्माका ही परिणाम है। जो द्रव्य जैसे स्थित है, जैसी उसकी सत्ता है उत्पाद व्यय, ध्रौव्य हैं, गुणपर्याय है, सप्तभंगी स्वरूप है, इस तरह से जाने वह आत्मपरिणाम स्व, परका परिच्छेदक है, वही सम्यग्ज्ञान है।

प्रत्येक पदार्थमें सप्तभंगी लगी रहती है। कुछ भी जाननेमें जाननेके साथ पूर्ण निर्णयके लिए ७ ज्ञानकी लहरें उठती हैं। जैसे जाना कि जीव नित्य है तो ऐसा जाननेके साथ यह भी जानते जा रहे हैं कि जीव नित्य नहीं भी है। एक दृष्टिसे नित्य है तो एक दृष्टिसे नहीं है। द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य है तो पर्यायकी दृष्टिसे जीव नित्य नहीं है। जहां अर्थात् जीवका द्रव्य जीवका सत्त्व सदा रहना है, वहाँ वहाँ जीव रहता है- इस दृष्टिसे तो नित्य है, किन्तु उसका परिणमन होता है, पर्याय बदलती है, इस दृष्टिसे यह अनित्य है।

जो जीव नित्य है और एक दृष्टिसे अनित्य है, उस जीवको सही शब्द मे कहा नहीं जा सकना है। इस दृष्टिसे कहना पड़ेगा कि जीव अवक्तव्य है इसको बताया नहीं जा सकता है। नित्य 'है' कहेंगे तो अनित्यपना छूट गया अनित्य 'है' कहेंगे तो नित्यपना छूट गया तो जीव अवक्तव्य है। अब अवक्तव्य होते हुए भी कुछ न कुछ थोड़ा किसी ओर कभी झुकाव हो जाता है सो अवक्तव्य होकर भी इसकी नित्यस्वरूप पर कुछ दृष्टि होती है। तो कहा जाता है कि यह जीव अवक्तव्य है। अवक्तव्य होते हुए भी नित्य ध्यानमें आ रहा है। जब इस द्रव्यमें अनित्यस्वरूप ध्यानमें आ रहा हो तब कहा जायगा कि यह अनित्य अवक्तव्य है। अवक्तव्य होते हुए भी इस का अनित्यस्वरूप समझमें आ रहा है। नित्य अनित्य दोनों चीज ध्यानमें आ रही हैं तो यह कहा जायगा कि नित्य अनित्य अवक्तव्य है। अवक्तव्य होते हुए भी नित्य भी है और अनित्य भी है, नित्य और अनित्य दोनों है, यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है।

इस तरह जीवके नित्यके बारेमें ज्ञान करते चलेंगे तो इसमें ७ तरंगें उत्पन्न होंगी। किसी भी चीजको जानते हैं ऐसा कहेंगे तो उसमें ७ तरंगें आयेगी। जैसे किसी चौकीको हाथमें लेकर कहें कि यह है, तो मनमें यह आयगा कि चौकी है। तो इसके साथ यह भी जुड़ा हुआ है कि यह घड़ी, चटाई, भींत वगैरह नहीं है, यह चौकी ही है- ऐसा कहने पर यह अपने आप सिद्ध हो जाता है कि यह और चीज नहीं है, चौकी ही है। कुछ भी कहा जाय तो उसके अतिरिक्त जो कुछ है उनको तो मना करना ही पड़ेगा। यह

चौकी है और बाकी चीजे नहीं है। तो ये दोनों बातें सही हैं कि यह चौकी है और बाकी चीज नहीं है। यदि दोनोंको छोड़ एक पकड़ कर रह जाय, जैसे यह चौकी है और एक छोड़ दे कि यह और-और चीज नहीं है तो उसका यह मतलब हुआ कि यह और-और चीज बन गई। तो जब यह और-और चीज बन गई तो चौकी इसे कैसे कहेंगे? जब चौकी ही नहीं रह सकती है तो और बाकी चीज नहीं रही। तो इस तरह यह है ऐसा कहने पर यह भी सिद्ध हो जाता है कि यह नहीं भी है, यह चौकी है और चौकीके अतिरिक्त अन्य-अन्य और चीज नहीं है।

जब यहा तक चीज सिद्ध हो गई तो इन दोनोंको एक साथ नहीं कहा जा सकता है। इसलिए अवक्तव्य है, कहनेमें नहीं आ सकता है और दोनों बातें ठीक समझमें आ भी रही हैं कि यह चौकी तो है पर और-और चीज नहीं है। इसलिए यह है भी और नहीं भी है और अवक्तव्य है। अवक्तव्य होने पर भी किसी न किसी नयकी ओर मुड़ जायगी। तब अवक्तव्य है, अवक्तव्य है भी नहीं। वस्तुस्वरूपकी जानकारीके लिए मूलभूत स्याद्वादका साधन कैसा प्रसिद्ध किया है? स्याद्वादके बिना कोई जीभ नहीं हिला सकता।

इस स्याद्वादकी प्रसिद्धिसे सभी जीव फलफूल रहे हैं, अपने काममें उन्नत हो रहे हैं, किन्तु जिन जीवोंका भवितव्य सम्यक् नहीं है वे स्याद्वाद के द्वारा फलफूल कर भी स्याद्वादको मना करते हैं। स्याद्वादके बिना किसी का व्यवहार चल सकेगा क्या? नहीं। नाते रिश्तेदार भी स्याद्वादके अनुकूल चलते हैं। किसी भी एक पुरुषमें यह पिता है, मामा है, भानजा है, कितनी उसमें रिश्तेदारी देख लेते हैं, यह सब अपेक्षासे ही तो देखा जा रहा है। स्याद्वादका ही तो उपयोग है। जो सप्तभगात्मक गुण पर्यायरूप उत्पादव्यय ध्रौव्यरूप जैसा जो पदार्थ स्थित है उसको वैसा ही जानता है वह आत्माका सम्यग्ज्ञान परिणाम है।

इस प्रकरण से हमें क्या शिक्षा लेनी है कि व्यवहारमें सविकल्प अवस्थामें तत्त्व विचारके समय स्वपरपरिच्छेदक ज्ञान कहा जाता है, किन्तु निश्चयनयसे वीतराग विकल्परहित समतापरिणाम होना है वहां बाह्यपदार्थोंका उपयोग यद्यपि अपेक्षितवृत्तिसे होता हुआ नहीं ग्रहण किया गया है, ईहापूर्वक विकल्पोंका अभाव होनेसे गौण है तब आत्माकी अपेक्षासे स्वसंवेदनरूपज्ञान ही ज्ञान बताया गया है। सब पदार्थोंको भिन्न-भिन्न जानना भी ज्ञान है, यह व्यवहारका ज्ञान है। सर्वविकल्प छोड़कर आत्माके स्वरूपका सम्वेदन करना ज्ञान है। इस ज्ञानपर दृष्टि दो और इस ज्ञानको ही ग्रहण

अब सम्यक्चारित्रका वर्णन करते हैं। सम्यक्चारित्र नाम है अपने स्वरूपमें स्थित करें, इस ज्ञानस्वरूपसे ही अपने आपका अनुभव करे। रहनेका उपाय है समस्त रागादिकरूप परद्रव्यविषयक सकल्प विकल्प समूहोंका त्याग करना। विकल्पत्याग विना स्वरूपमें अवस्थान नहीं होता। अपनेको ज्ञानमात्र अनुभवना यही स्वरूपमें अवस्थान कहलाता है। जब विकल्प समूहमें उपयोग है तो ज्ञानमात्र अनुभव कैसे हो सकता है? इस कारण समस्त सकल्पविकल्पोंके त्यागपूर्वक ही स्वरूपमें अवस्थान होता है। और सकल्पविकल्पके त्यागका उपाय है—निजको निज परको पर जान। स्वद्रव्य और परद्रव्यका जैसा स्वरूप है, जैसी उनकी सीमा है, स्वरूपास्तित्व है, उस प्रकारका ज्ञान होने पर ही विकल्पजालका त्याग हो सकता है। इस प्रकार स्व और परद्रव्यको जानकर रागादिकरूप परद्रव्यविषयक सकल्प विकल्पके त्यागके द्वारा अपने स्वरूपमें अवस्थान होना, सो ज्ञानावस्था का चारित्र है। इस ही वातको इस दोहेमें वताते हैं।

जाणवि मण्णवि अप्पु परु जो पर भाउ चएइ।
सो णिउ सुद्धउ भावडउ णाणिहिं चरणु हवेइ॥३०॥

आत्मा और सम्यग्ज्ञानके द्वारा जानकर, केवल जानकर ही नहीं किन्तु तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप परिणामसे मान कर जो परभावोंका त्याग करता है ऐसा जो निज शुद्धभाव है यही ज्ञानी पुरुषका चारित्र होता है। इस चारित्रकी उपायपरम्परामें सर्वप्रथम बात यह बतला रहे हैं कि वीतराग सहज आनन्द एकस्वभावी निजद्रव्यका और ऐसे वीतराग आनन्दभावका विपरीत परद्रव्योंको ज्ञानसे पहिले जानो। जिसमें सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय ये दोष न आयें। इस प्रकार जानकर शका आदिक ८ दोषोंसे रहित सम्यक्त्व परिणामका श्रद्धान् करके जो समस्त चितावों के समूहके त्याग द्वारा अपने शुद्ध आत्मस्वरूपमें आनन्दरससे तृप्त होकर ठहरता है वही पुरुष अभेददृष्टिसे सम्यक्चारित्र कहलाता है।

भैया! चितन या विकल्पजाल जो घातक हैं। वे प्राय यही हैं, मायाशल्य, मिथ्याशल्य और निदानशल्य आदिक। मायाचारके परिणाममें, ऐसे टेढे हृदयमें धर्मभावना का प्रवेश नहीं होता है। मिथ्यात्वशल्य वस्तुस्वरूपसे विपरीत स्वरूपकी जहा मान्यता है वहा मिथ्यात्वशल्य होता है। भ्रमका शल्य और आगामी कालमें लोक सुखकी वाञ्छा करना, सो निदानशल्य है। जीव इन दो शल्योंसे दुखी है, किन्तु ज्ञानी पुरुष निदानशल्य नहीं करता। आगामी लौकिक सुख या भोग मिले, ऐसी उसकी चाह नहीं होती। क्योंकि उसने अपना उद्देश्य लौकिक सुख नहीं बनाया। उसने अपना लक्ष्य

निजशुद्धज्ञानस्वरूपका आश्रय करना बताया है। ज्ञानी अपने स्वभावके आश्रय से ही हित समझता है। इस कारण ज्ञानी पुरुषके निदानशल्य नहीं होता है।

जब निदानशल्य नहीं करता तो लौकिक सुखके पीछे ही जीव मायाचार किया करता है, सो निदानभाव न होनेसे मायाशल्यका भी वहां जमाव नहीं होता और ये दोनों बातें क्यों नहीं होतीं अथवा निदानशल्य क्यों नहीं होता, उसका कारण यह है कि मिथ्यात्वशल्य नहीं रहा तो मूल है मिथ्यात्वशल्य। उसके कारण बनता है निदानशल्य और निदानशल्यके कारण है मायाशल्य। इन तीन शल्योंसे रहित होकर जो निज शुद्ध आत्मस्वरूप है, परम आनन्दरसके स्वादसे तृप्त होकर ठहरा हुआ है उसको सम्यक्चारित्र कहते हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र कुछ अलग तत्त्व नहीं हैं। इस रूपसे परिणमता हुआ आत्मा ही दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। इस प्रकार यह आत्मा ही निश्चय चारित्र होता है। इस प्रकार यहां तक मोक्ष का वर्णन किया, मोक्षका फल बताया, मोक्षका मार्ग बताया। उसके विषयमें निश्चयमोक्षमार्ग व्यवहारमोक्षमार्गका कथन किया। व्यवहार सम्यक्त्वकी मुख्यतासे छहों द्रव्योंके श्रद्धान्की बात कही। सम्यग्ज्ञान और चारित्रकी मुख्यतासे वर्णन किया। इस स्थलको बताने के बाद अब आगे कुछ सूत्रोंमें भेदरत्नत्रयका वर्णन चलेगा। उनमें सबसे पहिले रत्नत्रयके सेवनहार भक्त भव्य जीवका लक्षण बतलाते हैं।

जो भत्तउ रयणत्तयह तसु मुणि लक्खणु एउ।
अप्पा मिल्लिवि गुण णिलउ तासु वि अण्णु ण झेउ ॥३१॥

जो जीव रत्नत्रयका भक्त है, रत्नत्रय ही धर्म है, रत्नत्रयके ही भक्तका नाम धर्मका भक्त है और धर्ममय परमात्मा है। सो धर्मकी भक्तिका ही नाम परमात्माका भक्त है। ऐसे रत्नत्रयके भक्तका यह लक्षण है प्रभाकर भट्ट! तुम समझो। गुणोंके समूह आत्माको छोड़कर आत्मासे अन्य बाह्यपदार्थोंका ध्यान न करना चाहिए। जो केवल अपने शुद्ध आत्मतत्त्वके ध्यानमें चलता है, शुद्ध ज्ञानमात्र स्वरूपका ही सेवन करता है, अनुराग करता है, उस पुरुषको तुम रत्नत्रयका भक्त समझो। रत्नत्रयका भक्त पुरुष शुद्ध आत्मस्वरूपसे अन्यत्र परभावोंमें या परकी रुचि नहीं करता है। इस ही बातको कुछ विशेष कहते हैं।

यहां रत्नत्रयके भक्तकी बात चल रही है। रत्नत्रय दो प्रकारसे कहा जाता है—अभेदरत्नत्रय और भेदरत्नत्रय। इसमें अभेदरत्नत्रय तो है निज शुद्ध आत्मतत्त्वका सम्यक् श्रद्धान् ज्ञान और आचरण। जैसा निज शुद्ध आत्मतत्त्वका श्रद्धान् ज्ञान और आचरण होना है, तक शुद्ध रागद्वेष रहित

निजस्वभाव मात्र। ज्ञानमात्र स्थितिमे सहज ही उत्पन्न होने वाले शुद्ध-आनन्दरससे परिणत ऐसे शुद्ध आत्माका श्रद्धान् ज्ञान और आचरणको अभेदरत्नत्रय कहते हैं।

भेदरत्नत्रय क्या है कि वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा प्रणीत अथवा उनकी दिव्यध्वनिसे फैले हुए उपदेश, जैसे कि शुद्धआत्मतत्त्व और ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्त्व, ६ पदार्थोंके विषयका यथार्थ श्रद्धान होना, ज्ञान होना और हिंसा आदिकका त्याग, व्रत शीलका पालन—यह सब भेदरत्नत्रय कहलाता है। यहा ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय ७ तत्त्व और ६ पदार्थ सब वस्तुवों को ४ प्रकारसे कहा है—द्रव्य, अस्तिकाय, तत्त्व और पदार्थ। इनमें चारों ही आए हैं जो प्रत्येकमें हैं। कोई जुदा चीज इनमें नहीं कही गई है, किन्तु जब पिण्डरूपसे बताया देखा जाये तब उसका नाम पदार्थ है। और जब प्रदेशकी दृष्टिसे देखा जाये तो उसही वस्तुका नाम अस्तिकाय है और जब पर्यायकी दृष्टिसे देखा जाये, कालकी दृष्टिसे देखा जाये तो उसही का नाम द्रव्य है और जब स्वभावदृष्टिसे देखा जाये तो उसहीका नाम तत्त्व है। सो इसकी श्रद्धा करो अर्थात पदार्थोंका चतुर्मुखी श्रद्धान करो। यह सब भेदरत्नत्रय है

निश्चयसे तो शुद्ध आनन्द स्वादसे परिणत निज शुद्ध आत्माका श्रद्धान, ज्ञान और अनुचरण होना, एक परिणमन होना, सो अभेदरत्नत्रय है। इन दोनों प्रकारके रत्नत्रयोंका अनुरागी भक्त पुरुष होता है। दोनों प्रकार के रत्नत्रयोंमे इस भव्य जीवकी गति होती है। सो यद्यपि व्यवहारसे सविकल्प अवस्थामे चित्तको स्थिर करनेके लिए अथवा आत्मस्थिति करनेके लिए पचपरमेष्ठीका स्तवन, प्रभुका स्तवन, पूजन मनसे प्रभुके वाचक अक्षरों के द्वारा ध्यान—ये सब बातें प्रथम अवस्थामे रत्नत्रयके भक्त भव्यजीवके होती हैं। सविकल्प अवस्थामे अपने उपयोगको स्थिर बनाने के लिए प्रभु भक्ति, प्रभुस्तवन, प्रभुध्यान होता है।

यह सब भेदरत्नत्रय है। तो भी निश्चयरत्नत्रयका जब परिणमन का अवसर होता है उस समय केवल ज्ञानादिक अनन्तगुणोंसे परिणत निज शुद्ध आत्मा ही ध्येय होता है। जो कुछ मिलेगा वह खुदमे से मिलेगा। दूसरे जीवों पर कितनी ही दृष्टि गडाई जावे पर खेद ही मिलेगा क्योंकि अपना उपयोग अपने से निकलकर बाहरमें गया है। जो बाहरी पदार्थ भिन्न हैं, अध्रुव हैं, स्वयं नष्ट होने वाले हैं उन पर उपयोग जाये तो उपयोग कैसे स्थिर रह सकता है? सो निश्चयसे केवल ज्ञानादिक अनन्तगुणोंसे परिणत निजशुद्ध आत्मा ही ध्येय होता है। एक ज्ञानमात्रका अनुभवन करते हुए, स्थिर हो जाता है। वहा कोई विकल्प, कोई तरग, सकल्प कुछ भी प्रकट नहीं

होना। एक विचित्र अलौकिक सत्य आनन्द परिणत होता है। इस ही परिणमनको कहते हैं अभेदरत्नत्रयमें परिणत होना।

इस दोहेमें यह शिक्षा दी गई है कि जो अनन्त ज्ञानादिक गुणमय शुद्ध आत्मा ध्येय कहा है वही निश्चयसे उपादेय है। हम किस भाव पर, किस द्रव्य पर दृष्टि दें कि हमको हित मिले? शरण मिले, ऐसा भाव, ऐसा पदार्थ बतलावो। बाह्यमें चाहे धन वैभव परिवार, मित्र इनकी दृष्टिसे भी आत्माको आनन्द नहीं मिलता है, क्षोभ होता है और आत्माका यह कर्तव्य ही नहीं है कि किसी परपदार्थसे अपना नाता जोड़े। जैसे समझदार पुरुष के समक्ष कोई मूर्ख उल्टी क्रिया करे तो उस पर समझदार कुछ हास्य ही ही करता है, इसी प्रकार ज्ञानीसंतकी निगाहमें ये मोही जन हास्यके ही पात्र होते हैं। जो नहीं करनेका है सो यहां किया जा रहा है— ऐसा ज्ञानी संत पुरुषकी दृष्टिमें आता है।

भैया! कौनसे बाह्यपदार्थ ऐसे हैं कि जिनका सहारा लें तो हमारा पूरा पड़ जाय? वर्तमान भवमें लौकिक सुख समागम मिल गया तो इससे आत्माका क्या पूरा पड़ जायगा? क्या मरण न होगा? क्या अगला जन्म न मिलेगा? अथवा इस ही भवमें बेचैनी और क्षोभ न होगा? परका आश्रय लेनेसे क्षोभ ही होता है, शान्ति नहीं होती है। परपदार्थोंमें कोई भी पदार्थ ऐसा न मिलेगा जिससे आनन्द मिले। इन भवोंमें कौनसा ऐसा भव है कि जिस भवमें हम बने रहें तो शांति मिले? अज्ञानी जीव तो ऐसी चेष्टा करता है कि किसी जीव पर मोह हुआ, राग हुआ और वह अवसर पाकर कुछ मोह राग कम होनेको हुआ तो जानकर वह मोह और रागको बढ़ाता है, सुरक्षित रखता है, किन्तु ज्ञानी पुरुषके पूर्वबद्ध कर्मोंके उदयवश कहीं राग उत्पन्न होता है तो उसके खेद होता है। कैसा यह उदय भोगना पड़ रहा है मुझे कि अत्यन्त भिन्न असार परपदार्थोंमें राग करना पड़ रहा है, सम्बन्ध जोड़ना पड़ रहा है।

ज्ञानी संत तो इस फिराकमें हैं, इस धुनमें हैं कि कब ऐसा अवसर हो कि एक भी संकल्प विकल्प न रहे और जैसा यह है तैसा ही बना रहे, यही सार भाव है, ध्रुव है, स्वाधीन बात है, इस फिराकमें रहता है। वह सब मनुष्योंको अपरिचित मानता है और जो शुद्धचैतन्यभाव है, सर्व जीवोंमें शाश्वत विराजमान है उसको परिचित समझता है। अशुद्ध जगत्‌के साथ कोई व्यवहार नहीं करता है। व्यवहार जितना हो रहा है वह शुद्धके साथ हो रहा है। और इस अशुद्धसे व्यवहार किए जाने पर मिलेगा क्या? केवल क्षोभ। निजभावमें रागादिक विकार आश्रय करने योग्य नहीं हैं। यह

विकार खुद मिट जाने वाला है, मिट जाता है, बहुत जल्दी मिट जाता है। भले ही और नये-नये बनते जाते हैं, पर जो विकार हुए वे मिटनेके लिए होते हैं। उस विकारकी बातका हम क्या पक्ष लें?

जैसे रागी जीवको अपनी बातका पक्ष हो जाता है, अपनी शान, पोजीशन, इज्जत जो-जो कुछ मान रखा है, उसका पक्ष हो जाता है वैसे। ज्ञानी संतकी दृष्टिमें ज्ञानमात्र स्थिति बने सोई इसकी सच्ची पोजीशन है। जैसे स्वप्न में किसी सभामें बैठकर अपनी शान पोजीशन बनाया तो वह मिथ्या है। जागने पर प्रतीत होता है कि वह सब झूठ ही दिखाया। इसी प्रकार मोहकी नींदमें जो स्वप्न आ रहे हैं, जो इन इन्द्रियोंसे दिखते हैं, जिन्होंने यह सत्य समझा है, जिनका यह परिचय माना है, जिनमें यह मुग्ध होता है, वे सब अयथार्थ हैं। मोहकी नींद छूटने पर अर्थात् ज्ञानके नेत्र खुलने पर, वस्तुके स्वरूप और स्वभावके दर्शन होने पर यह ज्ञात होता है कि अहो! वह सब झूठ था।

भैया! उत्कृष्ट प्रतिक्रमण जो होता है, जिससे दोष दूर होते हैं उस प्रतिक्रमणमें यही शुद्ध ज्ञायकस्वभाव ही तो ध्यानमें आता है, जिससे दोष दूर हो जाते हैं। और उस क्षणमें इस ज्ञानी पुरुषको ऐसा प्रतीत होता है जब कि निष्क्रिय ज्ञानमात्र निर्विकल्प ज्ञायकस्वभाव ही मैं हू- ऐसा अनुभव जगना है, तब उसके यह ध्यान होता है कि पाप किये किसने थे? यह एक निज मर्ममें उपयोग देने वाले ज्ञानीकी चर्चा है। जबकि व्यवहारप्रतिक्रमणमें यह बात कही है कि हे आचार्यदेव! मुझसे यह दोष बन गया है, मुझे दण्ड दीजिए। व्यवहारप्रतिक्रमणमें आवश्यक है, पर व्यवहारप्रतिक्रमण करने वाले ज्ञानी पुरुषके थोडी ही देर बाद या इससे पहिले यहा उस प्रभुस्वरूपका दर्शन हुआ था, उस शुद्ध ज्ञानस्वभावका भान हुआ था जिस परिणामस्वरूप हम पर यह भाव पैदा हुआ था। ओह! यह तो कुछ करता ही नहीं है, यह क्या अपराध करता है, अपराध किसीने नहीं किया। हुआ कैसे? मैं तो ज्ञानस्वरूप हू, मैं तो अपराध किया नहीं करता और अपराधी तो हू ही अन्यथा इस जगत्में क्यों भ्रमता? यह अपराध उपाधिवश हुआ है। मैं शुद्ध ज्ञायकस्वरूप कहा ऐसे अपराध करता हू? कैसा ज्ञानस्वरूपमें चित्त है, इस मर्मको ज्ञानी समझता है, फिर इसी बात पर ही अड़ कर नहीं रह पाता तो व्यवहारप्रतिक्रमण आता है, ओह! बडा अपराध हुआ। मैंने अपने प्रभुस्वरूपको भूलकर बड़ा अपराध किया, मुझे दण्ड भी ग्रहण करना है। तो जैसे मुनि अवस्थामें छठा और ७ वा गुणस्थान झूलेकी तरह झूलनेमें आता रहता है, इसी प्रकार ज्ञानीसतके निश्चय और व्यवहार व्रत, शील, प्रतिक्रमण,

त्याग सब कुछ निश्चय और व्यवहारके रूपसे दोनों ही पथोंमें भूलते अनुभूत होते हैं।

व्यवहारका पक्ष ज्ञानीको नहीं है और उस ज्ञानी पुरुषके निश्चयकी दृढतासे स्वच्छन्दता भी नहीं आती है। ऐसा ज्ञानीसन सविकल्प अवस्थामे भेदरत्नत्रयमे परिणत होता है, तो भी यथा-अवसर शुद्ध ज्ञानमात्र अनुभवकी कलामें अभेदरत्नत्रयमे लगकर अपनेको केवल आनन्दरससे तृप्त करता है, ऐसा शुद्धआत्मा ही निश्चयसे उपादेय है। इस तरह इस रत्नत्रय भक्तका लक्षण करते हुए ये दोनो प्रकारके रत्नत्रयोंका वर्णन किया है। इस भक्तको सदा यही ध्यानमें रहता है कि मैं केवल ज्ञानमात्र हू, ज्ञान ही करता हू, इतना ही तो कर्तापन है। ज्ञानको ही भोगता हूं, इतना ही तो भोक्तापन है। इसके अतिरिक्त अन्यका कर्ता मानना, भोक्ता मानना यह मोह रागका काम है। वह अपनेको ज्ञानस्वरूप ही सदा ध्यानमें लेता है। यही शुद्ध आत्मस्वरूप ही उपादेय है।

जो ज्ञानी पुरुष निर्मल रत्नत्रयस्वरूप ही अपने आत्माको मानते हैं। जो कि शिव हैं, वे मोक्षपदके आराधक होते हुए निज आत्माका ध्यान करते हैं, इस बातका अब निरूपण किया जा रहा है।

जे रयणत्तउ णिम्मलउ णाणिय अप्पु भणंति।
ते आराहय सिव-पयहं णिय-अप्पा झायंति ॥ ३२ ॥

जो ज्ञानी पुरुष निर्मल रत्नत्रयस्वरूप अपनी आत्माको कहते हैं वे शिवपदके आराधक निजपदका ध्यान करते हैं। कोई पुरुष जो स्वसम्वेदन ज्ञानमे रत हैं वे परमात्माको जो कि सम्यक्श्रद्धान्ज्ञान और रमणरूप है ऐसे निश्चयरत्नत्रयको भेदनयसे निज शुद्ध आत्मा माना है व शिवमय मोक्षपदका आराधक माना है और आराधक होना है। क्या करना ? विशुद्ध दर्शन ज्ञानमय निज शुद्ध आत्मस्वरूपका निश्चयसे ध्यान करना है। मोक्षकी आराधनाका अर्थ है अपने शुद्धस्वरूपकी आराधना। अपने शुद्धस्वरूपको किस तरह देखें ? अपनेको केवल देखे। अपने आत्माके साथ जो अन्य बातें हैं, उन्हें मत निरखे। शरीर है, कर्म है और कर्मोंके उदयसे होने वाले विकार हैं इन सबको न देखें, केवल एक शुद्ध ज्ञानस्वरूपको देखे। हैं साथमे पर देखें नहीं। होते हैं रागादिक विकार, पर इनमे अटको मत। इन सबको पार करके निज शुद्ध ज्ञानस्वरूपको देखो।

जैसे यहा बैठे हुए आपको स्मरण हो जाय, घरमे तिजोरीमे, सन्दूकमे, बन्द डिबियामे कपडेकी पोटलीमे बन्धी हुई अगूठीका ध्यान हो जाय तो आप अपने उपयोगसे सीधा तुरन्त उस अगूठी तक पहुच जाते हैं। रास्तेमे

कितनी ही गाड़ियां रिक्शे चलते हैं उनसे आप नहीं अटकते, घरमें जो किवाड़ लगे हैं उनसे नहीं अटकते, तिजोरीके किवाड लगे हैं, ताला बन्द है, सन्दूक बन्द है उनसे भी नहीं अटकते, तिजोरीके अन्दर सन्दूकमें डिबिया, डिबियाके अन्दर कपडेमें बन्धी हीराजडित अगूठी है उसको आप तुरन्त जान जाते हैं। आपका ज्ञान उस अगूठी तक बीचमें कहीं नहीं अटकता तो जहां आपकी रूचि है उसे आप सीधा जान जाते हैं। बीचमें कहीं अटकते नहीं हैं। इस ज्ञानी जीवको भी शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी रुचि है तो भी वह शरीर से नहीं अटकता, कर्मोंसे नहीं अटकता, विकारोंसे नहीं अटकता, सीधा ज्ञानस्वरूप पर पहुच जाता है। उसके कुछ भी स्थितियां आए उन परिस्थतियों से भी नहीं अटकता। यह सब रुचिका माहात्म्य है।

जो निश्चयरत्नत्रयस्वरूप अपनी आत्माको ही मानता है वह शिव शब्द द्वारा वाच्य मोक्षपदका आराधक होता है। उस आराधनामें करना क्या है? एक शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी आराधना करना है। यह शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्माका केवल स्वलक्षणात्मक स्वभाव आत्मामें अनादिसे है, अनन्तकाल तक रहेगा, पर अज्ञानी जीवको इसकी खबर नहीं है। खबर हो जानेका नाम ही स्वभावकी प्राप्ति है। और स्वभावकी दृष्टि और स्वभावमें रमण करनेका नाम ही रत्नत्रय है, और रत्नस्वरूप आत्माको ध्यानेका ही नाम मोक्षपदकी आराधना है। सो वह ज्ञानी पुरुष इस प्रकार मोक्षपदकी आराधना करता है।

भैया! जिसको मोक्षकी इच्छा हुई हो, सकटसे छूटनेकी भावना हुई हो, उसका कर्तव्य है कि किसी भी पर और परभावमें न अटककर एक आत्मस्वरूपमें लगे। अब यह बतलाते हैं कि अपनी आत्माको गुणस्वरूप रागादिक दोपरहित रूपसे जो ध्यान करता है वह शीघ्र नियमसे मोक्षको प्राप्त करता है।

अप्पा गुणयउ णिम्मलउ अणुदिणु जे झायंति।
ते पर णियमें परम-मुणि लहु णिव्वाणु लहंति ॥ ३३ ॥

जो पुरुष ज्ञानादिक गुणोंसे भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रूपी मलसे रहित आत्माका निरन्तर ध्यान करता है वह ही परम मुनि निश्चय करके निर्वाणको शीघ्र प्राप्त करता है। इस आत्माको खोजें देखें तो यह गुणमय मिलेगा, गुणोंसे ही रचा हुआ यह है, अथवा रागादिकगुण ही इसका स्वरूप है, ज्ञानादि गुणमय है, रागादिक इसकी विशेषताएं हैं, स्वय ही स्वतः सिद्ध ज्ञानादिमय है- ऐसे सहज सिद्ध सहजस्वभाव निर्वृत अपनी आत्माको जो ध्याता है, वह निश्चयसे बहुत शीघ्र निर्वाणको प्राप्त होता है। बहुत

बड़ा काम चाहिए क्या ? शाश्वत आनन्द, और उसका उपाय है केवल अपनी यथार्थभावना बनाना तो कितना सरल उपाय है और कितनी महान् चीज मिलती है ?

भैया ! जिसका चित्त वैभवमे अटका हो, बाह्यद्रव्योंमे अटका हो उससे यह सरल उपाय भी बन नहीं सकता। जिसका चित्त इतनी ममतामे हो कि ये दो चार जीव परिवारके तो मेरे हैं और बाकी जीवों पर कोई दृष्टि ही नहीं है, इतना कठिन द्वैतभाव जिन्हें लगा हुआ हो वे इस सरल उपायको भी नहीं कर सकते। जितना मेरा शारीरिक श्रम लगे वह पुत्र स्त्री के लिए ही है जितना मेरा धन हो, या कमाई हो वह पुत्र और स्त्रीके लिए ही है अथवा जितना भी सर्वस्व है यह सब पुत्र स्त्रीके लिए ही है। मनमे ऐसी दृढ तृष्णा पुत्र और स्त्रीके लिए ही लगी हो अथवा घरके चार जीवोंको छोड़कर बाकी जीवोंके लिए तन, मन, धन, वचन कुछ भी न लगाया जा सके—ऐसा जिनका हृदय कलुषित हो वह इस सरल उपायको कहासे कर सकेगा ? मोक्षके उपायमे चलनेके लिए सब जीवोंमें एक रस हो जाना चाहिये।

यदि परकी ओर झुकाव है तो सबकी ओर हो और परकी ओर झुकाव नही है तो किसीकी ओर न हो तो सब जीवोंमे एक दो जीवोंको छाट लेना और उन्हें ही अपना लेना—ऐसा जिनका उपयोग है वे ऐसे शल्यमे पडे हुए हैं कि जिस शल्यके होते साते कितना ही श्रम धर्मके लिए किया जाये पर अपने स्वरूपका यथार्थ अनुभव हो नहीं पाता, किन्तु उस द्वैतभावसे अपने आपको बहुत दूर कर दिया है। जो अपने आपके आत्माको ज्ञानानन्द गुणमय तकता है और जो अपने आपको रागादिक दोषोंसे रहित देखता है ऐसे जीवके अन्य जीवोंपर दृष्टि जायेगी तो ऐसा ही सब जीवोंका स्वरूप देखेगा और जो ऐसा जीवका स्वरूप देखेगा वह अन्तरमे उन सर्वजीवोंका स्वरूप समान देखेगा और द्वैतभावके आश्रयको समाप्त कर देगा। ऐसा पुरुष चूंकि वह अनवरत गुणमय आत्मस्वरूपको ध्याता है, इस कारण शीघ्र ही वह निर्वाणको प्राप्त करता है।

ऐसा सुनकर कोई शिष्य अब प्रश्न करता है कि आप तो यह कह रहे हैं कि जो पुरुष शुद्ध आत्माका ध्यान करते है, वे ही मोक्षको प्राप्त करते हैं अन्य जन नहीं, किन्तु कुछ ग्रन्थोंमे तो यह बताया है कि चाहे द्रव्य-परमाणुको अथवा भावपरमाणुको ध्या कर केवल ज्ञानको उत्पन्न कर लेना है तब यह सदेह होता है कि यहा तो आत्मध्यानीको ही निर्वाण बताया है और कहते यह हैं कि किसीका भी ध्यान करे, केवलज्ञान उत्पन्न कर लिया।

जा सकता है ?

ऐसा प्रश्न होने पर योगीन्दुदेव उत्तर देते हैं कि वहां द्रव्यपरमाणु शब्दसे द्रव्यकी सूक्ष्मता लेना और भावपरमाणु शब्दसे भावकी सूक्ष्मता लेना, किन्तु पुद्‌गलद्रव्य परमाणुको न ग्रहण करो। जैसेकि सर्वार्थसिद्धिकी टीकाओंमे लिखा है कि द्रव्यपरमाणु शब्दको तो द्रव्यकी सूक्ष्मतासे लेना और भावपरमाणु शब्दको भावकी सूक्ष्मतासे लेना। वह कैसे ? द्रव्य तो हुआ आत्मद्रव्य और परमाणु शब्दको कहा गया उसकी सूक्ष्म अवस्था, वह ग्रहण करो। वह द्रव्यकी सूक्ष्म अवस्था क्या है ? जो द्रव्यपरमाणु शब्दसे कहा जाये तो वह अवस्था है रागादिक विकल्पकी उपाधि से रहित अवस्था है। उसको सूक्ष्म कैसे कहा ? यों कहा कि रागादिकसे, विकल्पोत्साहादिकसे रहित द्रव्यकी अत्र सूक्ष्म अवस्था निर्विकल्प समाधिके विषयरूप होनेसे इन्द्रियमनके विकल्पसे अतीत हो गया है, वह द्रव्यकी सूक्ष्मता है और इसके स्वभावसे स्वसम्वेदन परिणाम शुद्ध ज्ञान अवस्थामे भावको परमाणु शब्दसे कहा है, वह है आत्माके भावकी सूक्ष्म अवस्था। इसे भी सूक्ष्म कहा है कि जो वीतराग निर्विकल्प समतारूप होनेसे पचेन्द्रिय और मनके विषयसे अतीत है। इस तरह यहा यह सिद्ध किया है कि आत्माके ध्यानसे ही सिद्धि है। जहा उच्चावस्था हो जाती है वहा यह भी कहा गया है कि चाहे आत्माका ध्यान करो और चाहे परमाणु का ध्यान करो या अन्य द्रव्यों का ध्यान करो, किसी का भी ध्यान करते हुए राग न हो तो आत्मसिद्धि होती है। रागरहित किसी अन्य वस्तुका ध्यान आत्माके ही ध्यानरूप पडता है क्योंकि रागरहित परका जो ज्ञान किया जा रहा है उसमें परकी ओर तो झुकाव नहीं है, परकी रुचि नहीं है, परका विकल्प नहीं है तो वह ज्ञान ज्ञेयाकाररूप परिणम कर भी चू कि परका विकल्प नहीं है और आनन्द आदिक ज्ञेयाकार छूटता नहीं है तो रागरहित होकर कुछ भी ज्ञान किया जा रहा हो, वे सब आत्माके ध्यानरूपमें ही पडते हैं।

जब रागरहित होकर कुछ भी ध्यानमें आ रहा हो तो वह है निज आत्मद्रव्यकी सूक्ष्म अवस्था। जब आत्मद्रव्यकी ही बात कही जा रही हो तब तो है आत्मद्रव्यकी सूक्ष्म अवस्था और जब केवल जानन ही फलित हो रहा हो तो वह है आत्माके भावोंकी सूक्ष्म अवस्था। इस प्रकार यह प्रसिद्ध होता है कि जो गुणमय दोषरहित निज आत्माको ध्याता है वह मुनि शीघ्र निर्वाण को प्राप्त होता है।

इसही ग्रन्थमें और अनेक ग्रन्थोंमें एक शुद्ध आत्माके ध्यानका उपदेश किया गया है। यह आत्मा आत्मामें, आत्माके द्वारा आत्माको ध्याता हुआ

स्वयंभू बन जाता है। स्वय अपने आपमे प्रभु समर्थ हो जाता है, उस समय कर्म आत्मा है, कर्ता आत्मा है, आधार आत्मा है, और करण भी आत्मा है। एक क्षण अन्तमुहूर्त तो ऐसी अवस्था हो जाये कि ध्याता ध्यान ध्येय सब एक हो जायें, स्वय हो जाये तो ऐसी निर्विकल्प समाधिके द्वारा शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी आराधना करते हुए यह जीव स्वयभू हो जाता है अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है। कुछ बाहरमें झुकाव न हो, बाहरमे कुछ चाह न हो और एक अपने आपके अत स्वरूपमें यह ज्ञान नियत हो जाये तो बाह्यका लोभ छोड़ देने पर बाह्यके जानने तकका भी बधन तोड़ देने पर इस परम तपस्या के प्रसादसे यह जीव सर्वज्ञ बन जाता है। सबका जानना छोडे, निजका जानना रखे तो इस ही ज्ञान तपस्याके प्रसादसे लोकका ज्ञाता बन जाता है।

जो वहा पर द्रव्यपरमाणु, सर्वभावपरमाणुके ध्येयरूप शुक्लध्यान मे ४२ भेद कहे गए हैं वे अवाछित वृत्तिसे ग्रहण करने चाहिये। इसी प्रकार जैसे कि पहिले प्रथमोपशम सम्यक्त्वके ग्रहणके सम्बन्धमे आगममे प्रसिद्ध अध प्रवृत कारणादिक कर्मोंको जीव करता है किन्तु वे वाञ्छापूर्वक नहीं होते, ईहादिक पूर्वक उनका स्मरण भी नहीं होता, इसी प्रकार शुक्ल-ध्यानमें भी अनेक पदार्थोंका ज्ञान हो जाने पर उनका ग्रहण नहीं होता। इस कारण परमार्थसे तो अन्य द्रव्योंके ध्यानेकी अवस्थामे भी आत्माका ही ध्यान है क्योंकि परका ग्रहण नहीं है, झुकाव नहीं है, विकल्प नहीं है और सूक्ष्मवृत्तिसे वह प्रायः ज्ञेय बन रहा है—ऐसी परिस्थितिमे यह आत्मस्वरूप ही ध्यानेके योग्य है।

पहिली अवस्थामे जो प्राथमिक जीव हैं, धर्ममें प्रारम्भसे लगे हुए हैं उनका चित्त स्थित करने के लिए विषय कषाय और खोटे ध्यानसे बचनेके लिए अथवा परम्परया जो मुक्तिका कारणरूप है ऐसे अरहत आदिक उत्कृष्ट द्रव्य ध्यान करने योग्य है, किन्तु पश्चात् चित्तके स्थितीभूत होनेपर साक्षात् मुक्तिका कारणरूप निजशुद्ध आत्मतत्त्व ही ध्येय होता है। इस प्रकार इसमे कोई विवाद नहीं है। इस प्रकार उन सबको यह साध्यसाधक रूप जानता है। यह अर्हद्भक्ति है या अन्य वस्तुके शुद्धस्वरूप का ध्यान है, यह सब साधक है। साध्य तो आत्मध्यान है और जहा परद्रव्योंका भी ध्यान है किन्तु रागरहित होकर ध्यान है तो वह ध्यान भी परमार्थसे आत्माका ही ध्यान है क्योंकि जहां पर वस्तु ज्ञानमें आकर भी पर द्रव्योकी ओर झुकाव नहीं है, परद्रव्योंमे रुचि नही है, विकल्प भी नहीं है, मैं इसे जान रहा हूं, यों जान रहा हू, यह भी विकल्प नहीं है किन्तु अनहित वृत्तिसे न चाह करे न राग करे, स्वय ही यह सब ज्ञानमें आता है ऐसी स्थितिमे वस्तुत ध्यान

उसने आत्माका ही किया है। और साध्यरूप अवस्था आत्माके ध्यानकी ही है।

इस कारण ध्येयके विषयमे विवाद नहीं करना कि कहीं तो लिखा है कि चाहे आत्माका ध्यान करो और चाहे पुद्गल परमाणुका ध्यान करो, अन्य द्रव्योंका ध्यान करो। रागरहित होकर ध्यान करोगे तो वे सब मोक्ष मार्गमें हुआ करते हैं। ऐसा जो कथन है उसका सीधा अर्थ यह है कि यह तो आत्मज्ञानमे लग रहा है। उस ज्ञानमे ज्ञानकी ही विशेषताके कारण, ज्ञान की ही कलाके कारण यदि अन्य अनेक द्रव्यज्ञान होते हैं तो हो। वे सब अनीहित वृत्तिसे होते हैं। वहा उसे परका ध्यान नहीं बताया गया है और जहा यह कथन है कि आत्माके ध्यानसे ही मुक्ति होती है वहा तो सीधा स्पष्ट है। प्रयोजन यह है कि परवस्तुका राग, परकी आसक्ति, परका लगाव ये नियमत हेय हैं, त्यागने योग्य हैं। इन सबसे इस आत्माका क्या सम्बन्ध?

यह ज्ञानस्वरूप आत्मा प्रतिसमय निराला है, अपने ज्ञानस्वरूप है। यह किसी परमें मिलता नहीं है—ऐसा जिसके दृढ सकल्प है, ऐसे ज्ञानी सतों के जानकर यदि प्रवृत्ति होती है ध्यानके लिए, तो आत्माके ध्यानके लिये प्रवृत्ति होती है और आत्माका ध्यान कर करके जिसका ज्ञानभाव ज्ञान भावना स्थित हो गई है—ऐसे पुरुषके ज्ञानमे अनीहित वृत्तिसे अन्य बाह्य कुछ भी ज्ञानमे आते हों तो वहा भी इसका यह ही आत्मध्यान चल रहा है। परमें रुचिपूर्वक उपयोग लगाकर कुछ परमे जाननेका भाव करे तो उसे अनात्म-ध्यानी कहा गया है। तो यों सर्वत्र उपादेय ध्येय है तो यह ज्ञानमात्र आत्म-स्वरूप है। जान-जानकर लगो अपने आत्माके ध्यानमे और कर्मविपाक-वश जो कुछ गुजरता है उसमे हर्ष और क्षोभ न मानों। परपदार्थोंके समागम मे हर्ष माननेका बहुत कडा दण्ड भोगना पड़ता है। इसलिए परकी आरा-धनाकी चोरी न करके निजकी आराधनाकी रईसी ही भोगना चाहिए। इस प्रकार इस प्रसगमे आत्माके ध्यानका अनुरोध किया गया है। अब यहा दर्शन का स्वरूप कहते हैं। आत्मामे मुख्यगुण चेतन है और उस चेतनके दो प्रकार हैं—दर्शन और ज्ञान। ज्ञानका अर्थ तो जानन है, ज्ञेय होना, विकल्प होना, यह सब ज्ञान है और दर्शनका स्वरूप बहुत सूक्ष्म है। यहा दर्शनका स्वरूप कह रहे हैं।

सयल-पयत्थहं ज गहणु जीवहं अग्गिमु होइ।
वत्थु-विसेस-विवज्जियउ त णिय दसणु जोइ ॥२४॥

जो जीवके ज्ञानके अतिरिक्त समस्त पदार्थोंका भेदरहित सामान्यरूप ग्रहण है वह निजदर्शन है, उसको तू जान। दर्शन और ज्ञानके लक्षणमे दर्शन

के स्वरूपकी पकड बहुत कठिन है और ज्ञानके बारेमे तो जल्दी समझ बैठ जाती है कि यह ज्ञान है, जानन है। पर दर्शनका स्वरूप सूक्ष्म है और आत्मासे सम्बन्ध रखने वाला है। अत सर्वजीवोको इसका परिचय नहीं होता। जहा निज आत्माका दर्शन हो उसे दर्शन कहा है। जो सामान्यका ग्रहण करने वाला है, जिसके किसी प्रकार का विकल्प नहीं है, केवल सत्ता का अवलोकन मात्र है, ऐसा जो दर्शन है वह दर्शन क्या है? निजका दर्शन है।

जैसे कहा जाये कि हम परपदार्थोंकी सत्ता तो जाने, किन्तु परपदार्थोंकि सत्ता है इस प्रकारसे न जाने, केवल सत्ताके स्वरूपसे जानें तो मात्र सत्ताके स्वरूपको ग्रहण करेगे। तब पर तो छूट गया और खुद कभी छूटा नहीं, इसलिए वह दर्शन निजदर्शन हो जाता है। निजदर्शनकी बात सुन कर यहा जिज्ञासु शिष्य प्रश्न करता है कि तुम तो आत्माके दर्शनको दर्शन करते हो, यह जो सत् अवलोकनरूप दर्शन है, यह तो मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी है, फिर उनकी भी मोक्ष हो जाये। दर्शन समस्त जीवोंके होते हैं। सर्वज्ञान दर्शनपूर्वक होते हैं। तो दर्शन जब मिथ्यादृष्टियोंके भी हो तो उनका भी मोक्ष हो जाना चाहिए।

ऐसी शका होने पर उत्तर अर्थात् निजका दर्शन ४ तरहका है—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। जो मानस अचक्षुदर्शन है वह आत्मामे ग्राहक है और वह मिथ्यात्व आदि ७ प्रकृतियोके उपशम से अथवा क्षयोपशमसे उत्पन्न हो, तत्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्त्वका अभाव होनेसे शुद्ध आत्मतत्त्व ही उपादेय है। ऐसा श्रद्धान न होने पर उन मिथ्यादृष्टियोको वह दर्शन नहीं होता है। ससारी जीवोंके अचक्षुदर्शन होता है। और जो चार इन्द्रिय जीव हैं, सज्ञी पचेन्द्रिय जीव हैं, उनके चक्षुदर्शन होता है, असंज्ञीके भी होता है। इस दर्शनमे से जो मानस अचक्षुदर्शन है वह कोई कोई अचक्षुदर्शन आत्माका ग्राहक होता है। वह मिथ्यादृष्टी जीवके नहीं होता है और शेष दर्शन होता रहता है तो उस विशिष्ट आत्मदर्शन करने वाले अचक्षुदर्शनका मिथ्यादृष्टीमें अभाव है इस लिए उस प्रश्नका उत्तर यह है कि वे शेष दर्शन तो होते हैं मिथ्यादृष्टी जीवोंके, उनके आत्मदर्शन नहीं होता।

अथवा जितने भी दर्शन होते हैं चाहे सम्यग्दृष्टियोंके हों अथवा मिथ्यादृष्टियोंके हों, दर्शन होता है आत्माकी ओर झुकना और अगला ज्ञान करनेके लिए शक्ति लेना। जैसे अभी भीत जानते थे। अब भीतका जानना छोड़कर हम किवाड़ को जानने लगे तो भीतका ज्ञान तो छूट गया और

किवाड़ का ज्ञान करने लगे। जब उस आत्माका उपयोग आत्माकी ओर आता है दूसरे वस्तुके जाननेकी शक्ति प्रकट करनेके लिए आता है तब-तब ज्ञान बदलता है, उन उन ज्ञानोंके मध्यमें दर्शन होता रहता है। पर ज्ञेयका लोभ लगा है, मिथ्यादृष्टियोंके तृष्णा लगी हुई है, ज्ञेयमें आसक्ति, रुचि लगी हुई है। इस कारण एक ज्ञान छोड़नेके बाद दूसरा ज्ञान ग्रहण करनेके बीच उन मिथ्यादृष्टियोंके दर्शन यद्यपि होता है लेकिन दर्शनका उनके ध्यान नहीं है और स्कंध पदार्थोंकी ओर उनका ध्यान है। सो दर्शन होकर भी दर्शनको दर्शन नहीं समझ पाते हैं। इसलिए मिथ्यादृष्टियों को कभी आत्माका दर्शन नहीं हो पाता।

जैसे किसी पुरुषको धनी बननेके लिए एक उपाय सूझा। अमुक पहाड़में बहुतसे पत्थर हैं, उनमें पारस भी है, सो उन पत्थरोंका ढेर हम समुद्रके किनारे लगाएँ और समुद्रके ही किनारे पर एक लोहा मोटा गाड़ दें और पत्थर उस लोहा पर मारें तो लोहा सोना हो जायेगा तो उसे पारस जान कर रख लेंगे और हम धनी हो जायेंगे—ऐसा भाव उसके हुआ। सो उसने समुद्रके किनारे १०–२० गाड़ी पत्थर इकट्ठा कर लिया। एक पत्थर उठाया, लोहे पर मारा, देखा कि लोहा सोना नहीं हुआ। इसी तरह दूसरा पत्थर उठाया, लोहे पर मारा, देखा कि लोहा सोना नहीं हुआ पत्थर को समुद्रमें फेंक दिया। अब उसके लो लग गई, वह पत्थर उठाये, लोहा पर मारे, देखे कि लोहा सोना नहीं हुआ, फेंक दिया समुद्रमें। सो जरा जल्दी जल्दी वह काम करने लगा क्योंकि बहुतसे पत्थर जमा थे। उसकी धुन बन गई। वह पत्थर मारे और फेंके। इसी तेज धुनिके बीचमें एक बार पारस पत्थर भी उसके हाथमें आया, मारा और फेंका।

अब पारसपत्थर फेंक चुकनेके बादमें देखा कि लोहा सोना बन गया अब वह माथा धुनता है कि कई दिनसे मुश्किलसे पारसपत्थर हाथमें आया और वह भी समुद्रमें फेंक दिया। लो धुन एक ऐसी चीज होती है कि हितकारी वस्तु भी हाथमें नहीं रह पाती है। मिथ्यादृष्टी जीवोंके ज्ञेय पदार्थोंका लोभ लगा है। जाननेका और उनको इष्ट माननेका जो लोभ लगा है उस लोभके कारण वह ज्ञेयपदार्थोंकी ओर ही अपना उपयोग रखता है। इस कारण बीच बीचमें उनको आत्माका दर्शन हो रहा है, किन्तु दर्शनको वे ग्रहण नहीं कर पाते हैं। तो दर्शनकी ऐसी स्थिति है कि जहां किसी भी परपदार्थका विकल्प न हो और उस चेतनाके प्रतिभासमें कोई भेद न डाला जाये, केवल सामान्य प्रतिभास हो, उसको दर्शन कहते हैं।

यह दर्शन जिन जीवोंने ज्ञात किया है, लो। यह है दर्शनका निर्विकल्प

स्वरूप जिसने ऐसा समझा है उनकी उस क्षण ऐसी स्थिति हो जाती है कि न दुनिया का भान रहा, न अपने परायेका भेद रहा, न स्वयमें कुछ विकल्प रहा कि मै भी कुछ हू। केवल एक सामान्य ज्ञानस्वभावका अनुभव रहता है। ऐसा जो दर्शन है वह है आत्मदर्शन और ज्ञानसामान्यका अनुभव, बल्कि जो अज्ञात दर्शन हो रहा है वह होता है सर्वससारी जीवके। अन्य दर्शन इस जीवने अब तक नहीं प्राप्त किया। मिथ्यादृष्टी का जो स्थूलरूप परद्रव्योंका देखना जानना होता है वह मोक्षमार्गरूप नहीं है। उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहा। वह मोक्षका कारण भी नहीं है। तत्त्वार्थ श्रद्धानके अभावसे सम्यक्त्व नहीं है और सम्यक्त्वके अभावसे उन जीवोंके मोक्ष भी नहीं होता है। इस प्रकार दर्शनका सामान्यस्वरूप बताकर अब यह कहते हैं कि छद्मस्थ जीवको ज्ञानसत्के अवलोकनरूप दर्शनपूर्वक होता है।

दसणपुव्वु हवेइ फुडु ज जीवहँ विण्णाणु।
वत्थुविसेसु मुणतु जिय त मुणि अविचलु णाणु ॥३५॥

छद्मस्थ जीवके जो ज्ञान होता है वह निश्चय करके दर्शनपूर्वक होता है, वह ज्ञान वस्तुके विशेषको जानता हुआ होता है। उस ज्ञानको हे ज्ञानी जीव! तू संशय, विमोह और विभ्रमसे रहित होकर यथार्थ पहिचान। दर्शन तो सामान्य अवलोकन है और सामान्य अवलोकनके बाद जो विशेष पकड होती है उसे कहते हैं ज्ञान। ये संसारी और छद्मस्थ जीवोंके हिंडोले की तरह क्रमश ज्ञान होता रहता है। दर्शन हो, ज्ञान हो, दर्शनज्ञानमय हो तो यह जीव है, पर ऐसा दर्शन हो कि उस दर्शनका स्वरूप भी ग्रहणमें आ जाये तो वह सम्यग्ज्ञानका कारण बनता है। और ज्ञान भी ऐसा ज्ञान हो कि किसी परतत्त्वका विकल्प न किया जाये, मात्र आत्माके शुद्धज्ञान-स्वरूपका सम्बोधन हो तो वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

भैया! जब तक अपने स्वरूपका अनुभव नहीं होता है तब तक यह जीव बाहरी पदार्थोंके लिए तरसा करता है। बाहरी पदार्थोंकी चाहसे कुछ अपना काम पूरा नहीं पडता है। किनकी चाह पूरी हुई है? चाह पूरी होती है तो मिटकर पूरी होती है। मिटे बिना चाह पूरी नहीं होती। जितनी भी चाह होती है और उनकी पूर्ति होती है, उसका अर्थ है कि चाह मिट गई। चाहके मिट जानेका ही नाम चाहकी पूर्ति है। चाह बनी रहे और पूरी हो जाये, यह परस्पर विरोधकी बात है। जब तक चाह है तब तक वह पूरी नहीं होती। जब वह पूरी होती है तब वह चाह नहीं रहती है। चाहके मिट जानेमे ही आनन्द होता है। पर जीव मानता है कि परवस्तुसे आनन्द मिला। आनन्द तो मिला चाहके मिटनेसे, पर अज्ञानी मानता है कि पर-

वस्तुसे आनन्द मिला। इस कारण अज्ञानीकी दृष्टि परवस्तुवोंकी ओर रमी रहती है।

जैसे मनमें भाव हुआ, इच्छा जगी कि अमुक क्षेत्रके दर्शन करना है। जब तक उस क्षेत्रपर नहीं पहुंच जाता तब तक इच्छा लगी रहती है और उससे आकुलताए बनती हैं। नाना प्रयत्न किये जाते हैं। क्षेत्रपर पहुचने पर, क्षेत्रके दर्शन होने पर अब क्षेत्रके दर्शन करना है—यह इच्छा नहीं रही। आनन्द तो इसका आया, पर मानता जाता है कि मुझे तो इस क्षेत्रसे आनन्द आया। घरके भी लौकिक कामोंको देखलो। एक महल बनवाना है, जब तक ऐसी इच्छा है तब तक आकुलता है। मकान बनवाना है, बड़ा परिश्रम करना है। मकान पूरा बन चुकनेके बाद वह आनन्द मानता है। असलमें वह जो आनन्द होता है यह इच्छाका विनाश है कि अब मुझे मकान नहीं बनवाना है। जो इच्छा कर रहा था वह अब नहीं रही, इसका आनन्द आया है। मगर यह मानते हैं कि मुझे मकानसे आनन्द आया है। एक बात नहीं, सभी बातोंमें घटालो।

जितना भी आनन्द होता है इन ससारी जीवोंको, वह चाहके मिटने का आनन्द होता है, परवस्तुसे आनन्द नहीं आता है। भोजनकी इच्छा हुई कि अमुक भोजन करना है, ऐसा रसीला भोजन करना है, सो जब तक यह इच्छा जग रही है तब तक आकुलताए हैं। यदि वह भोजन मिले बिना ही अपनी इच्छाको मिटा ले तो उस समय ही आनन्द और गया। मानते यह हैं कि भोजन करने से आनन्द आता है। यदि भोजन करने के पहिले ही अपनी इच्छा मिटा ली तो उससे भी अधिक आनन्द इसे आजायेगा और भोजन करके इच्छा न मिटे तो भोजन कर चुकनेके बाद भी आनन्द न आयेगा। तो सारा आनन्द इच्छाके मिटने का होता है। भोजन करनेसे नहीं होता है। चाहे भोजन करके अपनी इच्छा मिटावो, चाहे कोई ज्ञानी पुरुष भोजन किए बिना ही इच्छाको मिटाले, पर आनन्द आता है इच्छाके मिटनेसे ही। यदि भोजनसे आनन्द आता है तो भरपेट भोजन कर चुकने के बाद एक ग्रास मुखमें भी भरे रहो। तो जो भी आनन्द हुआ है वह आनन्द भोजन करनेसे नहीं हुआ किन्तु इच्छाके मिटनेसे हुआ। किसीकी इच्छा मिटी भोजन करनेके बाद और कोई भोजन करनेसे पहिले इच्छा मिटा ले तो वह सुखी हो जायेगा। जितनी मात्र इच्छा है वह सब दुःखोंको उत्पन्न करने वाली है। जब इच्छा नहीं रहती तब सुख उत्पन्न होता है।

एक मित्रके चिट्ठी आई कि मैं ६ बजेकी गाड़ीसे अमुक स्टेशनसे गुजर रहा हूं, तुम आकर मिल जावो। उसको मित्रसे मिलनेकी इच्छा जगी।

६ तो आजकल बड़ी जल्दी बजते हैं। तो उसने सुबह उठकर बड़ी जल्दी जल्दी सब काम किया। ५ बजे जगकर जल्दी स्नान किया, मंदिर गया। और और भी विशेष आकुलताएँ बनाईं। जब स्टेशन पहुंच गया तो वहां पता लगाता है कि कितनी देर बाद गाड़ी आयेगी? जब गाड़ी आ गई तो डिब्बोंमें दौड दौडकर देखता है। जब डिब्बेमें वह मित्र दिख गया तो वह उस डिब्बेके अन्दर घुस गया। जब मित्र मिल गया तो २ मिनट बीते नहीं कि वह गाड़ीसे उतरने की सोचने लगा। गाडी चार मिनट ठहरती है। कहीं गाडी न छूट जाये, यह सोचता है। अरे तुझे जो आनन्द मिला है वह मित्रके मिलनेसे मिला है ना, तो तू मित्रसे मिलता रह क्योंकि तुझे आनन्द मिलता है। तू क्यों गाड़ीसे उतरनेकी सोचता है? असलमें वहां भी मित्रके मिलने से आनन्द नहीं होता है किन्तु मित्रसे मिलनेकी जब तक इच्छा जग रही थी तब तक आकुलता थी और अब मित्रसे मिलनेकी इच्छा मिटी उससे आनन्द आया। और कोई पुरुष यह सोचले कि मित्र तो आता ही रहता है, क्या करना है? इच्छा न ठहरने दे तो वहीं खत्म हो जाये, तभी वह आनन्दमें मग्न हो जाये। उसे और ज्यादा प्रयत्न नहीं करने पड़ेंगे।

जितने भी क्लेश होते हैं वे इच्छासे होते हैं और जितना भी आनन्द होता है वह इच्छाके मिटनेसे होता है। कोई पुरुष गृहस्थीमें रहकर ऊब गया, हैरान हो गया। इच्छा कर करके उन सबको असार जान लिया, वैराग्य हो जाये, किसी वस्तुकी वाञ्छा न रही। अब सर्व कुछ त्यागकर अंत में वह साधु व्रत ले लेता है और उस अनरग त्यागसे वह आनन्दमें मग्न भी रहता है। यही एक आनन्द अनन्त कालका उत्कृष्ट आनंन्द है। यह कैसा आनन्द है कि इच्छा नहीं रही, केवल ज्ञाता द्रष्टा रहने लगा उसका यह आनन्द है। पहिले जो आनन्द लेता था वह इच्छाके मिटनेके आनन्दको लेता था, पर यह मर्म नहीं विदित था। दृष्टि परवस्तुवोंपर जाती थी। मान्यता यह बनी रहती थी कि मुझे अमुक वस्तुसे आनन्द मिला। इस भ्रमके पहिले बडी गृहस्थीके बीच रहता हुआ भी दुखी रहता था। आज सब कुछ छोडनेके बाद केवल रंच मात्र परिग्रह रहकर भी वह आनन्द-मग्न है। तो इच्छाके मिटने से आनन्द होता है।

जैसे कोई ज्वारी, ज्वारीको देखकर अपना जुवा खेलनेमें लग जाया करता है और इष्ट मानता है, हित मानता है, रम जाया करता है। इसी प्रकार इच्छावान् जीव इच्छावान् जीवको देखकर उन्हें इष्ट मानता है, रम जाता है। उनमें कोई एक इच्छारहित हो और दूसरा भी कोई इच्छारहित हटो तो उसको बंधन होता ही नहीं है, पर एक इच्छावान् हो और दूसरा भी

इच्छावान हो तो बन्धन हो जाता है। इस इच्छाका विनाश वस्तुस्वरूपके यथार्थज्ञानसे ही हो सकता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। जिस वस्तुकी इच्छा होती है उस वस्तुको जोड जोड कर चाहे कि इस इच्छा का क्लेश मिटालें तो यह नहीं मिट सकता है।

भैया! आशाका गड्ढा इतना विचित्र है कि इस आशामें जितनी चीजें डालते जावो, जितने पदार्थ मिलते जायें उतना ही आशाका गड्ढा बडा होता जाता है, भरता नहीं है। जमीनके गड्ढेमें कूडा करकट डालो तो वह गड्ढा भर जाया करता है, मगर इस चैतन्य जीवके आशाका गड्ढा इतना विलक्षण है कि उसमें जितनी ही चीजें डालते जावो उतना ही वह बढता जाता है। परवस्तुवोंके संचयसे, परवस्तुवोंकी दृष्टिसे आत्माको आनन्द नहीं मिल सकता, आनन्द तो इच्छाके मिटनेसे ही मिलेगा। इच्छाके मिटनेकी कुञ्जी उन्हें ही प्राप्त है जिन्होंने सबसे न्यारा, अपना ही जिम्मेदार अपने आपके स्वरूपको देखा है। दूसरे पदार्थोंसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है।

बाह्य पदार्थ, बाह्य जीव अपनी सत्तासे हैं, मैं अपनी सत्तासे हू। मेरेमें दूसरा कुछ नहीं कर सकता है, मैं दूसरोंका कुछ नहीं कर सकता हू, अपने ही स्वरूपमें, अपने ही प्रदेशों में रहा करता हू। आज जिन दो चार दस जीवोंका समागम हुआ है वे जीव और उनके अतिरिक्त जितने शेष जीव हैं वे जीव सब एक ही प्रकारसे मुझसे भिन्न हैं। न गैरोंसे मुझसे सम्बन्ध है और न कुटुम्बी जनोंसे मेरा सम्बन्ध है। यह सब सम्बन्ध कल्पनासे जुडा हुआ है, वास्तविक सम्बन्ध नहीं है। ऐसे यथार्थज्ञान ? दृढतापूर्वक भाव होता है तब उसे शान्तिका उपाय मिलता है अन्यथा तो वस्तुवोंके लोभमें आकर वस्तुवोंके पीछे दौडना है।

जैसे छाया पकडने के लिए कोई दौड लगाए तो वह छाया को नहीं पकड सकता है। इसी प्रकार इस माया छायाको सचित करके शांति चाहें तो उससे शांति नहीं मिल सकती है। कभी तो वह दिन आयेगा कि सब कुछ छोड़कर जाना पडेगा। तो जब अतमें सब कुछ छोडकर जाना ही पडेगा तो क्यों न अपनी जिन्दगीमें कुछ ऐसे क्षण बिताए कि जिस समय सबको छोडे हुए रह जायें। क्यों न यह मान लिया जाये कि यदि हम ६० वर्ष ही जियेंगे तो हम समझलें कि हम ५९ वर्ष ही जिए। एक वर्ष पहिले ही अगर मर गए तो वहां तो मेरे साथ कुछ न रहेगा। यदि इतना भी नहीं करते हैं कि सब कुछ छोड ही देना है। छोड देना तो अच्छा है, पर नहीं करते न सही, पर अपने २४ घटोंमें से १५ मिनट प्रति दिन ऐसे तो बिताए, ऐसा तो उपयोग बनाए, जिससे १५ मिनटमें अपनेको ऐसा साफ पायें कि

यह सबसे जुदा हूं, अकिञ्चन हूं। औरोंसे रच भी मेरा सम्बन्ध नहीं है। मै तो अपने ज्ञानस्वरूपमात्र हूं— ऐसा अनुभव कुछ ही समय रोज बनायें तो उसके मोक्षमार्ग बराबर जारी रहता है। उसे शाति मिलकर ही रहेगी। अत यह कर्तव्य है कि कुछ मिनट तो रोज अपनेको सबसे न्यारा अनुभव करना ही चाहिए।

आत्माका असाधारण गुण चेतना है। असाधारण गुण उसे कहते हैं जो अन्य सब वस्तुवोंको न्यारा करदे और जिसको जानना हो उसको ही ग्रहण करे, उसे असाधारण गुण कहते हैं। जीवको पहिचानना है तो जीव का असाधारण गुण जानना चाहिए। जो सब जीवोंमे तो पाया जाये, पर जीवोंके अतिरिक्त किसी अन्य जीवमें न पाया जाये, ऐसे गुणका नाम है जीवका असाधारण गुण। जीवका असाधारण गुण है चैतन्य, और इस जीव दो प्रकारके हैं--दर्शन और ज्ञान। जब सामान्यरूपसे चेता जाता है, तब उसका नाम है दर्शन और जब विशेषरूपसे चेता जाता है, आकार, भेद सबके परिचयपूर्वक जो चेता जाये उसका नाम ज्ञान है।

सर्वससारी जीवोंके ज्ञानसे पहिले दर्शन होता है किन्तु केवली भगवानके दर्शन और ज्ञान दोनों एक साथ होते हैं। दर्शन केवलसत्ताका अवलोकन हो और ज्यादा कुछ भी बातें चेतनेमें न आये उसका नाम दर्शन है। जैसे आखोंसे देखा और देखनेमे आया कि यह रग हरा है, कुछ भी आया तो यह दर्शन नहीं है। आंखोसे देखा नहीं जाता, आखोंसे जाना जाता है। देखा जाता है केवल आत्मासे, किसी भी इन्द्रियसे देखा नहीं जाता। न कानसे देखा जाय, न आखोंसे देखा जाये, न अन्य इन्द्रियोसे देखा जाय। देखा जाता है आत्मासे ही। और जाना जाता है आत्मासे ही और इन्द्रिय और मन के निमित्तसे आत्मासे परमार्थसे तो जितना भी ज्ञान होता है वह आत्मासे ही जाना जाता है। परद्रव्यसे जाना जाने वाले जिस ज्ञानमें निमित्त इन्द्रिय और मन पड़ता है उनको कहा जाता है कि यह ज्ञान इन्द्रिय और मनसे जाना गया।

जितना भी ज्ञान होता है वह दर्शनपूर्वक होता है ससारी जीवके। कुछ भी जानने चले तो जाननेसे पहिले कुछ न कुछ सामान्य अवलोकन होता है। उस सामान्य अवलोकनका नाम है दर्शन। कोईसा भी ज्ञान हो, जिसमें न सशय हो, न विपर्यय हो, न अनध्यवसाय हो, वह ज्ञान सच्चा ज्ञान है। मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत ज्ञानमें तो आत्मज्ञान श्रेष्ठ ही है और व्यवहार में किसी भी चीजका ज्ञान करे, सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय न हो उसे ज्ञान माना है।

आत्मामें संशय क्या होता है ? जैसे कोई यह संदेह करे कि आत्मा या नहीं, आत्मा नित्य है या अनित्य है, आत्मा एक है या अनेक है। किसी भी प्रकारका आत्माके सम्बन्धमें संशय हो तो वह आत्माका यथार्थ ज्ञान नहीं है। विपर्यय क्या कि आत्मा पंचतत्त्वोंसे बना है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चार भूतोंसे बना है अथवा यह शरीर ही जीव है, शरीरके मिटने पर जीव भी मिट जाता है इत्यादि विपरीत धारणायें विपर्यय ज्ञान कहलाती हैं।

अथवा कोई विशेष चतुर लोग हों, ज्ञानी पुरुष तो इस आत्माके स्वरूप आदिके बारेमें बहुतसे सिद्धान्त मानते हैं। जैसे किसीने माना कि जीवका स्वरूप तो केवल एक चेतन है, जिसमें ज्ञान नहीं है और है चेतन। चेतन उसे कहते हैं कि जिसमें ज्ञानका सम्बन्ध हो जाये तो वह ज्ञानी बन सकेगा। स्वरूपसे जीव ज्ञानी नहीं है, कोई ऐसा सिद्धान्त मानते हैं। जीव ज्ञानरहित है। ज्ञान गुण जरूर है पर ज्ञान गुण जीवसे न्यारा है और जिस जीवका ज्ञानसे सम्बन्ध होता है वह जीव जाननहार बनता है। और जब तक जीव जाननहार रहता है तब तक दुःखी है, संसारी है, और जब जानना मिट जाये तो वह मुक्त हो जाता है। ऐसा कोई सिद्धान्त कहते हैं। यह भी विपर्ययमें शामिल है।

कुछ भी वस्तुके बारेमें कहा जाता है तो उसमें कुछ तथ्य होता है जिसके ऊपर फिर विशेष बात मढ़ ली जाती है। जिसने ऐसा माना कि जीवमें स्वतः ज्ञान नहीं है, ज्ञानका सम्बन्ध होता है तो यह संसारी है, दुःखी है। और जब ज्ञान मिट जाता है तो यह जीव मुक्त हो जाता है, भगवान हो जाता है। जिनकी दृष्टिमें यह बात समाई है उनको पहिले यह ध्यान आया है कि हमारे दुःखका कारण जानना है। यदि हम कुछ न जाने तो कुछ दुःख नहीं है। जान लेते सो दुःखी होने लगते। सो जानना ही बैर है और जानना मिट जाये तो भगवान बन गया। एक बात यह उनके ध्यानमें आयी है। दूसरी बात जब परमात्माका स्वरूप उन्होंने सुना कि परमात्मा निर्विकल्प है, न उसमें कोई रागद्वेष है, न कोई इष्ट अनिष्ट है, न वह इच्छा करता है, वह तो निष्क्रिय है--ऐसा जब निर्विकल्प ज्ञानका वर्णन सुना तो लोगोंकी दृष्टिमें तो ज्ञान वही है जहां विकल्प मचे। वह वहां उन्हें मिला नहीं तो निर्णय किया कि जब ज्ञान नहीं रहता है तब भगवान् कहलाता है। ये सब सिद्धान्त विपर्ययमें शामिल हैं। विपरीत ज्ञान है।

अथवा ऐसा समझो कि जीवके साथ रागद्वेष लगे ही रहते हैं, कोई जीव ऐसा नहीं है जो रागसे परे हो। कभी राग कम हुआ और थोड़ी देर

को भगवान् बन गये तो वे चाहे एक कल्प काल तक भी भगवान बने रहे पर उतना समय व्यतीत हो जाने पर फिर उनमें चूँकि जीवके स्वरूपमें राग है तो फिर राग उखड जाता है और वैकुण्ठसे गिरकर फिर संसारमें जन्म लेना पडता है— ऐसी धारणाये सब विपरीत ज्ञानमें शामिल हैं।

अथवा आत्माके सम्बन्धमें ऐसा जानना कि यह आत्मा माता पितासे पैदा होता है अथवा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुसे उत्पन्न होता है—ऐसे विपरीत जाननेसे आत्माकी उत्पत्ति मानना यह सब विपरीत ज्ञानसे गर्भित है। ऐसे विपरीत ज्ञानसे रहित जो आत्मज्ञान है, वही सम्यग्ज्ञान है।

ज्ञानमें तीसरा दोष होता है अनध्यवसाय। कुछ भी चीज जानने चले तो जाननेके प्रारम्भिक क्षणमें ज्ञानकी धारा टूट जाये और कुछ निर्णय में न रहे कि यह क्या है? कौन है? इतना तक तो चले ज्ञान पर, इसके बाद क्या है यह निर्णयसे छूट गया, ऐसे ज्ञानका नाम है अनध्यवसाय। अनध्यवसाय भी सम्यग्ज्ञानमें नहीं होता है। ऐसा संशय, विपर्यय, अनध्य-वसायसे रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

यहा पर दर्शनपूर्वक ज्ञान बताया गया है। दर्शनमे तो विकल्प नहीं है, सामान्यप्रतिभास है और ज्ञानमे विकल्प है, आकार प्रकार वर्णादिक इन सबका परिचय होता है और जगतके विविध पदार्थोंका जो ज्ञान होता है वह सब व्यवहारिक ज्ञान है। सो निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्वके अनुभवन कालमें अथवा व्याख्यानके कालमे व्यवहारज्ञान प्रस्तुत नहीं किया जाता है। शुद्ध आत्मतत्त्वकी जानकारी करानेका जो व्याख्यान है वहा तो आत्मतत्त्व की ही चर्चा की जानी उचित है। उस शुद्ध आत्माकी भावनाके समयमें यह व्यवहारज्ञान प्रस्तुत नहीं होता तो भी प्राथमिक अवस्थामें तो व्यवहारज्ञान की आवश्यकता है।

कोई भी पुरुष हो, निश्चयकी वर्तनामे एकदम नहीं आया करता है। जो पुरुष आज भी निश्चय मर्म पर पहुचे हुए हैं उन्होंने भी वर्षों व्यवहार-संस्कारमे व्यतीत किए हैं। बच्चा थे तब माता पिताके साथ मंदिर दर्शन करने जाते थे। तब निश्चयका कुछ पता न था। पूजन, भजन, समारोह आदिमे उत्साह जगा करता था तब भी निश्चयका पता न था। व्यवहारके सर्व क्रियाकाड किये जा रहे थे। यो व्यवहारमे शुरूसे चला आया है और इस ही परम्परामे किसी भी समय इसके निश्चयकी झलक हो जाती है। जिसे निश्चयकी झलक हुई है वे दूसरे जीवोको भी इसी तरह समझते हैं कि इनको भी एकाएक व्यवहार छोड़कर रहते हुएमे निश्चयका परिचय हो जाये। सो अनेक जीवोंकी दृष्टिसे ग्रन्थोमें व्यवहार सम्यग्ज्ञानका वर्णन

चला है।

यहां दर्शन और ज्ञानका अन्तर किया जा रहा है कि दर्शन तो है निर्विकल्प और ज्ञान है सविकल्प। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शनके भेदसे यह दर्शन चार तरहका है। चक्षुदर्शनका अर्थ आंखोंसे देखना नहीं है, किन्तु चक्षुरिन्द्रियसे जाननेसे पहिले जो सामान्य प्रतिभास है उसका नाम चक्षुदर्शन है। और आंखोंके सिवाय शेष चार इन्द्रियोंसे अथवा मनसे जो ज्ञान होता है उससे पहिले जो सामान्य प्रतिभास हो उसका नाम है अचक्षुदर्शन। दर्शनमें चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन भेदका पड़ जाना औपचारिक है, स्वय नहीं है। ऐसा नहीं है कि आंखोंसे दर्शन होता हो, कान और जीभसे भी दर्शन होता हो। दर्शन तो मात्र आत्मासे होता है। अवधिज्ञानसे पहिले जो दर्शन होता है वह अवधिदर्शन है और केवलज्ञानके साथ-साथ जो दर्शन होता है वह केवलदर्शन है।

इन चारोंके बीचमें दूसरा जो अचक्षुदर्शन मानसरूप निर्विकल्प प्रत्यक्ष है जैसा कि भव्यजीवके सिद्ध तकके अनुभवरूप होता है उसही का नाम वीतराग सम्यक्त्व है। जब दर्शनमोह अथवा चारित्रमोहमें उपशमक्षय और क्षयोपशमकी प्रतीति होती है तब ऐसा निर्विकल्प सम्यक्त्व अथवा दर्शन होता है। और इसी प्रकार शुद्ध आत्माका अनुभवरूप अथवा अनुभूति स्थिरतारूप वीतराग चारित्र होता है, उस कालमें यह मानस निर्विकल्प दर्शन पूर्वोक्त निश्चय सम्यक्त्व और चारित्रके बलसे निर्विकल्प निजशुद्ध आत्माके अनुभवरूप ध्यानके द्वारा सहकारी कारण होता है वह भव्य जीव के होता है, अभव्य जीवके नहीं होता है। दर्शन सबके होता है भव्य जीव हो अथवा अभव्य जीव हो, किन्तु भव्य जीवके तो यह दर्शन सम्यग्दर्शन का सहकारी कारण होता है और अभव्य जीवके यह दर्शन सम्यक्त्व का सहकारी कारण नहीं होता है। क्योंकि उसको निश्चय सम्यक्त्वका लाभ नहीं हो सका। जैसे कि कलके उदाहरणमें कहा था कि पत्थरको लोहामें मारे और समुद्रमें फेंके, ऐसी धुन बन जाने पर किसी समय हाथमें पारस भी आया उसे भी लोहामें मारा और समुद्रमें फेंका। हाथमें पारस आया मगर उसका लाभ न लिया जा सका। इसी प्रकार अभव्य जीवोंके दर्शन आता है, पर अभव्य दर्शनका लाभ नहीं उठा पाते क्योंकि उन जीवोंके ज्ञेय लाभकी ही धुनि रहती है।

ऐसा यह दर्शन सम्यग्दृष्टी जीवके सम्यक्त्वका कारण बनता है और अभव्य जीवके दर्शन होकर भी वह दर्शन निष्फल होकर खिर जाता है। दर्शनमें विषयको ग्रहण ही नहीं कर सकते। इस जीवने अब तक इन्द्रियोंके

विषयकी कलाएं खूब सुनी है, खूब परिचयमें आई है, खूब ज्ञानमें आई हैं और इतना ही नहीं, दूसरोंको भी इन्द्रियोंकी विषयकी बात बताते हुए एक उपदेशक बन जाते हैं, आचार्य बन जाते है। इस प्रकार भोग भोगो, इस प्रकार विशेष मौज होगा। अमुक चीज अमुक चीजके साथ मिलाकर खावो तो जायका बढ जाता है। सो ऐसी बात बतानेमें आय मोही जीव आचार्य सा बन रहे हैं।

बच्चोंको कम स्वादकी चीज देना चाहो तो वे फैंक देते हैं। वे भी बडी स्वादकी चीजको चाहते हैं। जिस बच्चेसे बात भी नहीं करते बनता, पापा बाबा भी नहीं बोलते बनता, उस बच्चेमें भी स्वादकी ऐसी धुन है कि बढिया स्वादकी चीज मिले तो वे लेना चाहेंगे, नहीं तो मुख मोडकर हाथसे निषेध कर देते हैं। यह मोही जीव भोग भोगनेमें भी प्रवीण हो रहा है और दूसरोंको उपदेश देनेमें भी प्रवीण हो रहा है। विरले ही ज्ञानी संत महंतो को देखकर सर्वत्र देखो तो यह भोग भोगना नजर आ रहा है और दूसरोंको उसकी विधि बताना। किन्तु भोग चूँकि क्षणिक हैं, परवस्तु हैं, भोग भोगे भी नहीं जा सकते हैं। आत्मा तो वहा भी अपने ज्ञानकी पद्धतिसे भोगता है। अत भोगोंसे शान्ति नहीं मिलती और अशात होकर भोग भोगनेकी धुनमें जैसा चाहे समय व्यतीत करते हैं, किन्तु इन जीवोंने अपने ज्ञान और आनन्दस्वरूपकी चर्चा नहीं सुनी, न परिचयमें लाये, न अनुभवमें लाये।

यह मैं आत्मा स्वरसत केवल चैतन्यमात्र हू। चेतनाकी वृत्तिके अतिरिक्त अन्य कुछ तरग विभाव आत्मामे उत्पन्न होते हैं तो वह मेरे सत् की कला नहीं है। मुझ सत्में होते तो हैं, किन्तु मुझ सत्की कला नहीं है। ये कर्म उपाधिका निमित्त पाकर विकाररूप स्वयमेव होते हैं। मेरे स्वभाव से विकार नहीं होते हैं, मेरे स्वरूपमें विकार नहीं है। स्वरूपमें विकार हो तो ये विकार एक समान हो, अनवरत हो, अनन्तकाल तक हो। किन्तु विकारोंके सम्बन्धमें लोकमें स्पष्ट देखा गया है कि ये विकार नष्ट हो जाते हैं। कभी कम होते हैं और कभी अधिक होते हैं और ये दु खके लिए उत्पन्न होते हैं। पदार्थोंका स्वरूप पदार्थोंके विनाशके लिए नहीं होता है किन्तु पदार्थोंका अस्तित्व बनाए रखनेके लिए होता है। मेरा रागस्वभाव नहीं है। यह राग होता है तो मेरे स्वभावसे उल्टी बात है, दु खरूप है। दु खका बीज है, दु खका ही कारण होता है। ऐसे विकारोंको दु खस्वरूप मानकर भोगोंको एक वहम और अधेरी मानकर इस सबसे निराले ज्ञानज्योतिमात्र अपने आत्मस्वरूपको देखो। ऐसा देखना ही वास्तविक दर्शन है। परमार्थ वैभव है।

भैया ! जीवने और तो सब विकल्प किये, किन्तु अपने आपमें बसे हुए परमार्थ एकत्वस्वरूपका, परमपारिणामिक भावको सहज ज्ञानज्योतिमात्र स्वभावका परिचय नहीं किया, अनुभव नहीं लाया, उसमें अभिरुचि नहीं की। इस कारण यह मोही जगत ससारके कोने-कोने में अनेक कुयोनियोंमें जन्म लेकर दु खी होता फिरता है। मेरे दु खको मेटनेमें कोई दूसरा समर्थ नहीं है। मेरे दु खको मात्र मैं ही मेट सकता हू।

जैसे नींदमें सोये हुए पुरुषको कोई बुरा स्वप्न आ जाये— जगलमें जा रहे हैं, सिंह आ रहा है, ऊपर झपट रहा है, प्राण जा रहे हैं, ऐसा ही कोई स्वप्न आए तो उस स्वप्नके समयमें कितनी पीडा होती है। उस पीडा को मेटनेमें माता पिता समर्थ नहीं हैं। हालाकि माता उस सोये हुए पुरुषके पास बैठी है, पर मा क्या करे ? विकल्पतो वह कर रहा है। दु ख कैसे मेटले ? उसस्वप्नके दृश्योंको दिखने वाला ही दु खोंके मेटनेमें समर्थ है। नींद खोल ले, जग जाय तो बुरा स्वप्न देखने वाले दृश्योंसे जो वेदना होती है वह सब समाप्त हो जाये। जग जाने पर वह जान लेता है कि मैं तो अपने कमरेमें बैठा हू, जगलमें कहा हू। शेर कहा है ? यहा तो आरामके साधन हैं। उसके सब दु ख समाप्त हो जाते हैं।

इसी तरह मोहकी नींदमें सोये हुए पुरुषके अनेक विकल्प उत्पन्न होते हैं। वह दु खी हो रहा है, सकट मान रहा है। यह दु ख कैसे मिटे ? मोहकी नींद छोड दे, सम्यग्ज्ञान का नेत्र खोल दे तो सब सकट मिट जाते हैं। यहा कोई दूसरा साथ लगा ही नहीं है तो दूसरेके परिणमनका यहां क्या सकट है। ऐसा सम्यग्ज्ञान जगते ही इस जीवके सर्वसकट समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार इस प्रकरणसे गर्भित तात्पर्यके रूपमें जीवको यह ध्यान दिलाया गया है कि तुम आत्मदर्शन करो और आत्मदर्शन करते हुएमें जो तुम्हारा आत्मस्वरूप सामान्य रूपसे बताया हो, उसे ग्रहण करलो।

मैं एतावन्मात्र हू—यों आत्माको आत्मारूपसे जानने, ग्रहण कर लेने पर इस जीवके सर्वसकट समाप्त हो जाते हैं। जैसे कोई सकट आए तो बालक माकी गोदमें छिप जाता है इस ही प्रकार परपरिणतिके विकल्परूप कुछ भी सकट आए आत्मानुभूति माकी गोदमें चले जावो तो समस्त सकट एक साथ समाप्त हो जायें। ऐसे आत्मदर्शनके लिए अनवरत प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस ही मे अपना हित है।

❀ इति परमात्मप्रकाश प्रवचन पञ्चम भाग समाप्त ❀

मुद्रक— खेमचन्द जैन, शास्त्रमाला प्रिंटिंग प्रेस, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

— • —

पुस्तकें मंगाने का पता :—

सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ० प्र०)